शब्दों का अध्ययन

डॉ. भोलानाथ तिवारी

भारतीय विद्या मंदिर

मूल्य आठ रुपये

[redacted]



प्रकाशक शब्दकार
२२०३ गली डकौतान
तुर्कमान गेट दिल्ली ६

124 38

प्रथम संस्करण जनवरी, १९६९

आवरण तूलिका

मुद्रक रूपक प्रिंटर्स दिल्ली

आवरण मुद्रक परमहंस प्रेस दिल्ली



दो शब्द

हिन्दी के विकास और प्रसार के लिए शिक्षा मत्रालय के तत्त्वावधान मे पुस्तको के प्रकाशन की विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है। हिन्दी मे अभी तक ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे पर्याप्त साहित्य उपलब्ध नही है, इसलिए ऐसे साहित्य के प्रकाशन को विशेष प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह तो आवश्यक है ही कि ऐसी पुस्तके उच्च कोटि की हो, किन्तु यह भी ज़रूरी है कि वे अधिक महगी न हो ताकि सामान्य हिन्दी पाठक उन्हे खरीदकर पढ सके। इन उद्देश्यो को सामने रखते हुए जो योजनाएँ बनाई गई है, उनमे से एक योजना प्रकाशको के सहयोग से पुस्तको की निश्चित सख्या मे प्रतियाँ खरीदकर उन्हे मदद पहुचाती है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी योजना के अन्तर्गत प्रकाशित की जा रही है। इसके प्रकाशन और कापी राइट इत्यादि की व्यवस्था प्रकाशक ने स्वय की है तथा इसमे शिक्षा-मत्रालय द्वारा स्वीकृत शब्दावली का उपयोग किया गया है।

हमे विश्वास है कि प्रकाशको के सहयोग से प्रकाशित साहित्य हिन्दी को समृद्ध बनाने मे सहायक सिद्ध होगा और साथ ही इसके द्वारा ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्धित अधिकाधिक पुस्तके हिन्दी के पाठको को उपलब्ध हो सकेंगी।

आशा है यह योजना सभी क्षेत्रो मे लोकप्रिय होगी।

ए. चंद्रहासन

निदेशक
केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय

अथ...

शब्दो का अध्ययन तीन खडों मे विभक्त है। प्रथम खड मे तीन अध्याय है। पहले मे शब्द की परिभापा तथा उसका वर्गीकरण है। दूसरे मे शब्दो का अध्ययन करने के लिए शब्द-सकलन-विधि है। तीसरे मे उन मुख्य-मुख्य पद्धतियो का सकेत किया गया है, जिनसे शब्दो का अध्ययन किया जा सकता है।

दूसरे खड मे कुछ प्रमुख शब्द-अध्ययन पद्धतियो से शब्दो के अध्ययन पर विचार किया गया है। इसमे कोशविज्ञान, व्युत्पत्तिविज्ञान, नाम-विज्ञान, प्रयोगविज्ञान, अर्थविज्ञान, स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान), रचना-विज्ञान तथा शब्दसमूहविज्ञान शीर्षक आठ अध्याय है। इनमे कुछ अध्यायो के विपय तो उनके शीर्षको से ही स्पष्ट है, किंतु दो-तीन के बारे मे स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रयोगविज्ञान मे उन बातो को लिया गया है जिनका ध्यान शब्दो का प्रयोग करते समय रखना आवश्यक है। रचना-विज्ञान मे शब्दो की रचना मे अपेक्षित घटको पर विचार करने के अतिरिक्त रचना की पृष्ठभूमि मे निहित आधार पर भी विचार गया है। शब्दसमूहविज्ञान मे भापा और व्यक्ति के शब्दसमूह के सबध मे विचारणीय बाते ली गई है। भापाविज्ञान की परपरागत शब्दावली मे किसी उचित नाम के अभाव मे इन शीर्षको के लिए ये नए नाम बनाने पडे है।

तीसरा खंड परिशिष्ट है, जिसमे प्रारभ मे १०१ हिन्दी शब्दो की कहानी है। 'विज्ञान का जन्म और जीवन' मे मैंने विज्ञान शब्द के इतिहास को लेकर एक ललित निबंध लिखने का प्रयास किया है। शेप मे विभिन्न प्रकार के शब्दो का विभिन्न दृष्टियो से अध्ययन है।

पारिभाषिक शब्दो के सबध मे दो शब्द कहना अपेक्षित है। मैं चाहता तो यह था कि भारत के शिक्षा मत्रालय के शब्दावली आयोग द्वारा निर्धारित भाषा-विज्ञान विपयक शब्दावली का ही आद्यत प्रयोग करू किंतु अभी तक वह प्रकाशित नही हुई है। फिर भी उसके जो कुछ शब्द मुझे इधर-उधर से मिल सके है, मैंने उन्हे अपनाया है। शेप

शब्द वे हैं जो या तो हिन्दी में बहुत प्रचलित हैं या दस पन्द्रह ऐसे हैं जिन्हें किसी उचित शब्द के अभाव में मुझे बनाना पड़ा।

शब्दों के बारे में जो बातें मैंने प्रस्तुत कही हैं, वे भी अल्पाधिक रूप में कही जा चुकी हैं तथा ऐसी भी बातें हैं जो सांकेतिक रूप में या सविस्तार यहाँ पहली बार कही जा रही हैं।

'शब्दकार' के उत्साही संचालक श्री जवाहर चौधरी के प्रति मैं बड़ा आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अन्य व्यस्तताओं के बावजूद यह पुस्तक मुझसे पूरी करा ली।

—भोलानाथ तिवारी

विषय-अनुक्रम

खण्ड १

खण्ड २

खण्ड ३

परिशिष्ट

अध्याय १

शब्द : परिभाषा और वर्गीकरण

परिभाषा

'शब्द' का मूल अर्थ है 'ध्वनि'। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे पर्याप्त मतभेद हैं। 'शप्', 'शब्द्', आदि एक से अधिक धातुओ से इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। अधिक प्रचलित मत यह है कि शब्द का सम्बन्ध 'शब्द्' धातु से है (शब्द्+घञ्), जिसका अर्थ है 'शब्द करना', 'ध्वनि करना' या 'बोलना' आदि। यो कुछ लोग 'शब्द्' को 'शब्द' से बनी नामधातु भी मानते है। अंग्रेजी शब्द word (डच woord, जर्मन wort, गोथिक waurd, आइसलैडिक orth, लैटिन verbum, ग्रीक liro) का सम्बन्ध भी 'बोलना' या 'ध्वनि करना' से है। अरबी 'लफ्ज़' भी मूलत· 'मुँह से फेका हुआ' या 'ध्वनि किया हुआ' या 'बोला हुआ' है। इस प्रकार 'शब्द' के विभिन्न भाषाओ मे प्राप्त पर्याय भी मूलत. एक दूसरे से बहुत दूर नही हैं।

संसार की सभी भाषाओ को दृष्टि मे रखते हुए शब्द की सभी दृष्टियो से पूर्ण परिभाषा देना प्राय. असम्भव-सा है। इस विषय पर विचार करते हुए येस्पर्सन, वेन्द्रिये, डैनियल जोन्स तथा उल्डल आदि अनेक विद्वानो ने इस असमर्थता को स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया है। इस असम्भवता के बावजूद शब्द की अनेकानेक परिभाषाए दी गई है। पतंजलि कहते हैं—'श्रोत्रोपलब्धि-र्बुद्धिनिर्ग्राह्य प्रयोगेणाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्द· ।' अर्थात् शब्द, कान से प्राप्य, बुद्धि से ग्राह्य, प्रयोग से प्रस्फुरित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि है। पतजलि ने विस्तार से भी 'शब्द' पर विचार किया है, जिसके निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है उनकी दृष्टि मे उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य और अर्थबोधक ये चार विशेषण शब्द की विशिष्टता की ओर सकेत करते हैं। दूसरे शब्दो मे शब्द वह है जो उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य और अर्थबोधक हो। पतजलि एक स्थान पर कहते हैं—'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनि. शब्द.'। अर्थात् वह

ध्वनि जिससे व्यवहार या लोक में पद के अर्थ की प्रतीति हो शब्द है।' अर्थात् प्रकाश में आता है 'येनोच्चारितेन अर्थः प्रतीयते स शब्दः।' अर्थात् जिसके बोलने से अर्थ की प्रतीति हो, वह (ध्वनि) शब्द है।

पश्चिम में भी इस दृष्टि से काफी प्रयास हुए हैं। पामर[1] शब्द को ऐसी लघुतम भाषिक इकाई मानते हैं जो एक पूर्ण उच्चार के रूप में काम कर सके। उल्मन इसे भाषा की लघुतम महत्त्वपूर्ण इकाई कहते हैं। एनटिवसल शब्द को विचार और अर्थ की स्वतन्त्र इकाई मानने के पक्ष में हैं। मेये इसे अर्थ और ध्वनि समूह का ऐसा योग मानते हैं जिसका व्याकरणिक प्रयोग हो सके। ब्लूमफील्ड इसे भाषा का लघुतम मुक्त रूप कहते हैं। राबर्टसन और कैसिडी शब्द को वाक्य में लघुतम स्वतन्त्र इकाई मानते हैं। स्वीट इसे लघुतम आर्थिक इकाई कहते हैं। अनेक अन्य विद्वानों ने भी ऐसी ही या इससे मिलती जुलती बातें कही हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि 'अर्थ के स्तर पर भाषा की लघुतम स्वतन्त्र इकाई शब्द है।' इस परिभाषा में शब्द के संबंध में प्रमुखतः दो बातें कही गई हैं। ये दोनों ही बातें शब्द की विशेषता मानी जा सकती हैं —

(१) शब्द अर्थ के स्तर पर लघुतम इकाई है। इसमें दो संकेत हैं— (क) इसका एक अर्थ होता है (इस दृष्टि से निरर्थक शब्दों को शब्द नहीं माना

---

1 Palmer—*The smallest speech unit capable of functioning as a complete utterance*

Ulman—*The smallest significant unit of language*

Entwistle—*A word is an autonomous unit of thought and sense It results from the association of a given meaning with a given grammatical employment or is a complex of sounds which in itself possesses a meaning fixed and accepted by convention or is 'the smallest thought unit vocally expressible*

Mullet—*A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sounds capable of a given grammatical use*

Robertson तथा Cassidy—*The smallest independent unit within the sentence*

Sweet—*An ultimate sense unit*

जा सकता); तथा (ख) अर्थ के स्तर पर शब्द लघुतम होता है। इसका आशय यह हुआ कि यहाँ 'मूल' या 'रूढ' शब्दो की बात की जा रही है। 'यौगिक' या 'योगरूढ' शब्दो की नही। यों व्यवहार मे वे भी शब्द है किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से वे लघुतम इकाई नही है, यौगिक है। उदाहरणार्थ 'अपूर्ण' एक यौगिक शब्द है, किन्तु 'पूर्ण' एक शब्द या मूल-शब्द है। यह ध्यातव्य है कि 'शब्द' अर्थ के ही स्तर पर भाषा की लघुतम इकाई है, ध्वनि के स्तर पर नही, क्योकि एक ध्वनि का सर्वत्र अर्थ नही होता। जैसे 'आ' (=आ जा) का तो अर्थ है, किन्तु 'क्' का नही है।

(२) इस परिभाषा मे 'स्वतंत्र' शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ यह हुआ कि 'शब्द' ऐसा होता है, जो प्रयोग या अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र होता है। उसे किसी की सहायता अपेक्षित नही होती। उपसर्ग (जैसे 'अ' = नही) भी एक प्रकार से अर्थ के स्तर पर लघुतम इकाई है, किन्तु यह स्वतंत्र नही होता अर्थात् अकेले, बिना किसी शब्द की सहायता के (जैसे अपूर्ण) इसका प्रयोग नही हो सकता, अत इसे शब्द नही कह सकते। इसी प्रकार प्रत्यय (जैसे ता=भाववाचकता) भी परतंत्र (जैसे पूर्णता) होते है। अकेले प्रयोग करने योग्य नही होते, अतः इन्हे भी शब्द नही माना जा सकता। इसके विपरीत 'पूर्ण' एक शब्द है, क्योकि वह स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हो सकता है।

स्पष्ट ही अन्य परिभाषाओ की तरह यह परिभाषा भी सभी दृष्टियो से पूर्ण न होकर कामचलाऊ है, और एक विशेष दृष्टिकोण से की गई है। व्यापकतम रूप मे उपसर्ग, प्रत्यय, रूढ शब्द, यौगिक शब्द, सार्थक शब्द, निरर्थक शब्द सभी 'शब्द' माने जा सकते है। इस दृष्टि से प्राचीन भारतीय वैयाकरणो की परिभाषाये अतिव्याप्त दोष से दूषित होते हुए भी अपेक्षाकृत अधिक उचित ज्ञात होती है। अतिव्याप्ति दोष इसलिए है कि इन परिभाषाओ मे 'शब्द' के साथ-साथ 'वाक्य' भी समा सकता है।

प्रश्न उठेगा कि फिर शब्द की परिभाषा क्या माने? यो तो ऐसी कोई भी परिभाषा देना बडा कठिन है जो ससार की सभी भाषाओ पर व्यावहारिक और वैज्ञानिक दोनो दृष्टियो से लागू हो सके किन्तु मोटे रूप से मै कहना चाहूँगा —

अर्थ और ध्वनि के योग की वह स्वतंत्र इकाई जो भाषा मे वाक्य-रचना के स्तर पर एकाधिक इकाइयो की न हो, शब्द है।

इस परिभाषा मे चार बातें कही गई हैं —

(१) शब्द अर्थवान होता है।

(२) वह एक या अधिक ध्वनियो का होता है।

(३) वह स्वतंत्र इकाई होता है।
(४) वाक्य रचना के स्तर पर वह एकाधिक इकाइयों का नहीं होता।

लघुतम शब्द को जानबूझ कर यहाँ परिभाषा मे नहीं रखा गया है। 'डाकखाना' 'घुड़सवारी' या 'पुत्रदान' जैसी इकाइयाँ शब्द तो हैं किन्तु ये लघुतम नहीं है।

वर्गीकरण

शब्दों का वर्गीकरण शब्दों के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। विश्व की अनेक भाषाओं में अनेक दृष्टियों से शब्दों का वर्गीकरण किया गया है। भारतवर्ष में प्राचीनतम वैज्ञानिक वर्गीकरण यास्क मुनि का माना जाता है (यद्यपि इसके पूर्व भी शुभ अशुभ साधु असाधु रूप में शब्द-वर्गीकरण किया जाता था) जो उनके निरुक्त में मिलता है। यास्क (८वीं सदी ई०पू०) के अनुसार शब्द चार प्रकार के होते हैं—चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च (१ १) अर्थात नाम, आख्यात उपसर्ग निपात। स्पष्ट ही यह वर्गीकरण व्याकरणिक या वाक्य में प्रयोग पर आधारित है। आज तक जितने भी शब्द-वर्गीकरण किये गये हैं उसमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा कुछ दृष्टियों से यह सर्वाधिक वैज्ञानिक भी है। वाजसनेयी प्रातिशाख्य में भी शब्द चार प्रकार के माने गये हैं—तिङ कृत तद्धित, समास। कुछ अन्य प्रातिशाख्यों में भी इस प्रकार के संकेत मिलते हैं। पाणिनि (५वीं सदी ई० पू०) के अनुसार शब्दों के दो ही प्रमुख वर्ग हैं—सुबन्त और तिङन्त। यास्क का आख्यात क्रिया शब्दों के लिए आया है जिसे पाणिनि तिङन्त कहते हैं। यास्क के शेष तीन अर्थात नाम उपसर्ग निपात पाणिनि के सुबन्त के अन्तर्गत आ जाते हैं। यों प्रयोगत केवल नाम ही सुबन्त है। इस प्रकार अव्यय को भी पाणिनि सुबन्त के अन्तर्गत (अष्टाध्यायी २ ४ ८२) रखते हैं यद्यपि यह बहुत ठीक नहीं है। संस्कृत प्रयोगों को देखते हुए शब्द के सुबन्त, तिङन्त अव्यय ये तीन भेद मानना कदाचित अधिक समीचीन हो सकता है। महाभाष्यकार ने शब्दों के लौकिक और वैदिक दो भेद माने हैं। कुछ संस्कृत वैयाकरणों (भोज श्रृंगार प्रकाश) ने शब्द के प्रकृति प्रत्यय उपस्कार उपपद प्रातिपदिक विभक्ति उपसर्जन समास पद वाक्य और प्रबन्ध ये १२ भेद माने हैं। अर्थ के आधार पर अपने यहाँ वाचक लक्षक और व्यंजक तीन प्रकार के शब्द माने गये हैं, इसी प्रकार इतिहास के आधार पर तत्सम आदि भेद भी किए गए हैं।

पश्चिम में व्याकरणिक दृष्टि से शब्द आठ वर्गों (eight parts of speech) में विभाजित किए गए हैं—संज्ञा (noun) सर्वनाम (pronoun) विशेषण

(adjective), क्रिया (verb), क्रियाविशेषण (adverb), समुच्चयबोधक (conjunction), संबंधसूचक (preposition), विस्मयादिबोधक (interjection) यह वर्गीकरण अंग्रेजी का है। अन्य योरोपीय भाषाओं मे भी प्रायः इन्ही को स्वीकार किया गया है। जैसा कि येस्पर्सन ने कहा है, यह वर्गीकरण व्यावहारिक तो है, किन्तु तात्त्विक या वैज्ञानिक नही है। इसी कारण इस पर विचार करते हुए विद्वानो ने आठ के स्थान पर दो, चार तथा नौ आदि वर्ग मानने के सुझाव दिये है। इन आठ वर्गों का विकास मूलत. प्लेटो के वर्गीकरण के आधार पर हुआ था। अरस्तू ने भी कई रूपो मे शब्दो का वर्गीकरण किया था, जैसे रचना के आधार पर सरल (इसी को हिन्दी मे रूढ या रूढि कहते है) तथा यौगिक (यह संस्कृत या हिन्दी के यौगिक के समान है)। इसी प्रकार प्रचलन, व्यंजना तथा अर्थ आदि के आधार पर भी अरस्तू ने प्रचलित-अप्रचलित, लाक्षणिक, आलंकारिक, नवनिर्मित, व्याकुंचित, संकुचित या परिवर्तित आदि भेद किये हैं। येस्पर्सन ने इस पर विचार करते हुए शब्द को प्रायोगिक या व्याकरणिक दृष्टि से, (१) नाम या संज्ञा (substantatives), (२) विशेषण, (३) सर्वनाम, (४) क्रिया, तथा (५) अव्यय (जिसमे वे प्रथम चार को छोडकर भाषा के शेष सभी शब्दो को रखने के पक्ष मे है), इन पाँच वर्गों मे रखने का विचार प्रकट किया है। रचना की दृष्टि से वे शब्दो को प्राइमरीज (primaries), ऐडजक्ट्स (adjuncts) तथा सबजक्ट्स (subjuncts) इन तीन वर्गों मे रखने के पक्ष मे हैं।

कुछ और भी, इसी प्रकार के वर्गीकरण किये गये है।

वर्गीकरण का आधार

वर्गीकरण करने के पूर्व यह विचारणीय है कि किसी भाषा के शब्दो को वर्गीकृत करने के कितने आधार हो सकते हैं। वस्तुत यदि गहराई और विस्तार से देखे तो इसके बहुत अधिक आधार हो सकते हैं, जिनमे प्रमुख निम्नांकित है।

(क) इतिहास

शब्दो के इतिहास या व्युत्पत्ति के आधार पर शब्दो के वर्गीकरण का भारत मे प्रथम वैज्ञानिक प्रयास भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र मे किया है —

त्रिविध तच्च विज्ञेय नाट्य योग संसम्मत
समान शब्दैर्विभ्रष्ट देशीमतमथापि वा

अर्थात् शब्द समान, विभ्रष्ट तथा देशीमत, ये तीन प्रकार के है। इन्ही को आगे चलकर तत्सम, तद्भव तथा देशी या देशज कहा गया। बाद मे इनमे एक

विदेशी वर्ग जोड़कर इतिहास के आधार पर शब्द चार प्रकार के माने गए। भारत में शब्दों का इस प्रकार के किसी निश्चित वर्गीकरण की परंपरा कदाचित नहीं मिलती।

आगे इन चारों तथा इनसे संबद्ध उपवर्गों पर कुछ विस्तार से—विशेषतः हिंदी के प्रसंग में—विचार किया जा रहा है।

तत्सम

इसका शाब्दिक अर्थ है 'उसके (तत्) समान (सम)' अर्थात् 'संस्कृत के समान'। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में 'तत्सम' को 'समान' तथा कुछ अन्य लोगों ने इसे 'तद्रूप' कहा है। इस तरह 'तत्सम' वे शब्द हैं जो संस्कृत के समान हैं अर्थात् जिनमें परिवर्तन नहीं हुए हैं। जैसे कृष्ण, दधि, आभीर, वधू, घोटक, सपत्नी, कर्म आदि। इस प्रसंग में यह बात भी उल्लेख्य है कि 'तत्सम' कहे जाने वाले सभी शब्द मूलतः संस्कृत के ही नहीं हैं। हुआ यह कि अन्य भाषाओं से भी आकर अनेक शब्द संस्कृत में ज्यों के त्यों या परिवर्तित रूप में गृहीत हुए और उनका प्रयोग होने लगा, फिर वे संस्कृत के मान लिए गए और आज वे तत्सम ही माने जाते हैं। जैसे 'गो', 'लोह' सुमेरी हैं, 'पर्शु' अक्कादी है, 'असुर' असीरियन है, 'कूप', 'शलाका' फिनो उग्रिक हैं, 'कदली', 'बाण', 'ताम्बूल', 'पिनाक', 'गंगा', 'लिंग' आस्ट्रिक हैं, 'कला', 'गण', 'नाना', 'पुष्प', 'रात्रि', 'मर्कट', 'नीर' द्रविड़ हैं, 'यवन', 'होरा', 'द्रम्म', 'क्रमेल' यूनानी हैं, 'रोमक', 'दीनार' लातीनी हैं, 'रमल', 'सहम' अरबी हैं, 'बालिश', 'निशाण' ईरानी हैं, 'तुरुष्क', 'खच्चर' तुर्की हैं एवं 'मसार' तथा 'चीन' (चीनचोलक, चीनांशुक) चीनी हैं।

हिंदी में स्रोत की दृष्टि से 'तत्सम' शब्द चार प्रकार के हैं:

(क) प्राकृतों (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते आने वाले शब्द, जैसे अचल, अध, अचला, कान्त, कुसुम, जन्तु, दण्ड, दम आदि। इस वर्ग के शब्दों की संख्या काफी बड़ी है। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो संस्कृत से परम्परागत रूप में प्राकृतों को मिले और जो विशिष्ट कारणों से अपने स्वरूप को अक्षुण्ण रख सके। दूसरे वे हैं जो संस्कृत के प्राकृतों पर प्रभाव स्वरूप, प्राकृतों में प्रयुक्त हुए। अर्थात् आगत शब्द (loan word) रूप में संस्कृत से प्राकृतों में आये। ऐसे शब्दों के तद्भव रूप भी प्राकृतों में मिलते हैं।

(ख) संस्कृत से सीधे हिंदी में भक्ति, आधुनिक आदि विभिन्न कालों में लिए गए शब्द, जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, क्षत्र, कृष्ण, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मध, पुष्प, मृग, मधुर, कुशल आदि। ऐसे शब्दों की संख्या प्रथम वर्ग

से भी बड़ी है। सर्वाधिक तत्सम शब्द सभी आधुनिक आर्य भाषाओ मे इसी रूप मे आये है।

(ग) सस्कृत के व्याकरणिक नियमो के आधार पर हिन्दीकाल मे निर्मित तत्सम शब्द। इस प्रकार के अधिकाश शब्द आधुनिक काल मे शब्दो की कमी की पूर्ति के लिए बनाये गये है, और बनाये जा रहे है। जैसे जलवायु (आबहवा), वायुयान (हवाई जहाज या एरोप्लेन), सम्पादकीय (editorial), प्राध्यापक (lecturer), रेखाचित्र (sketch), प्रभाग (section), वाक्य-विश्लेषण (sentence analysis), निदेशक (director), नगरपालिका (municipality), समाचारपत्र, पत्राचार, (correspondence), लघुशका, कटिबद्ध (फा० कमरबस्ता) आदि। ऐसे शब्द इधर पारिभाषिक शब्दो के लिए लाखो की संख्या मे बने है।

(घ) अन्य भाषाओ से आये तत्सम शब्द। इस् वर्ग के शब्दो की सख्या अत्यल्प है। कुछ थोड़े शब्द बगाली तथा मराठी के माध्यम से आये है। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो सस्कृत मे भी प्रयुक्त होते थे, और कुछ ऐसे हैं जो इन भाषाओ मे सस्कृत के आधार पर बने। कुछ उदाहरण है : बगाली वक्तृता, उपन्यास, गल्प, कविराज, सदेश, अभिभावक, निर्भर, तत्त्वावधान, अभ्यर्थना, आपत्ति, सभ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद, मराठी · वाङ्मय, प्रगति।

हिन्दी मे प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। सज्ञा शब्द प्राय दो प्रकार के है :

(क) सस्कृत के प्रातिपदिक—जैसे राम, कृष्ण, फल, मित्र, कुसुम, पुस्तक पत्र, पुष्प, देव, बालक, वृक्ष, मनुष्य आदि अकारान्त; कवि,ह रि, मुनि, कपि, कपि, यति, विधि, रवि, अग्नि, पति, रुचि, मति आदि इकारान्त ; सुधी, लक्ष्मी आदि ईकारान्त , भानु, शत्रु, विष्णु, गुरु, धेनु, जन्तु, प्रभु, शिशु, पशु, साधु आदि उकारान्त, तथा वधू, चमू, भू, स्वयभू आदि ऊकारान्त; आदि।

(ख) संस्कृत के प्रथमा एकवचन—जैसे सखा, पिता, भ्राता, जामाता, दाता, नेता, कर्त्ता, माता, दुहिता, वणिक्, सम्राट्, आत्मा, ब्रह्मा, राजा, महिमा, युवा, हस्ती, करी, पक्षी, स्वामी, तपस्वी, सीमा, नाम, च,र्म विद्वान, भगवान्, धनवान् आदि।

कुछ शब्द ऐसे भी है, जिनका प्रातिपदिक रूप एव प्रथमा बहुवचन रूप एक ही होता है, अत. इन्हे उपर्युक्त दो मे किसी मे भी रखा जा सकता है। जैसे वारि, दधि, अस्थि, वस्तु, मधु, विद्या, रमा, बाला, निशा, कन्या, भार्या नदी, स्त्री, जगत्, सुहृद् आदि।

सर्वनाम केवल दो ही बहुप्रयुक्त हैं जो षष्ठी एकवचन के रूप हैं मम, तव।

विशेषण प्राय केवल प्रातिपदिक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे तीव्र नूतन, नव नवीन पुरातन चिरतन, सुन्दर श्वेत आदि।

तत्सम शब्दों के आधार पर कुछ क्रियाएँ भी बनी हैं, जैसे स्वीकारना।

हिन्दी म प्रयुक्त तत्सम अव्यय मुख्यत तीन प्रकार के हैं

(क) संस्कृत के समान—जैसे पथक सहसा चिर आदि। ये इसी प्रकार संस्कृत म भी आते हैं, तथा हिन्दी म भी।

(ख) संस्कृत के कई रूपो म एक—कुछ अव्यय ऐसे हैं जो संधि के नियमो आदि के कारण संस्कृत म तो कई रूपो मे आते हैं, किन्तु हिन्दी म प्राय उनम एक रूप ही प्रयुक्त होता है। जैसे दान दानर् दानैस'। संस्कृत म ये तीनो मिलते किन्तु हिन्दी म केवल 'दान प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'प्रातर प्रातस प्रात मे हिन्दी में 'प्रात ही आता है। 'साय सायम मे भी प्राय 'साय हिन्दी म गृहीत है।

(ग) संस्कृत का मूल रूप—कुछ अव्यय ऐसे भी है जो संस्कृत म तो दूसरे रूप म आते हैं किन्तु हिन्दी म उनके रूप को न लेकर मूल को स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ संस्कृत म अव्यय रूप म नित्यम ही आयेगा 'नित्य' नही, किन्तु हिन्दी म नित्य ही आयेगा 'नित्यम नही।

हिन्दी म कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो वस्तुत तत्सम नही हैं, किन्तु जिन्हे प्राय तत्सम समझा जाता है। ऐसे शब्दो के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग ऐसे शब्दो का है जो संस्कृत प्रथमा एकवचन के रूप म से विसर्ग हटाकर हिन्दी म लिये गए हैं जैसे अप्सरा। सं० म 'अप्सरा' कोई शब्द नही है। सं० म इसका प्रातिपदिक है 'अप्सरस' तथा प्रथमा एक० रूप है 'अप्सरा। अप्सरा विसर्ग ही हटने से हिन्दी अप्सरा बन गया है। चन्द्रमा, पय, मन उर, मन यश रज वस तम यश सर सिर आदि भी ऐसे ही हैं। इन सभी का प्रातिपदिक है स्-युक्त तथा प्रथमा एकवचन विसर्गयुक्त। आयु वपु का प्रातिपदिक है—ष्-युक्त तथा प्रथमा एक० रूप विसर्ग-युक्त। इस प्रकार य तथा इस प्रकार के अन्य शब्द तत्त्वत तत्सम नहीं हैं। दूसरी श्रेणी के शब्द ऐसे हैं जो कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तनो के कारण तत्सम नही रह गए हैं (तत्सम रूप कोष्ठक के भीतर है) अन्तर्राष्ट्रीय (अन्ताराष्ट्रिय कुछ विद्वानों का इस सबध म मतभेद भी है) राष्ट्रीय (राष्ट्रिय), उपरोक्त (उपयुक्त), प्रण (पण) सम्पूर्ण (सपूर्ण) अनुग्रहीत (अनुगृहीत) क्षत्राणी (क्षत्रियाणी क्षत्रिया) आधीन (अधीन) दृढ़ (दृढ), प्रौढ़ (प्रौढ) होता

(होडा), औषधि (ओषधि, औषध), मनोकामना (मन कामना) आदि। ऐसे सभी शब्दो को तत्समाभास कहा जा सकता है, क्योकि इनमे तत्सम का आभास होता है। यो वस्तुत ये शब्द तद्भव या परवर्ती तद्भव (जिन्हे प्राय अर्ध-तत्सम कहा जाता है) है।

तत्सम शब्द की तत्समता

सस्कृत, प्राकृत आदि के प्राचीन आचार्यो से लेकर आधुनिक भाषाशास्त्रियो तक, सभी ने 'तत्सम' को 'सस्कृत के समान' के रूप मे स्वीकार किया है, किन्तु मुझे लगता है कि यह नामकरण बहुत सोच-समझकर नही किया गया है। जिन शब्दो को तत्सम कहा जाता है उनमे यदि वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो 'तत्समता' से अधिक 'अतत्समता' है। दूसरे शब्दो मे वे प्राय: कम बातो मे सस्कृत के समान है, और अधिक बातो मे सस्कृत के असमान है। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए मै इस समस्या को कुछ विस्तार से ले रहा हूँ। 'शब्द' के दो पक्ष होते है। एक तो आभ्यन्तर पक्ष, जिसे उसका 'अर्थ' कहते हैं, और जो शब्द की 'आत्मा' कहलाने का अधिकारी है, तथा दूसरा बाह्य पक्ष, जिसमे उसका बाह्य रूप या उसमे प्रयुक्त ध्वनियाँ आती है, और जिसे शब्द का 'शरीर' कह सकते है। शब्द के इन दोनो पक्षो—आत्मा और शरीर—को दृष्टि मे रखकर हम कह सकते है कि सच्चे अर्थो मे कोई शब्द 'तत्सम' कहलाने का अधिकारी तभी है, जब वह आत्मा एव शरीर दोनों ही दृष्टियो से सस्कृत के समान हो। किन्तु तथ्य यह है कि इस रूप मे बहुत ही कम शब्द समान मिलेंगे। पहले अर्थ या शब्द की आत्मा की बात ली जाय हिन्दी मे अनेक तत्सम कहलाने वाले शब्द ऐसे है जिनका अर्थ सस्कृत के समान नही है। उदाहरण के लिए हिन्दी मे दो शब्द है 'जघा' और 'जाघ'। प्रचलित परिभाषा के अनुसार पहला तत्सम है और दूसरा तद्भव हे। 'जघा' शब्द वैदिक तथा लौकिक सस्कृत, दोनो मे मिलता है, किन्तु उसका अर्थ 'जाघ' न होकर 'घुटने और टखने के बीच का भाग' होता है। इस तरह सस्कृत एव हिन्दी 'जघा' मे अर्थ की असमानता है। अर्थात् अर्थ की दृष्टि से हिन्दी मे 'जंघा' तत्सम नही है, यद्यपि माना जाता है। शीर्षक (स० अर्थ 'सिर', हि० अर्थ heading), पतग (स० अर्थ सूर्य, पक्षी, शलभ, हि० अर्थ 'गुड्डी' भी), पदवी (स० अर्थ रास्ता, पथ, हिन्दी अर्थ उपाधि आदि), प्रणाली (स० अर्थ नाली; हिन्दी अर्थ ढग, पद्धति), कटि (स० अर्थ कूल्हा, नितम्ब, हिन्दी अर्थ कमर), निर्भर (स० अर्थ बहुत अधिक, पूर्ण, भरा; हिन्दी आश्रित, अवलम्बित, मुनहसिर भी), प्रान्त (स० अर्थ सीमा, अन्त, किनारा, कोना, हिन्दी अर्थ सूबा भी), परिवार (सस्कृत अर्थ घेरने वाला, नौकर-चाकर-समूह,

अनुयायी, ध्यान, हि० अथ कुटुम्ब) सूचा (ग०अर्थ सूइ, हि० अथ तालिका भी), तथा त्रुटि (स० अथ टूट, टूटना, हि० अथ भूल, दोष) आदि शब्द भी इसी प्रकार के हैं।

जहाँ तक शब्दों के शरीर या उनम प्रयुक्त ध्वनियों म तत्समता का सबध है, यह एक मोटी बात ध्यान म रखने की है कि विश्व म कोई भी दो भाषाएँ या बोलियाँ ऐसी न होंगी जिनकी ध्वनियाँ एक दूसरे से पूर्णत समान हों। सस्कृत हिन्दी भी इस सामान्य नियम का अपवाद नहीं मानी जा सकती। यदि इस समस्या को बहुत गहराई स न भी लें तो भी कुछ अन्तर तो बहुत ही स्पष्ट हैं जसे 'ऋ' ध्वनि पहले स्वर थी, अब वह रि है, 'ष' पहले 'मूर्द्धन्य' ध्वनि थी अब वह तालव्य 'श' म प्राय समाहित हो गई है, अल्प 'अ' पहले उच्चरित था, अब कुछ अपवादों को छोडकर प्राय नहीं है 'ए' अब बहुत कुछ ड हो गया है, 'ञ' ध्वनि न या 'य' सी हो गई है तथा 'ए', 'औ' वैदिक सस्कृत म आइ, 'आउ' थे, लौकिक सस्कृत म 'अइ' 'अउ', किन्तु अब ये 'अए' अओ हैं। इस अन्तरों की सूची और भी बढाई जा सकती है। निष्कर्षत तत्सम कहलाने वाले शब्द ध्वनि की दृष्टि से भी तत्सम नहीं हैं। कृष्ण, राम, चचल, शाप, ऋण, शाप जस शब्द आज के उच्चारण म क्रिश्न, रॉम, चन्चल, नश् रिड़, शाप हैं। इस प्रकार शब्द की आत्मा अर्थात अथ एव शरीर अर्थात् ध्वनि, दोनों ही दृष्टियों से तथाकथित तत्समों की तथाकथित तत्समता वैज्ञानिक दृष्टि से चिन्त्य है। मुझे तो पूरा विश्वास है कि तत्सम माने जाने वाले शब्दों म बहुत ही कम होंगे, जिन्हें तत्सम नाम का वास्तविक अधिकारी कहा जा सके।

अधतत्सम

तत्सम के प्रसग मे अर्धतत्सम' भी विचारणीय है। इसका प्रयोग ग्रियसन, चटर्जी आदि आधुनिक काल के भाषा शास्त्रियों ने उन शब्दों के लिए किया है जो एक प्रकार से तत्सम एव तद्भव के बीच म हैं। तद्भव वे हैं जो सस्कृत म पालि प्राकृत, अपभ्रश होते—परिवर्तित होते हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं म आये हैं। अर्धतत्सम वे है जो प्राकृत अपभ्रश काल म या आधुनिक भाषा काल म सीधे सस्कृत स लिये गये है और जिनमे तद्भव जैसे परिवतन नहीं हुए हैं, अपितु कुछ अन्य प्रकार के थोडे परिवतन हुए है। ये शब्द तद्भवों की तुलना म तत्सम से कुछ ही हटे हैं। उदाहरणार्थ 'कृष्ण' तत्सम शब्द है, तो 'कान्हा' 'कन्हैया' आदि तद्भव है तथा 'किसुन', 'किशन' अर्धतत्सम हैं। मेरे विचार म इनका अर्धतत्सम नाम ठीक नहीं है। तद्भव का अर्थ है जो

सस्कृत (तत्) से निकला हो, और 'कान्हा' तथा 'किशुन' दोनों ही सस्कृत कृष्ण से निकले है, अत. दोनों ही 'तद्भव' नाम के अधिकारी है। हाँ 'कान्हा' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गई थी तथा 'किशुन' के तद्भवीकरण की बहुत बाद मे शुरू हुई। ऐसी स्थिति मे पहले को 'तद्भव' या 'पूर्ववर्ती तद्भव' तथा दूसरे को 'परवर्ती तद्भव' कहना मेरे विचार जैसे शब्द परवर्ती मे अधिक समीचीन है। हिंदी मे प्रयुक्त करम, चन्दर, धरम, अच्छर, कारज तद्भव ही है। पजाबी मे, प्रमुखतः नामो मे, ये परवर्ती तद्भव बहुत अधिक है। जैसे सुरिन्दर, राजिन्दर, भुपिन्दर, महेन्दर आदि।

तद्भव

वे शब्द जो 'तत्' अर्थात् सस्कृत से 'भव' अर्थात् उत्पन्न या विकसित है। जैसे काम (=कर्म), धाम (=धर्म), दूध (=दुग्ध), नाच (=नृत्य) तथा घोडा (=घोटक) आदि। 'तद्भव' को भरत ने 'विभ्रष्ट', वाग्भट्ट ने 'तज्ज' तथा चंड और हेमचन्द्र ने 'संस्कृतयोनि' कहा है। संस्कृतभव, भ्रष्ट, अपभ्रष्ट, अपभ्र श आदि नामो से भी ये पुकारे गए है। आगे इसके साध्यमान सस्कृतभव तथा सिद्धमान सस्कृतभव आदि भेद भी किए गए है।

विदेशी

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, विदेशी शब्द का अर्थ है वे शब्द जो अन्य देशो की भाषाओ से आये हो। इन्हे 'म्लेच्छ शब्द' भी कहा गया है। प्राचीन भारतीय पण्डितो को विदेशी शब्दो का विशेष पता नही था। इसका प्रमुख कारण यह था कि उस समय तक भाषाओ के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा नही थी, और विदेशी भाषाओ के बारे मे भी हमारे प्राचीन पण्डितो की जानकारी प्राय: बहुत ही कम थी। यही कारण है कि अनेक विदेशी शब्दो को हमारे यहाँ तत्सम या देशज आदि मान लिया गया। उदाहरणार्थ सस्कृत मे 'सूर्य' अर्थ मे 'मिहिर' मध्ययुगीन फारसी का शब्द है, किन्तु संस्कृत के पडितो ने इसे सस्कृत धातु मिह् (=छिडकना आदि) मे इर (किरच्) प्रत्यय के योग से बना माना है। इसी प्रकार 'देशी नाममाला' मे कई विदेशी शब्दो (जैसे 'दत्थरो' जो वस्तुत फारसी 'दस्तार' (रूमाल आदि) के सस्कृत मे प्रयुक्त रूप 'दस्तार' से विकसित है) को देशज मान लिया गया है। 'दीनार', द्रम्म' आदि कुछ शब्दो के बारे मे अवश्य कुछ प्राचीन पण्डितो को पता था कि ये विदेशी हैं, किन्तु इस प्रकार ज्ञात शब्दो की सख्या बड़ी नही है, यद्यपि ऐसे शब्द है काफी।

भारतीय आर्यभाषा में विदेशी शब्दों के लिए जाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। जैसा कि पुस्तक में अन्यत्र संकेत किया गया है भारोपीय भाषा-भाषियों ने बहुत पहले (भारत में आने के कई सौ वर्ष पूर्व) सुमेरी भाषा से ग्राउ (स० गो अं० काउ, फा० गाव आदि) संस्कृत 'परशु (अक्कादी में पिलक्कु और, सुमेरी 'बलग) तथा रोध (स० लोह, रुधिर आदि) और एशियन से पथम (स० अयस) लिए थे। इसी प्रकार भारत ईरानियों ने यूराली भाषा से उन शब्दों को लिया जो संस्कृत में सूर्य, मक्षिका, छाग, वज्र, कूप, शलाका, शृंग, हिरण्य एवं वाराह रूप में मिलते हैं। भारत में आने पर भी समय-समय पर अनेक विदेशी शब्द संस्कृत में आते रहे। जैसे यूनानी से स० द्रम्य द्रम, द्रम्म (drakhme प्रा० दम्म हि० दाम दमड़ी) स० समिता समिदा (semidalis स० में अर्थ मैदा है, प्रा० मिमिदा, हि० सवई सेंविया), स० सुरंग सुरुंग (syrinx हि० सुरंग) यवन (ion) होरा (होरा), केन्द्र (केन्त्रान्), खलिन (खलिनोस) क्रमेल, क्रमेलक (कमेलास), कस्तूरी (कस्तोरइ मोउस कस्तोर), कस्तीर (कस्सितरास्, हि० कासा) कपु (केप्रवास्, हि० कगनी)। लैटिन से रोमक, रोमन, दीनार। ईरानी से क्षत्रप (क्षत्र, पावन) दीपि (दिपि) कुंडुक (कुंडुर) लिपिस्त (=लिखित, लिपिदन) मिहिर (प्राचीन फा० मिथ्र, मध्य फा० मिहिर, तुलनीय स० मित्र) मग, (मग, मगुस, ब्राह्मणों की एक जाति), गंज गंजवर तरम्बुज, तीर तूण। प्राकृत में पाइयक (पाईक, हि० पाइक=पैदल सिपाही या हरकारा) मोचिका (हि० मोची मध्यवर्ती पहलवी मोचक=घुटनों तक का जूता, परवर्ती फा० में मोचक' ही मोजा हो गया जो हिन्दी आदि में मूल अर्थ तथा जुराब दोनों में मिलता है)। मध्यकालीन फा० 'तख्त' का प्रा० टठ, टट्ठ जो भोजपुरी अवधी आदि में टाठी (थाली) बना। हिन्दी का ठठेरा भी मूलतः इसी से सम्बद्ध है, फा० तख्त > प्रा० ठट्ठ + कार + क > ठठ्यारअ > ठठेरा। पुस्तक पुस्तिका (पहलवी पोस्त (=लिखने का चमड़ा) के संस्कृतीकृत रूप पुस्त + क प्रा० पोत्थिआ, हि० पोथी), स० सेवक (प्रा० सवक < मध्ययुगीन फा० सिक्क (हिन्दी सिक्का) अर० सिक्क सिक्कत < पार्मेइक सिक्क = सिक्के का साँचा)। प्राचीन काल में चीन से भी भारत का सम्बन्ध पुराना है। चीनी से संस्कृत में चीन (चीनांशुक), कीचक (मूल शब्द किचाक, एक प्रकार का बाँस) सिंदूर (मूल चीनी शब्द सिडतुड) शय (कागज के लिए पुराना संस्कृत शब्द, मूल चीनी शब्द 'सिएह'), मुसार (एक रत्न मूल चीनी शब्द म्ब-सर) तथा तसर (रेशम विशेष, मूल चीनी शब्द तइ स्सर, प्राकृत तथा हिन्दी 'टसर) आदि शब्द आये हैं। हिन्दी लीची शब्द भी मूलतः चीनी

'लीचू' है। 'चीनी (शक्कर) शब्द भी मूलतः 'चीन' पर आधारित है, किन्तु यह शब्द कदाचित् फारसी होते हुए आया है। मिस्री से : मुद्रा (मुद्रिका भी इसी से है, हि० मुँदरी), हिंदी का 'मिश्री' भी मूलतः 'मिस्री' है जो सं० 'मिश्र' के प्रभाव से 'मिश्र' उच्चरित होता है। यों काफी लोग इसे 'मिस्री' भी कहते हैं। तुर्की से : तुरुक, ठक्कुर, खच्चर।

इस प्रकार संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक भाषाओं से शब्द लिये गये हैं। हिन्दी ने भी इसी परम्परा में पश्तो, तुर्की, फारसी, पुर्तगाली, अंग्रेजी, फ्रांसीसी, डच, स्पेनी, रूसी कई भारतीय भाषाओं से शब्द लिये हैं।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि विदेशी शब्द भी दो प्रकार के हो सकते हैं, एक तो तत्सम और दूसरे तद्भव। तत्सम तो वे हैं जो उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे विदेशी भाषा में होते थे, तथा तद्भव वे हैं जो अपने मूल रूप से परिवर्तित हो गए हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'पम्प' तत्सम विदेशी (अंग्रेजी) है तो 'दर्जन' तद्भव (अंग्रेजी) है।

हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में विदेशी शब्दों का एक और भी रूप मिलता है। यह है अनूदित रूप। ये अनूदित शब्द अपनी रचना में तो तत्सम या मिश्र या तद्भव हो सकते हैं किन्तु मूलतः ये विदेशी हैं, क्योंकि उन्हीं के आधार पर बने हैं। हिन्दी में, ऐसे शब्दों में कुछ तो फारसी से आये हैं जैसे जलवायु (आबहवा) कटिबद्ध (कमरबस्ता) आदि, किन्तु अधिक शब्द अंग्रेजी से आये हैं। कुछ उदाहरण हैं : लालफीताशाही (red tapism) दृष्टिकोण (angle of vision), श्वेतपत्र (white paper), काला जादू (black magic), दृष्टि-बिन्दु (point of view), रजतजयन्ती (silver jubilee), डाकखाना (post office), मालगाडी (goods train), सवारी गाड़ी (passenger train), अन्तरिम (interim), तदर्थ (ad hoc), प्रधानाध्यापक (head master), वातानुकूलित (air-conditioned), सुसंतुलित (well-balanced), उपकुलपति (v. c.), प्रार्थनापत्र (application), विराम-चिन्ह (punctuation mark), योजक-चिन्ह (hyphen), पूर्णविराम (full stop), ललित कला (fine art), उपयोगी कला (useful art), सम्पादकीय (editorial), प्रकाशक (publisher) संस्करण (edition) आदि।

विदेशी वर्ग में आने वाले शब्दों के लिए 'विदेशी' नाम बहुत उपयुक्त नहीं है, क्योंकि किसी भी अन्य भाषा से आया शब्द इसी के अन्तर्गत आयेगा, चाहे वह देश की हो या विदेश की। इसीलिए 'गृहीत', 'आगत' या 'बाह्य' नाम अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी में बंगला भाषा से आया शब्द विदेशी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि इन चारों में उसे

स्थान दिया जायगा। इन तीनों में 'गृहीत' या 'आगत' नाम अधिक स्वीकार्य हैं।

देशज

भरत ने इसे 'देशी मत', चंड ने 'देशीप्रसिद्ध', कुछ लोगों ने 'देशजात', 'देशिका', तथा हेमचन्द्र, मार्कंडेय आदि ने 'देश्य' या 'देशी' कहा है। इनकी परिभाषा के सम्बन्ध में विवाद है। चंड ने उन शब्दों को देशीप्रसिद्ध कहा है जो संस्कृत एवं प्राकृत (अर्थात् तत्सम एवं तद्भव) न हों, रुद्रट के अनुसार इनकी प्रकृतिप्रत्यय मूला व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती, हेमचन्द्र, बीम्स, भंडारकर आदि के अनुसार इनकी संस्कृत से व्युत्पत्ति सम्भव नहीं। हार्नल ने संकेत किया है कि ये व तद्भव शब्द हो सकते हैं जो इतने विकृत हो गए हैं कि उनका तत्सम रूप पहचाना नहीं जा सकता। ग्रियर्सन मुंडा, द्रविड़, प्रान्तों में विकसित प्रांतीय शब्द एवं प्रायमिक प्राकृतों के तद्भव आदि को, जो संस्कृत शब्दों से जोड़े नहीं जा सकते, देशज मानते हैं। चटर्जी ने इन्हें आर्यपूर्व द्रविड़, कोल शब्द कहा है। इसी प्रकार की और भी परिभाषाएं एवं मान्यताएँ दी गई हैं।

मैं 'वास्तविक देशज' शब्द तथा 'देशज माने जाने वाले' शब्दों में अंतर मानता हूँ। वास्तविक देशज शब्द तो वे हैं जो किसी भाषाक्षेत्र में बिना किसी आधार (तत्सम, तद्भव, गृहीत (loan), शब्द, तथा अनुकरण आदि) के विकसित हो गए हों, और जो शब्द देशज माने जाते हैं वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति का हमें पता नहीं है। सच्चे देशज शब्द का पहचानना मेरे विचार में प्रायः असम्भव-सा है। इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि देशज शब्द हो सकते हैं होते हैं किन्तु यह कहना मुझे भ्रामक और अवैज्ञानिक लगता है कि अमुक ये ये शब्द देशज हैं। देशज माने जाने वाले शब्द देशज हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि ये अज्ञात व्युत्पत्ति के हैं। अतः इन्हें 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम देना मेरे विचार में अधिक वैज्ञानिक है क्योंकि यह असम्भव नहीं कि इनमें अनुकरणात्मक, दूसरी भाषाओं से गृहीत, तद्भव या यहाँ तक कि—यद्यपि बहुत ही कम—तत्सम शब्द छिपे हों। हम जानते हैं कि हेमचन्द्र द्वारा स्वीकृत देशज शब्दों में अनेक तद्भव या विदेशी सिद्ध हो चुके हैं। हिन्दी में कुछ प्रसिद्ध अज्ञातव्युत्पत्तिक शब्द ये हैं: कबड्डी, खादी गड़बड़, चपला, घूँट चपत चूहा, झंझट झगड़ा, टट्टू, टीस, ठेठ, ठेस, तेंदुआ थोथा, धब्बा, पेठा, पेड़, भर्ता आदि।

अनुकरणात्मक शब्द

इन्हे प्राय. देशज शब्दो के अन्तर्गत रखा जाता है, किन्तु मैं इनका एक अलग वर्ग बनाने के पक्ष में हूँ। देशज शब्दो की तरह ये अज्ञातव्युत्पत्तिक तो है नही। हमे इनकी व्युत्पत्ति का पता है। ये अनुकरण के आधार पर बने है। अत इन्हे देशज के अन्तर्गत नही रखा जाना चाहिए।

अनुकरणात्मक शब्दो के कई भेद हो सकते हैं।

(क) ध्वन्यात्मक—जैसे फटफटिया, भोपू, सीटी आदि। इनमे अनुकरण ध्वनि का होता है। ऐसे शब्द प्राय सभी भाषाओ मे थोड़े-बहुत मिल जाते हैं।

(ख) दृश्यात्मक—जैसे बगबग। इनमे दृश्य का अनुकरण होता है। इस प्रकार के शब्द बहुत ही कम होते हैं। यह भी असम्भव नही कि इस वर्ग मे आने वाले शब्द किसी पूर्ववर्ती शब्द पर आधारित हों। वैसी स्थिति मे इनकी सत्ता पर प्रश्नवाचक चिह्न लग जाएगा।

(ग) प्रतिध्वन्यात्मक—जैसे घोडा-वोड़ा, चाय-चूय, पान-शान। इनमे वोड़ा, चूय, शान क्रमश· घोडा, चाय, पान का प्रतिध्वनि के आधार पर बने है। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग प्राय 'वगैरह' का भाव व्यक्त करने के लिए होता है। विश्व की अनेक भाषाओ मे ऐसे प्रयोग मिलते है। अधिकाश भाषाओ मे इसे बनाने का ढग प्राय. अलग-अलग होता है। जैसे हिन्दी मे चाय-वाय, अधिक चलता है तो पंजाबी मे चाय-शाय। उजबेक भाषा मे 'म' लगाते हैं. किताब-मिताब। गुजराती घोड़ो-वोड़ो, मराठी धोड़ा-बिड़ा, बंगाली घोडा-टोडा आदि।

आभास

कुछ शब्द होते हैं कुछ और, किन्तु उन्हे देखने-सुनने पर आभास कुछ और का होता है। इसी आधार पर पीछे कुछ शब्दो को तत्समाभास कहा जा चुका है। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने राष्ट्रीय, जागृत, पौर्वात्य, उन्नायक, सिंचन, सृजन आदि को तत्समाभास कहा है। इसी प्रकार 'मौसा' को उन्होने तद्भवाभास या अर्धतद्भव कहा है। मूल तद्भव शब्द 'मौसी' है, जिससे 'मौसा' बना लिया गया है। डॉ० दास ने आभास के आधार पर ये दो भेद किये है। यदि पाठक आभास के आधार पर और भी भेद बर्दाश्त कर सके तो मैं विदेश्याभास (जैसे कलेजा, यह लगता है विदेशी, किन्तु है स० कालेयक का तद्भव) एवं देशजाभास (जैसे बागर, जजाल, खच्चर, समोसा ; ये सभी विदेशी हैं) का सुझाव देना चाहूँगा। यों वैज्ञानिक अध्ययन मे आभास पर आधारित ये वर्गीकरण कोई महत्त्व नही रखते। वैज्ञानिक अध्ययन मे हमे देखना होता है कि कोई शब्द क्या है, यह नही कि वह क्या लगता है।

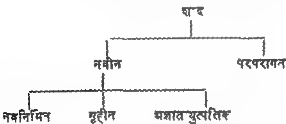
संकर मिश्रित या द्विज शब्द

उपर्युक्त वर्गों में एक से अधिक वर्गों के शब्दों को मिलाकर बनाये गये शब्द इस वर्ग में आते हैं: रेलगाड़ी, गुरुडम, पावरोटी, मालगाड़ी, दलबन्दी।

इस तरह मोटे रूप से कहा जा सकता है कि शब्द या उसके अंश के इतिहास की दृष्टि से शब्द छह प्रकार के होते हैं: तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी, अनुकरणात्मक तथा संकर।

या विदेशी को यदि गृहीत या आगत नाम दें, जैसा कि ऊपर संकेतित है तो संस्कृत से लिए जाने वाले तत्सम शब्द भी इसी के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

वस्तुतः शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी भाषा के शब्द मूलतः दो प्रकार के हो सकते हैं: परंपरागत और नवीन। आगे नवीन को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है: नवनिर्मित, गृहीत, अज्ञातव्युत्पत्तिक। फिर गृहीत के 'देश से गृहीत', 'विदेश से गृहीत' आदि उपभेद हो सकते हैं।



(ख) रचना

बनावट या रचना के आधार पर शब्द तीन प्रकार के माने गये हैं—रूढ़, यौगिक तथा योगरूढ़।

रूढ़ि—जो शब्द सार्थक शब्दों या शब्दांशों के योग से न बना हो, या जिसके संबद्ध अर्थ में सार्थक टुकड़े न किये जा सकें, उसे रूढ़ कहा जाता है। इसे मौलिक शब्द या अयौगिक शब्द भी कहते हैं। जैसे घोड़ा, हाथ, कपड़ा, आग आदि। 'घोड़ा' में यदि 'घो' और 'ड़ा' या 'घ' और 'ओड़ा' या 'घोड़' और 'आ' को अलग करें तो इन टुकड़ों के घोड़ा अर्थ में कोई अर्थ न होंगे। इसी प्रकार हाथ, कपड़ा या आग को भी देखा जा सकता है।

यौगिक—रूढ़ शब्दों के साथ उपसर्ग या प्रत्यय या कोई और शब्द जोड़कर 'यौगिक' शब्द बनते हैं। 'यौगिक' का अर्थ ही है 'जोड़ा हुआ' या 'जोड़कर बनाया हुआ'। *रूढ़ शब्दों में हमने देखा कि उनके टुकड़े करने पर कोई* सार्थक शब्द नहीं मिलते, पर उसके विपरीत यौगिक शब्दों के टुकड़े करने पर सार्थक शब्द या शब्दांश मिलते हैं। उदाहरणार्थ कटुता, अनपढ़, रसोईघर

आदि यौगिक शब्द है। इन्हें तोडने पर हम देखते हैं कि (कटु+ता (भाव-वाचक संज्ञा बनाने का प्रत्यय); अन (नहीं)+पढ, रसोई+घर) सभी टुकड़े सार्थक हैं।

योगरूढ़—यौगिक शब्द यदि अर्थ की दृष्टि से सकुचित होकर केवल किसी एक वस्तु का बोध कराये तो 'योगरूढ' कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ 'जल' एक रूढि शब्द है, इसमे 'ज' प्रत्यय जोड़कर 'जलज' बनता है। 'जलज' शब्द यौगिक है और इसका अर्थ है 'जल मे उत्पन्न'। किन्तु अब 'जलज' का प्रयोग जल मे उत्पन्न बहुत सी अन्य चीजो, जैसे सेवार, जोक, मछली आदि के लिए न होकर प्राय केवल कमल के लिए होता है, अत· यह 'यौगिक' शब्द 'योगरूढि' है। अर्थात् यौगिक है पर साथ ही विशिष्ट अर्थ मे रूढि है। यहाँ एक बात का सकेत आवश्यक है कि यह तीसरा वर्ग शुद्ध अर्थो मे रचना पर आधारित न होकर अर्थ की भी अपेक्षा रखता है। इसीलिए, तत्वत. बनावट या रचना के आधार पर दो (रूढ और यौगिक) भेद मानना ही अधिक सगत है।

बनावट के ही आधार पर शब्दो के कुछ अन्य भेद भी हो सकते है :—

(१) **समस्त शब्द** (Compound word)—यह लगभग वही है जिसे अन्यत्र यौगिक कहा गया है। भेद केवल यह है कि सामान्यत यौगिक में प्राय शब्द और प्रत्यय (सुन्दरता) या शब्द और उपसर्ग से युक्त (असुन्दर) शब्द रखे जाते हैं और समस्त शब्द मे दो स्वतंत्र शब्दो के मिलने से या समास से बने शब्द होते हैं, जैसे—राम+अनुज=रामानुज। यो तात्त्विक दृष्टि से असुन्दर भी समस्त शब्द है और इसमे समास है तथा रामानुज भी यौगिक शब्द है, क्योकि यह दो शब्दो के योग मे मिलकर बना है।

(२) **पुनरुक्त शब्द** (Doublet)—यह एक प्रकार का यौगिक शब्द है, जिसे किसी शब्द की पुनरुक्ति या उसके अभ्यास द्वारा बनाते हैं। जैसे फट-फटफटिया, भड़भड, खटखट। पुनरुक्त शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं—(क) पूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे चमचम, भड़भड़। (ख) अपूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे बीच-बचाव, रख-रखाव।

(३) **अनुवाद युग्मक शब्द** (Translation Compound)—ये एक प्रकार के ऐसे समस्त शब्द या यौगिक शब्द होते हैं, जिनमे दो शब्द एक ही या लगभग एक ही अर्थ के रहते है, अर्थात् एक-दूसरे के 'अनुवाद' या 'अर्थ' होते हैं। जैसे हाट-बाजार, दवा-दारू, होश-चेत। ये भी तीन प्रकार के हो सकते है। (क) कभी तो एक शब्द विदेशी होता है, और दूसरा अपना। जैसे (पाउ-रोटी (पाउ पुर्तगाली मे रोटी का वाचक है), आसा-सोटा, ध्वज-निशान, हाट-

बाज़ार, ताला-कुलफ़, खेल-तमाशा, साग-सब्ज़ी, लाज-शरम। (ख) कभी-कभी दोनों शब्द अपने ही होते हैं, जैसे जीव-जन्तु, माया-पिमान, काम-काज, बनाव-सिंगार, और (ग) कभी-कभी केवल विदेशी शब्दों से ही इस प्रकार के शब्द बन जाते हैं। जैसे इज़्ज़त-आबरू, नाज़-नख़रा, दवा-दारू, शील-मुरव्वत, कर्ज़ा-कुवाम, सौदा-सुलफ़। ऐसे शब्दों को अनुवाद-समास, अनुवाद-मूलक समास या अनुवाद-मूलक सामासिक पद भी कहते हैं। इस प्रकार के शब्द बनाने की प्रवृत्ति नई नहीं है। संस्कृत में घाटिकोष (घाटि=घोड़ा, कोल भाषा में; हान=घोड़ा, द्रविड़ में) ऐसा ही शब्द है।

(ग) प्रयोग

प्रयोग के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है

(1) सामान्य, अर्धपारिभाषिक, पारिभाषिक

सामान्य तो वे हैं जो सामान्य भाषा में प्रयुक्त होते हैं। जैसे खाना, पेड़, पानी, मिट्टी आदि। पारिभाषिक शब्द उनको कहते हैं जो शास्त्र या विज्ञान विशेष में विशेष अर्थ में आते हैं। जैसे अनुप्रास (काव्य), सर्वनाम (व्याकरण), प्रकरी (नाट्यशास्त्र), समीकरण (भाषाविज्ञान) आदि। अर्धपारिभाषिक शब्दों की स्थिति बीच की है। ये सामान्य भाषा में भी प्रयुक्त होते हैं और

पँर श्लील हैं, लिंग, योनि अल्पश्लील तो लॉड, बुर अश्लील ।

(iv) प्रयुक्त—अल्पप्रयुक्त—अप्रयुक्त

स्पष्ट ही पहले वर्ग के शब्द प्रयोग मे होते है, और दूसरे का अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है, और तीसरे का प्रयोग प्राय नही के बराबर होता, या नही होता आग-अनल-हुताशन, हाथी-हस्ती-मैगल । किसी भी भाषा मे सदा-सर्वदा के लिए यह स्थिति नही होती । समय के साथ प्रयोग की बहुलता-न्यूनता मे कमी-बेगी होती रहती है और प्रयुक्त, अप्रयुक्त या अल्पप्रयुक्त होने वालेवर्ग मे आते रहते है ।

(v) सर्वक्षेत्रीय—प्रातीय

कुछ शब्द किसी भाषा के पूरे क्षेत्र मे चलते है और कुछ प्रात या स्थान या उसकी किसी बोली विशेप के क्षेत्र तक सीमित होते हैं । उदाहरणार्थ : अच्छा-निम्मन, कटोरा-खोरा, थाली-ठाढी, तोरी नेनुवा-घेवड़ा आदि ।

(घ) अर्थ

इस आधार पर भी एकाधिक प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है । जैसे :—

(i) सरल—अल्पक्लिष्ट—क्लिष्ट

यह भेद मूलत. प्रयोग पर ही आधारित है । बहुप्रयुक्त शब्द अर्थ की दृष्टि से सरल लगता है, तथा अल्पप्रयुक्त अल्पक्लिष्ट और अप्रयुक्त क्लिष्ट : नरम-मसृण, चिडिया-विहग-द्विज, झोपडी-उटज ।

(ii) स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त

स्थूल या मूर्त शब्द ठोस या मूर्त चीजो को व्यक्त करता है । जैसे लोहा, पानी, हाथी, घास । सूक्ष्म या अमूर्त मे अहिंसा, ब्रह्म, आत्मा, हवा जैसे शब्द आते है । स्थूलता या सूक्ष्मता के आधिक्य के आधार पर इसके और भी भेद-उपभेद किये जा सकते है ।

(iii) वाचक--लक्षक--व्यजक

वाचक शब्द मात्र अपना कोशार्थ या साक्षात अर्थ देता हे । जैसे घास । लक्षक शब्द मुख्यार्थ से भिन्न अपना लाक्षणिक अर्थ भी देता है । जैसे गदहा (मूर्ख), शेर (वीर), गीदड (कायर) । व्यजक शब्द अपने कोशार्थ एव लाक्षणिक अर्थ के अतिरिक्त व्यग्यार्थ भी देता है । जैसे वह गदहा=लाक्षणिक अर्थ 'वह मूर्ख है', व्यग्यार्थ 'वह मूर्ख है', अत. उससे कुछ हो नही सकता या उससे दूर रहना चाहिए, वह समझ नही सकता । वस्तुत. एक ही शब्द प्रयोग के आधार पर तीनो प्रकार का माना जा सकना है । इस प्रकार यह भेद प्रयोग से भी सबद्ध है ।

शब्द-संकलन

शब्दों के अध्ययन के लिए सबसे पहले सामग्री संकलन या शब्द संकलन आवश्यक है। शब्द संकलन के लिए दो आधार हैं। या तो हम किसी लिखित सामग्री से शब्द संकलन करते हैं या मौखिक रूप में सुनकर। प्रकाशित या लिखित कृतियाँ, दस्तावेज या अभिलेख आदि प्रथम वर्ग में आते हैं। किसी बोली जाने वाली भाषा या बोली अथवा लोक-साहित्य आदि के शब्दों का संकलन दूसरे वर्ग में आता है। दोनों ही की अलग अलग पद्धतियाँ हैं। आगे इन पर पृथक-पृथक विचार किया जा रहा है।

लिखित सामग्री से शब्दों का संकलन शब्दानुक्रमणी (*Word index*) रूप में तैयार किया जाता है। शब्दानुक्रमणी लिखित सामग्री में प्रयुक्त सारे शब्दों की वर्णानुक्रमानुसार सूची होती है जिसमें इस बात का भी संकेत रहता है कि शब्द कहाँ कहाँ आया है। इस प्रकार उसमें न केवल सारे शब्द होते हैं, अपितु हर शब्द के सारे प्रयोगों के संदर्भ भी होते हैं।

लिखित सामग्री की शब्दानुक्रमणी तैयार करने के लिए सबसे पहले उस कृति, पुस्तक, लेख या अभिलेख का वैज्ञानिक पद्धति से पाठ निर्धारित कर लेना आवश्यक है। विशेषतः पाठ निर्धारण की आवश्यकता ऐसे पुराने साहित्यकारों की कृतियों में पड़ती है जिनकी रचनाओं की एक से अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में सभी प्रतियों की तुलना के आधार पर कृति के पाठ का निर्धारण किया जाता है। यदि किसी की एक ही पाण्डुलिपि उपलब्ध हो किन्तु वह भ्रष्ट हो तो तत्कालीन अन्य कवियों—विशेषतः उसी भाषा एवं धारा की रचनाओं के अध्ययन तथा पाठालोचन विषयक अन्य सिद्धान्तों के आधार पर उसके पाठ में भी संशोधन किया जाता है। आधुनिक लेखकों की अनुक्रमणी बनाने में भी बड़ी सतर्कता अपेक्षित होती है। ऐसा प्रायः होता है कि मुद्रित पाठ में एकरूपता न हो। किसी भी अनुक्रमणी बनाने वाले ने यदि आँख मूँदकर मुद्रित पाठ के आधार पर अनुक्रमणी बना डाली तो असफलता

के कारण कई प्रकार की गड़बडियाँ रह जाती है। उदाहरण के लिए मान ले कि पाडुलिपियो के आधार पर संशोधित प्रति मे या मुद्रित कृति मे कही तो 'करनेवाला' है और कही है 'करने वाला'। अब यदि एक स्थान पर 'करने वाला' को एक शब्द मानकर अनुक्रमणी मे रखा गया तथा दूसरे स्थान पर 'करने' को अलग और 'वाला' को अलग शब्द रखा गया तो अनुक्रमणी त्रुटि-पूर्ण हो जायेगी। 'वाला' शब्द जहाँ होगा, वहाँ 'करने वाला' के 'वाला' का सदर्भ तो मिल जायेगा किन्तु 'करनेवाला' के 'वाला' का सदर्भ नही मिलेगा। इसी प्रकार यदि कही 'उस ने', लिखा या छपा है और कही 'उसने', तो 'ने' के दोनो सदर्भो का पता नही चल सकता। विभिन्न भाषाओ मे वर्तनी और प्रेस-सम्बन्धी गड़बड़ियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती है, जिनके कारण शब्दानु-क्रमणी त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण हो सकती है। इस दृष्टि से, अनुक्रमणी बनाने के पूर्व, ग्रन्थ को आद्यंत पढकर उसमे वर्तनी की दृष्टि से आवश्यक सशोधन कर लेना अधिक अच्छा होता है। यह तो लेखन या मुद्रण की गडबडी की बात थी। भाषा-विशेष की लेखन-पद्धति के कारण भी गड बड़ी हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी मे सर्वनामो के साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखते है जैसे उसने, मुझमे, तुमको, किन्तु सज्ञा के साथ अलग लिखते है, जैसेर ाम ने, मोहन मे, श्याम को मान ले इनकी शब्दानुक्रमणी बनानी है और इसी प्रकार बना दी गई तो परिणाम यह होगा कि अनुक्रमणी मे 'ने' और 'को' केवल संज्ञा के साथ वाले ही आयेगे, सर्वनाम के साथ के 'ने' और 'को' के सदर्भ उनके साथ नही मिलेगे। इसके लिए अच्छा यह होगा कि जिनके साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखे जाते है, उन्हे सयुक्त रूप मे (जैसे उसने,उसको) अलग लिखा तो जाय, किन्तु साथ ही कारक चिह्नो (जैसे यहाँ 'ने' या 'को' को) के सदर्भ अलग आने वाले कारक चिह्नो के साथ भी दे दिये जायँ। दोनो मे अन्तर के लिए दोनो को अलग-अलग भी रखा जा सकता है, जैसे ने १. २. ४, आदि (अलग 'ने' के लिए), तथा—ने-१. ३. २, आदि (सम्बद्ध 'ने' के लिए)। दोनो को मिलाकर एक मे भी रखा जा सकता है। इसके लिए 'ने' शीर्षक के अन्तर्गत ही सदर्भों के साथ कुछ सकेत दिये जा सकते है। जैसे, जहाँ 'ने' अलग है, उसका सदर्भ सामान्य रूप मे दिया गया, किन्तु जहाँ सम्बद्ध है उनके साथ कोष्ठक मे 'स' या कुछ और लिख दिया जाय। जैसे 'ने' १. ४. २; २. ३. ४ (स), ३. २. ६।

सधित या सामासिक पदो के सम्बन्ध मे भी यही नीति बरतनी चाहिये। यदि इनमे दूसरा भी स्वतन्त्रत उस भाषा मे प्रयुक्त होता हो तो उसे अलग भी देना चाहिए और उसके बँधे रूप का भी सकेत दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ रामावतार, यथाशक्ति आये हो तो रामावतार और यथाशक्ति को अलग-अलग

तो देना ही चाहिए साथ ही अवतार और शक्ति को अपने अपने स्थान पर दिखाना चाहिए। और इनके साथ इनके समास या संधि में द्वितीय सदस्य होने का भी संकेत किया जाना चाहिए — अवतार, शक्ति।

ये बातें हिंदी की दृष्टि से कही गई हैं। इस प्रकार के नियम सभी भाषाओं के लिए अलग अलग बनाये जा सकते हैं। इसके सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त यह है कि जिस भाषा की पुस्तक की अनुक्रमणी बनानी हो, उसकी लघुतम इकाई [शब्द रूप, अच्छा हो कि उपसर्ग प्रत्यय, मध्यसर्ग आदि भी] दी जाय। स्वतन्त्र शब्दों या रूपों को अलग अलग सामान्य रूप से दिया जाय और जो केवल प्रारम्भ में (जैसे उपसर्ग) केवल मध्य में (जैसे मध्यसर्ग) या अन्त में (जैसे प्रत्यय, परसर्ग या संधि या समास के प्रथमेतर सदस्य) आय हों उन्हें अलग दिया जाय या उनके ही अलग आने वाले रूपों के साथ, किसी भेदक चिह्न या संकेत के साथ लिया जाय। ऐसी अनुक्रमणियों से भाषावैज्ञानिक अध्ययन में बहुत सहायता मिलती। यहाँ तक कि यदि उस लेखक या पुस्तक के कारक चिह्नों उपसर्गों मध्यसर्गों या प्रत्ययों आदि पर विचार करना हो, तो भी ऐसी अनुक्रमणी के आधार पर सरलता से विचार किया जा सकता है। सामान्य समासों को तोड़कर अलग अलग शब्दों को अपने अपने स्थान पर भी दिया जा सकता है। जैसे मुखचन्द्र' के लिए बहुत आवश्यक नहीं है कि मुखचन्द्र को भी अलग लिया जाय। यथास्थान मुख और चन्द्र दे देना पर्याप्त है, किन्तु बहुव्रीहि समास के शब्दों को (चक्रपाणि, दशानन आदि) तो संयुक्त रूप में भी अवश्य ही दिया जाना चाहिए क्योंकि संयुक्त रूप में उनका अर्थ योगरूढ़ि होने के कारण कुछ और हो जाता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में दो बात की जानी चाहिए। पहली तो यह कि इनमें आने वाले रूपों या शब्दों या उपसर्ग प्रत्यय कारक चिह्नों आदि को, जैसा कि ऊपर कहा गया है अलग अलग देना चाहिए। दूसरे पूरे मुहावरे या पूरी लोकोक्ति को भी अलग कोश में यथास्थान देना चाहिए। इससे उस ग्रंथ या लेखक की भाषा पर विचार करते समय उसमें प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों का अध्ययन या मुहावरे लोकोक्तियों में प्रयुक्त शब्दों का अध्ययन करने में सहायता मिलेगा।

शब्दानुक्रमणी में सन्दर्भ देने में बहुत सतर्कता बरती जानी चाहिए और प्रयुक्त पद्धति का भूमिका में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। पद्य ग्रन्थों में प्रबन्ध काव्य हो तो सर्ग या अध्याय और छन्द की संख्या दी जा सकती है। मुक्तक हो तो छंद की संख्या और पंक्ति दी जा सकती है। गद्य ग्रंथों में अध्याय, पृष्ठ और पंक्ति या केवल पृष्ठ दिया जा सकता है। भूमिका में संस्करण का उल्लेख

अवश्य होना चाहिए, नही तो विभिन्न सस्करणो मे गद्य मे और कभी-कभी पद्य मे भी पृष्ठ और पक्ति मे अन्तर होने पर शब्द का ठीक पता नही चल पाता। यदि किसी लेखक के पूरे साहित्य की अनुक्रमणी वन रही हो, तो उपर्युक्त वातो के अतिरिक्त पुस्तक के नाम का सक्षेप भी दिया जाना चाहिए।

अव तक हम लोग लिखित साहित्य से शब्द-सकलन की वात कर रहे थे। लिखित सामग्री से शब्द-सकलन परिश्रम-साध्य भले हो, कठिन नही है, किन्तु मुँह से सुनकर शब्दो का सकलन परिश्रम-साध्य होने के साथ वहुत कठिन भी है। यही नही, किसी वोलचाल की भापा के सभी शब्दो का सकलन प्राय: असम्भव-सा है। क्योकि ऐसा भी हो सकता है सकलन-काल मे उपयुक्त अवसर के अभाव मे वहुत से शब्द प्रयुक्त ही न हो। खैर, इस कठिनाई के वावजूद इस दिशा मे प्रयास करना ही पडता है।

किसी वोली जाने वाली भापा या वोली के अलिखित रूप से शब्दो के लिए जो पद्धति काम मे लाई जाती है उसे 'सर्वेक्षण-पद्धति' कहते है। इस प्रकार के सर्वेक्षण से न केवल शब्द, अपितु उनमे प्रयुक्त ध्वनियाँ, उनका वाक्य-गत प्रयोग, उनके उच्चारण मे प्रयुक्त वलाघात या सुरलहर आदि सभी वातो का पता चल जाता है। यो कहने की आवश्यकता नही कि शब्दो के सर्वागीण अध्ययन के लिए इन सभी की जानकारी अपेक्षित है।

किसी क्षेत्र मे भापिक सामग्री का सकलन प्राय. दो प्रकार से करते है: (१) स्वय उस क्षेत्र मे जाकर, (२) उस भापा को मातृ भापा के रूप मे वोलने वाले अर्थात् मातृभापाभापी (Native speaker) को अपने यहाँ वुलाकर।

इन दोनो मे प्रथम ही अपेक्षाकृत अधिक अच्छा है, क्योकि उस क्षेत्र मे उस भापा का अपना वातावरण वना रहता है, अत. सहज रूप मे सवद्ध और अपेक्षित सारी सामग्री प्राप्त करना सभव होता है,। क्षेत्र के वाहर वुलाने मे निम्नाकित कारणो से ठीक और अपेक्षित पूरी सामग्री नही मिल पाती :—

(क) उक्त भापा का वहाँ मूल वातावरण नही रहता, जिसमे भाषा वोली जाती है। इसके कारण कुछ असहजता आ जाती है। (ख) वाहर जाने से नए वातावरण के भी कुछ प्रभाव की सभावना होती है जो चाहे वहुत थोड़े रूप मे सही, सूचक को प्रभावित कर सकता है। (ग) सूचक के घर या उसके गाँव मे जाकर उससे वात करने पर वह अधिक सहज रूप मे उत्तर देता है, किन्तु यदि उसे कही वाहर वुलाया जाय तो उसके अपनी भापा के प्रति अधिक सतर्क हो जाने की सभावना होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे शब्द जिन्हे वह शिष्ट या परिनिष्ठित नही समझता, प्राय. छोड जाता है।

इसके विपरीत उसके अपने वातावरण में सहज रूप से बात करने का प्रयत्न किया जाय तो ऐसी सामग्री के छूटने का भय अपेक्षाकृत कम संभावना रहती है। (घ) उस गाँव में होने पर किसी शब्द या उसके प्रयोग आदि में संदेह होने पर दूसरों से बात करके सही रूपादि प्राप्त किए जा सकते हैं किन्तु उस क्षेत्र के बाहर ऐसी सुविधा नहीं होती। (ड) क्षेत्र में हाथ से इशारा करके भी अनेक वस्तुओं, सज्ञाओं, क्रियाओं के नाम आदि पूछे जा सकते हैं किन्तु क्षेत्र के बाहर, यह आवश्यक नहीं है कि क्षेत्र में उपलब्ध सभी वस्तुएँ आदि हों ही। इस तरह न केवल सामग्री छूट जाने का भय रहता है, अपितु यह निश्चित है कि क्षेत्र से बाहर एक-दो सूचकों की सहायता से उस भाषा या बोली का पूरा शब्द संपत्ति नहीं प्राप्त की जा सकती।

सूचक से सामग्री प्राप्त करने के लिए उसके संपर्क में आना पड़ता है। इस प्रसंग में आने वाली स्थिति दो प्रकार की हो सकती है। कभी तो ऐसा होता है कि सूचक केवल अपनी भाषा जानता है उसे किसी ऐसी दूसरी भाषा का जानकारी नहीं होती जो सामग्री संकलित करने वाले या अन्वेषक की ज्ञात हो और कभी कभी इसके विपरीत वह ऐसी कोई एक (या अनेक) भाषा (एँ) जानता है और वह भाषा (या भाषाएँ) उन दोनों के बीच विचार विनिमय के माध्यम का काम करती है (हैं)। पहली स्थिति में उन दोनों के बीच केवल वही भाषा होती है, जिसकी सामग्री लेनी है अतः इस रूप में सामग्री संकलन की पद्धति को एकभाषिक (monolingual) पद्धति कहते हैं तथा दूसरी को द्विभाषिक (bilingual) पद्धति, क्योंकि उस स्थिति में उन दोनों के बीच एक और भाषा भी आ जाती है। दूसरी में यदि एक से अधिक भाषाओं को माध्यम बनाया जाय तो उसे बहुभाषिक पद्धति कह सकते हैं। या एकभाषिक पद्धति के सादृश्य पर दूसरा को अनेकभाषिक पद्धति भी कहा जा सकता है जिसमें द्विभाषिक और बहुभाषिक दोनों पद्धतियाँ समाहित हो सकती हैं। आगे की बातें मुख्यतः एकभाषिक पद्धति को ध्यान में रखकर कही गई हैं। द्विभाषिक या बहुभाषिक पद्धति से सामग्री संकलन अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है। उसके लिए जिस भाषा को विचार विनिमय का माध्यम बनाना होता है उसमें प्रश्नावली तैयार करते हैं। प्रश्नावली बनाते समय मुख्यतः केवल इस बात का ध्यान रखते हैं कि वह इतनी व्यापक हो कि उसके उत्तर स्वरूप उक्त भाषा की अधिकाधिक शब्द संपत्ति प्राप्त की जा सके।

सर्वेक्षण पद्धति के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें विचार्य हैं

सूचक—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सूचक उस व्यक्ति को कहते हैं, जिससे सूचना (भाषा विषयक सामग्री) प्राप्त की जाय। सूचक के चयन आदि

के सम्बन्ध मे प्रमुख रूप से ये बाते ध्यान मे रखने की है .

(१) सामान्यतया १७-१८ वर्ष से कम का सूचक बहुत काम का नही होता। यो मेरा अपना अनुभव तो यह रहा है कि ३०-३५ वर्ष के आसपास का सूचक बहुत अच्छा होता है क्योकि वह अपनी भाषा की सूक्ष्मताओ से अधिक परिचित होता है। ४० वर्ष से ऊपर के सूचको मे साधारणतया अपेक्षित चुस्ती नही होती।

(२) कभी-कभी एक ही स्थान की भाषा, उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, उच्च जाति-निम्न जाति, हिन्दू-मुसलमान, विशेष प्रकार के अलग-अलग पेशे, आदि दृष्टियो से एकाधिक प्रकार की होती है। यह अतर शब्द-समूह के क्षेत्र मे सर्वाधिक होता है। सूचक-चयन के समय इसका विचार भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति मे कई सूचको (कुछ पुरुषो कुछ स्त्रियो) से सामग्री लेना अधिक अच्छा रहता है।

(३) एक स्थान से दो-तीन सूचक लिये जाने चाहिए, किन्तु सभी से अलग-अलग (दूसरे की उपस्थिति मे नही) सामग्री नोट करनी चाहिए। जो बातें सभी मे समान हो, वे निश्चित रूप से ठीक हैं, किन्तु जिनमे अंतर है, आवश्यक नही कि सर्वदा लगत ही हो। उम्र, व्यवसाय, कुल-परंपरा, शिक्षा आदि अनेक कारणो से अतर पड सकता है। ऐसी स्थिति मे उन्ही सूचको से फिर सुनकर, या अन्य सूचकों से पता लगाकर शुद्धि-अशुद्धि या स्थानीय अतर आदि का निर्णय किया जा सकता है।

(४) स्त्री-पुरुष मे पुरुष सूचक अपेक्षाकृत अधिक अच्छे होते हैं, क्योकि अधिक सामाजिक जीवन बिताने के कारण, उनका भाषा-विषयक अनुभव भी अधिक होता है। किन्तु इसके साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि पुरुष सूचकों पर बाह्य प्रभाव की अधिक सभावना रहती है। स्त्री सूचक अपेक्षाकृत अधिक अप्रभावित एव ठेठ भाषा का प्रयोग करती है। ऐसी स्थिति मे यदि कोई कठिनाई न हो तो पुरुष और स्त्री दोनो से सामग्री ली जानी चाहिए।

(५) पुरुषो और स्त्रियो की भाषा मे शब्दो, रूपो, मुहावरो आदि के स्तर पर कभी-कभी अतर भी मिलते है। इसीलिए अपनी आवश्यकतानुसार पुरुष से, स्त्री से या दोनो से सामग्री ली जा सकती है।

(६) कभी-कभी कुछ पिछडे वर्गों या जातियो में स्त्रियाँ दूसरो से नही मिलती-जुलती। ऐसे स्थानो पर केवल पुरुष सूचक से काम चलाना पड़ सकता है।

(७) शब्दो-प्रयोगो आदि के स्तर पर कम आयु, अधिक आयु और बहुत अधिक आयु के लोगो मे कभी-कभी अंतर मिलता है। शब्दो के स्तर पर

भी इस प्रकार के अंतर मिलते हैं। हिन्दी में ही सुशिक्षितों की पुरानी पीढ़ी 'आश्चर्य और मूर्ख' का प्रयोग करती है, किन्तु नई पीढ़ी 'अचरज और मूरख' (सात युगोत्सव कहानियाँ—प्रभाकर माचवे १९६२ इसमें एकाधिक बार 'मूर्ख' के स्थान पर 'मूरख' प्रयुक्त हुआ है) को भी परिनिष्ठित हिन्दी का अंग मानती है। सामान्यतः नई पीढ़ी के लोगों को धर्म, अंधविश्वास आदि विषयक शब्दों या वर्जित शब्दों (टबू) के सम्बन्ध में पुरानी पीढ़ी की तुलना में कम जानकारी होती है। अलग-अलग क्षेत्रों में इससे मिलते-जुलते अन्य प्रकारों के भी अंतर मिल सकते हैं। यदि इस प्रकार अंतरों का पता करना भी हमारा लक्ष्य हो तो तदनुकूल सूचक चुने जा सकते हैं।

(८) सूचक कई पुश्तों से यदि उसी क्षेत्र में रह रहा हो तो अधिक अच्छा है, क्योंकि बाहर से आने वालों की भाषा में किसी न किसी स्तर पर किन्हीं और भाषाओं के प्रभाव की पूरी संभावना रहती है। इस प्रकार उससे उस भाषा या बोली की शब्दावली का प्राकृत रूप नहीं मिल पाता।

(९) सूचक कई पीढ़ियों से वहाँ रह रहा हो किंतु यदि वह अपने जीवन काल में अधिक दिनों तक कहीं बाहर रहा हो तो भी उसकी भाषा में बाह्य तत्त्वों के आ जाने की संभावना रहती है, अतः अच्छा हो कि ऐसे व्यक्ति को सूचक बनाया जाय जो अधिक दिनों के लिए कहीं बाहर न गया हो।

(१०) सामग्री के साथ सूचक का नाम, उसकी आयु, स्थान, परिवार के लोगों, मूल स्थान, प्रवास तथा पेशा विषयक संक्षिप्त इतिहास आदि लिख लेना चाहिए। सामग्री विश्लेषण में इनसे बड़ी सहायता मिलती है।

(११) समझदार आदमी अधिक अच्छा सूचक बन सकता है क्योंकि वह सर्वेक्षक की आवश्यकता को जल्दी समझ सकेगा।

(१२) अल्पभाषी, लज्जालु, एकान्तप्रिय या बहुत गंभीर व्यक्ति प्रायः अच्छे सूचक नहीं बन पाते। इसके विपरीत बातूनी, हँसमुख, न झेंपनेवाला व्यक्ति सूचक के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होता है।

(१३) सूचक ऐसा होना चाहिए जो सहज रूप में बोले। बहुत से लोग सतर्क होकर बनावटी भाषा बोलने लगते हैं। इस बात का पता चलते ही, या तो उसे छोड़ देना चाहिए या फिर उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का किसी अन्य अच्छे सूचक की सहायता से पता लगा लेना चाहिए।

(१४) सभी दृष्टियों से विचार करने पर अन्य लोगों की तुलना में किसान प्रायः अपने क्षेत्र की भाषा को अधिक प्रकृत रूप में जानता तथा बोलता है। मजदूर या अन्य नौकरी पेशा व्यक्ति की तुलना में वह प्रायः अधिक

लिखने का अभ्यास भी होना चाहिए।

प्रश्नावली—लोककथा लोकगीत पहेली या चुटकुला आदि के लिए तो किसी प्रश्नावली की अपेक्षा नहीं होती किन्तु शब्द रूप वाक्य आदि जानने के लिए सर्वेक्षक को प्रश्नावली बना लेनी चाहिए। प्रश्नावली बना लेने से एक तो सरलता एवं सहजता से सूचक अपेक्षित सूचनाएँ देता चलता है दूसरी आवश्यक सूचनाओं के छूटने का भय नहीं रहता। पर ऐसी कोई भी प्रश्नावली नहीं बनाई जा सकती जो अपने मूल रूप में बिना किसी परिवर्तन के सभी क्षेत्रों में भाषा-सर्वेक्षण के काम आ सके, क्योंकि हर भाषा या बोली की अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि भिन्न होती है। इसलिए अच्छा यह होता है कि क्षेत्र के लोगों, जातियों धर्म रहन सहन एवं उद्योग धंधे आदि से परिचय प्राप्त करके ही सर्वेक्षक को प्रश्नावली तैयार करे। फिर भी मोटे रूप से इस संबंध में कुछ सामान्य बातें बताई जा सकती हैं। (१) प्रश्नावली में स्थूल या मूर्त वस्तुओं या क्रियाओं से सम्बन्धित प्रश्न पहले आने चाहिए तथा सूक्ष्म या अमूर्त से सम्बन्धित बाद में। (२) व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा सर्वनाम विशेषण तथा वाक्य क्रम से सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से प्रश्नावली बननी चाहिए। (३) वाक्य के बाद कहानी, चुटकुले गीत जैसी चीजें पूछकर नोट की जा सकती हैं। (४) प्रारम्भ में मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि कहानी आदि से खोजी जा सकती हैं। भाषा के बारे में अच्छी जानकारी हो जाने पर स्वतन्त्र भी इन्हें पूछ कर मालूम किया जा सकता है। प्रश्नावली बनाते समय क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए निम्न आधारों की सहायता ली जा सकती है

(अ) संज्ञा—(क) शरीर के अंग—सिर पैर हाथ अँगूठा उँगली, नाखून बाल, आँख नाक मुँह कान गाल, दाँत, जीभ, होंठ भौं गर्दन छाती, पीठ, पेट कमर, जाँघ, घुटना, पिंडली। हड्डी रक्त माँस, दिल जिगर फेफड़ा जैसी चीजों के नाम बाद में पूछे जा सकते हैं।

(ख) संबंधियों के नाम—बाप माँ भाई, पति, पत्नी, पुत्र पुत्री, भाभी, जीजा, दादा दादी, ताऊ, ताई चाचा, चाची नाना, नानी मामा, मामी मौसी, मौसा बुआ, फूफा, साला साली सास, ससुर, पोता, पोती, नाती, नातिन, पतोहू।

(ग) घरेलू चीजों के नाम—चारपाई, बिछौना रजाई तकिया चादर, लोटा गिलास, थाली, कटोरी, पतीला, पतीली, कड़ाही, तवा, चमचा, अँगीठी, चूल्हा।

(घ) अन्न तथा खान-पान—गेहूँ धान जौ मटर चना, बाजरा, उड़द,

चावल, दाल, आटा, खाना, पानी, मिठाई, रोटी, पूडी, पराठा, सब्जी, आलू, बैगन, गोभी, पालक, आम, सेव, अमरूद, केला, अगूर, संतरा, नीबू, अनन्नास, नाशपाती, अखरोट, वादाम, किशमिश, काजू आदि ।

(ङ) **जीव जतुओं के नाम**—गाय, भैंस, बकरी, बैल, भेड़, कुत्ता, विल्ली, वंदर, घोडा, हाथी, शेर, चीता, हिरन, गीदड़, ऊँट, मछली, चूहा, साँप, मेढक, तोता, कोयल, मुर्गी, वत्तख, मक्खी, मच्छर आदि ।

(च) **फूलों के नाम**—गुलाव, चमेली, गेंदा, चम्पा, रातरानी, वेला आदि ।

(छ) **भौगोलिक नाम आदि**—नदी, नाला, समुद्र, पर्वत, घाटी, जमीन, आसमान, सूर्य, चाँद, तारे, वादल ।

(ज) **कपड़े आदि**—धोती, कुर्ता, टोपी, तौलिया, अंगोछा, रूमाल, कोट, पाजामा, वनियाइन, जूता, मोजा, कमीज़, स्वेटर आदि ।

(झ) **पढने-लिखने की चीजों के नाम**—किताव, कागज, कलम, स्याही, पत्र, पत्रिका, अखवार आदि ।

(आ) **सर्वनाम**—यदि एकभापिक पद्धति से पूछना हो तो सर्वनामो मे प्रारभ मे मेरा घर, उसका घर, तुम्हारा घर जैसे प्रयोगो से, सवध कारक के रूप मे मालूम किये जा सकते हैं तथा अन्य रूपो (मैं, हम, तुम, वह, यह, मुझे, उन्हे आदि) को वाद मे जानने का यत्न किया जा सकता है। हां, द्वैभापिक या वहुभापिक पद्धति से यदि सामग्री एकत्र की जा रही हो तो मूल रूप (मै, तुम, हम, वह, यह आदि) एव सवध के रूप मे दोनो ही नोट किये जा सकते है। अन्य रूप (उन्हे, मुझे, जिसे आदि) वाद मे वाक्यो के विश्लेपण के वाद खोजे जाने चाहिए। उसके पूर्व इनको जानने का यत्न अनावश्यक रूप से वहुत समय तो लेता ही है, स्पष्टत. पता चलना भी कठिन हो जाता है ।

(इ) **विशेषण**—सवसे पहले संख्यावाचक विशेपण। इनमे भी पूर्ण तथा क्रम पहले और अपूर्ण आदि वाद मे। पूर्ण मे भी दस तक पहले तथा अन्य वाद मे। रग आदि विपयक विशेपणों को छोड़कर अन्य विशेपण वाक्य के माध्यम से अधिक अच्छी तरह जाने जा सकते है। ये वाते एकभापिक पद्धति की दृष्टि से कही जा रही है। द्वैभापिक आदि मे इसका ध्यान रखना आवश्यक नही है ।

(ई) **वाक्य**—शब्दो के प्रयोग से सवधित जानकारी फुटकर शब्दो से नही प्राप्त की जा सकती। वाक्य के स्तर पर ही इन्हे पाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि ऐसे प्रश्न भी किए जाने चाहिए जिनके उत्तर स्वरूप वाक्यों की प्राप्ति हो सके ।

प्रश्नावली के लिए कुछ संकेत—संज्ञा के लिए वस्तु या जानवर आदि की ओर संकेत करते हुए 'यह क्या है ?', व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए 'यह कौन है ?' या 'यह तुम्हारा कौन है ?'।

सर्वनाम के संबंध मे कारकीय रूपों के लिए वस्तु की ओर संकेत करते हुए यह किस का (की) है ?'।

संख्याओं के लिए कई वस्तुओं को एक स्थान पर रखकर 'ये कितनी हैं ?

क्रिया के लिए स्वयं चलते या कूदते हुए 'मैं क्या कर रहा हूँ ?' या दूसरे को कुछ करते हुए देखकर, संकेत करते हुए 'वह क्या कर रहा है ?' इत्यादि।

कहानी, गीत, चुटकुले आदि का सकलन—वाक्यों के बाद इनका संकलन करना चाहिए। इनके विश्लेषण द्वारा सूक्ष्म संज्ञाएं (आत्मा, दया, श्रद्धा आदि), सूक्ष्म विशेषण (बुद्धू, चालाक, संतोषी आदि) प्रत्यय उपसर्ग समास तथा संधि आदि का पता लगाया जा सकता है तथा ऊपर जिनका उल्लेख किया जा चुका है उनसे संबद्ध जानकारी की प्रामाणिकता की परीक्षा की जा सकती है। असल में इस प्रकार के संबद्ध पाठों (Texts) में ही भाषा अपने सहज और पूरे रूप में हमारे सामने आती है। इसी कारण इसके आधार पर अपने अनेक पूर्ववर्ती निर्णय हमें बदलने भी पड़ते हैं। यों इस संबंध में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि कहानी तथा गीत आदि की भाषा कभी-कभी प्रचलित सहज भाषा से कई बातों में थोड़ी भिन्न तथा पुरानी होती है। उदाहरण के लिए अनेक भोजपुरी क्षेत्रों की बोलचाल की भाषा में मुझे पहिती (सगपहिता अपवाद है) लुचुई सगौती शब्द नहीं मिले किंतु गीतों में इनका प्रयोग खूब मिलता है। गीतों में छंद की आवश्यकतानुसार तोड़ मरोड़ की प्रवृत्ति भी असामान्य नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि कहानी गीत आदि के आधार पर भाषा के स्वरूप निर्धारण में इस दृष्टि से पर्याप्त सतर्कता आवश्यक है।

बातचीत की रिकार्डिंग—दो या अधिक सूचकों की बातचीत की टेप रिकार्डर से रिकार्डिंग करके उसे फिर सुनकर उसका विश्लेषण करना भी उस भाषा या बोली विषयक सामग्री की प्राप्ति का अच्छा साधन है। सच पूछा जाय तो दो या अधिक सूचकों की आपसी बातचीत में ही भाषा का सर्वाधिक प्रकृत रूप मिल सकता है।

सामग्री-लेखन—इस संबंध में मुख्यतः निम्नांकित बातें ध्यान में रखने की है

(१) विश्लेषण के समय कभी-कभी यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौन सी सामग्री कब ली गई थी। अतः जिन चिटों पर सामग्री नोट करें उन पर उस दिन की तिथि भी अंकित होनी चाहिए। पहले से तिथि अंकित

करने मे बची चिटो पर तिथि काटनी पडती है, अतः प्रतिदिन नोट करने के बाद तिथि अंकित करना अधिक अच्छा है।

(२) यदि चिटो पर कोई संशोधन करना हो तो ऐसे काटकर लिखना चाहिए कि पूर्वलिखित सामग्री भी पढी जा सके। कभी-कभी सशोधन पूर्व सामग्री को जानना भी आवश्यक हो जाता है।

(३) सामग्री कितने बड़े कागज पर नोट करे, यह प्रश्न भी विचारणीय है। नाइडा ने बडे कागज़ पर सामग्री नोट करने की राय दी है, जिस पर काफी कुछ लिखा जा सके। मेरे विचार मे शब्द आदि छोटी-छोटी चिटों पर नोट करना अधिक अच्छा है, ताकि फिर से सामग्री उतारनी न पडे और विश्लेषण मे चिटो को आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्गों मे रखा जा सके। हाँ, कहानी, गीत आदि बडे कागज पर नोट किये जा सकते हैं।

(४) कागज़ के एक तरफ लिखना चाहिए। दोनो तरफ लिखने मे तुलना करते समय बहुत समय लग जाता है तथा विश्लेषण मे भी कठिनाई पड़ती है।

(५) छिपाकर नही लिखना चाहिए। इससे सूचक सर्वेक्षक को उद्देश्य पर संदेह हो सकता है।

(६) हर शब्द को कम से कम दो बार सुनकर लिखना अधिक अच्छा होता है। लिखने के बाद तुरन्त एक बार दुहरा भी लेना चाहिए ताकि लेखन मे यदि कोई त्रुटि हो तो उसे ठीक किया जा सके।

(७) जो शब्द जैसे सुनाई पड़े, वैसे ही लिखना चाहिए। किसी स्तर पर बलात् एकरूपता लाने का यत्न नही किया जाना चाहिए। अनुसधाता मे ऐसी ईमानदारी बडी ही आवश्यक है।

(८) सामग्री ध्वनिग्रामिक लिपि मे न लिखी जाकर ध्वन्यात्मक लिपि मे लिखी जानी चाहिए।

(९) सूचक से सामग्री नोट करने के लिए अच्छी किस्म की पेंसिल ठीक रहती है। एक तो इससे अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी एव सरलता से लिखा जा सकता है, दूसरे कागज के भीगने पर अपठ्य होने का भय नही रहता, और तीसरे स्याही साथ रखने से परेशानी से छुटकारा मिल जाता है।

(१०) टेप रिकार्डर से टेप करके, बाद मे अकेले बैठ कर भी सामग्री लिखी जा सकती है।

अर्थ—सामग्री लिखने के साथ-साथ उसका अर्थ भी लिखते चलना चाहिए। इस सम्बन्ध मे निम्नोक्त बाते ध्यान मे रखी जानी चाहिए :

(१) स्थूल वस्तुओ के सुनिश्चित अर्थ (जैसे रोटी, चारपाई, मकान आदि) तो सरलता से लिखे जा सकते है।

(२) जिन शब्दों के लिए अपनी भाषा में शब्द न मिलें उनकी व्याख्या लिखी जा सकती है।

(३) बहुत सी वस्तुओं के ऐसे भी नाम मिल सकते हैं जिनके लिए अपनी भाषा में शब्द नहीं हैं, और उनकी ठीक व्याख्या लिखना भी जल्दी में कठिन होता है ऐसी स्थिति में उनके रेखाचित्र या संकेत से काम चलाया जा सकता है।

(४) अर्थ की दृष्टि से अस्पष्ट शब्दों के अर्थ उनके प्रयोग से पकड़ने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि सूचक के लिए शब्द का अर्थ समझना—विशेषतः *ठीक अर्थ समझना—सर्वदा सम्भव नहीं होता।*

सर्वेक्षक के लिए अन्य सुझाव—ऊपर, सर्वेक्षक कैसा हो इस सम्बन्ध में कुछ बातें कही गई हैं। यहाँ कुछ व बातें दी जा रही हैं, जिनका उसे सर्वेक्षण करते *समय ध्यान रखना चाहिए*

(१) यदि सूचक की अभिवादन पद्धति से सर्वेक्षक परिचित है या मिलते ही देखकर परिचित हो जाता है तो उसे उसी पद्धति से तुरन्त अभिवादन करना चाहिए। प्रारम्भ में बिना विशेष परिचय के अपनी पद्धति से अभिवादन करना उचित नहीं होता क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि सर्वेक्षक की पद्धति से सूचक परिचित न हो और पहली भेंट में ही उसकी यह हरकत सूचक के लिए एक रहस्य बन जाय, या यह भी हो सकता है कि उस प्रकार की क्रिया (जैसे हाथ उठाना) उसकी अपनी संस्कृति में कुछ भिन्न अर्थ रखती हो या खराब अर्थ रखती हो। विशेषतः किसी भी देश के बहुत पिछड़े आदिवासियों में जाते समय इस बात का ध्यान नितांत आवश्यक है।

(२) सूचक से मुस्कराते हुए मिलना चाहिए। यों विभिन्न स्थितियों में *मुस्कराहट व्यंग्य या मज़ाक उड़ाने की द्योतक होती है किन्तु प्रथम या मिलते* समय की सहज मुस्कान प्रायः सभी संस्कृतियों में इसी बात का द्योतन करती है कि मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेषतः एकभाषिक पद्धति में तो यह मुस्कान और भी आवश्यक हो जाती है क्योंकि सर्वेक्षक ऐसी स्थिति में नहीं होता कि बोलकर अपने भावों को सूचक तक पहुँचा सके।

(३) मिलते ही चुप न रहकर किसी न किसी भाषा में (चाहे उसे सूचक भले न समझता हो) बात करनी शुरू कर देनी चाहिए। सूचक पर इसकी सहज प्रतिक्रिया यही होगी कि सर्वेक्षक बात करना चाहता है।

(४) यदि सूचक की सभ्यता में प्रचलित विनम्रता एवं शिष्टता के ढंगों से सर्वेक्षक परिचित हो तो उसे उसी के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। उससे सूचक को अपनी ओर आकर्षित करने एवं उससे अपेक्षित सहयोग प्राप्त करने में

मदद मिलती है।

(५) क्षेत्र मे कुछ उपहार (जैसे मिठाई आदि) लेकर जाना प्राय: अच्छा साबित होता है। यदि सर्वेक्षक को इस बात का पता हो कि सूचक के क्षेत्र मे कैसा उपहार-विशेष पसद किया जायगा तो वही लेकर जाना चाहिए।

(६) सूचक से मैत्रीपूर्ण भंगिमा से स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

(७) सर्वेक्षक कुछ सीखने के लिए सूचक के पास जाता है। उसे सच्चे अर्थो मे अपने को शिष्य समझना चाहिए।

(८) सूचक की हर परंपरा, बात एव व्यवहार आदि के प्रति सर्वेक्षक को सहज प्रशंसात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि सूचक को भी इस दृष्टिकोण का पता चल जाए।

(९) यदि सूचक से कोई गलती हो जाय तो ऐसा रुख अपनाना चाहिए या ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसे ग्लानि, संकोच आदि न हो, और उसे लगे कि सर्वेक्षक यह कहना चाहता है कि कोई बात नही, ऐसी गलतियाँ तो हो ही जाती है। या ऐसी गलती देखकर भी नजरदाज कर देना चाहिए ताकि सूचक को लगे कि सर्वेक्षक ने देखा नही, या ध्यान नही दिया, ताकि उसमे लज्जा, सकोच आदि के भाव न आएँ।

(१०) सूचक के साथ जब तक भी सर्वेक्षक रहे, उसे प्रसन्नचित्त रहना चाहिए।

(११) यदि किसी प्रकार यह पता चल जाय कि किसी कारण सूचक कुछ दुखी है तो ऐसी स्थिति मे उस समय उससे सामग्री नोट करने का प्रयास न कर फिर कभी उसके लिए जाना चाहिए। यदि किसी प्रकार सभव हो तो ऐसी स्थिति मे सहानुभूति के भाव व्यक्त करना उसके समीप जाने मे बहुत सहायक होता है।

(१२) सूचक यदि कोई बात अशुद्ध भी बतलाये तो न तो उसे टोकना चाहिए और न उससे विवाद करना चाहिए। यदि किसी बात के अशुद्ध होने का सदेह है तो बिना उसे बताए, उससे फिर एक बार घुमाफिरा कर किसी अन्य प्रसग मे वही बात पूछ लेनी चाहिए। यदि फिर भी गलती का सदेह हो तो बाद मे दूसरे सूचक से पूछना चाहिए।

(१३) यदि अपने से कोई गलती या अभद्रता हो जाय तो सर्वेक्षक को क्षमा-प्रार्थी होना चाहिए। नाइडा ने अपनी भूलो पर तुरत हँसने की सलाह दी है। मेरे विचार मे कुछ स्थितियो मे तो यह ठीक हो सकता है, किंतु सभी स्थितियो मे भूल करके हँसने से गलतफहमी हो सकती है।

(१४) सूचक के शब्द या वाक्य दुहराने में यदि सर्वेक्षक से कोई अशुद्धि हो जाय और इस पर सूचक या अन्य लोग हँसें तो इसका बुरा न मानें, फिर से ठीक कहने का प्रयास करना चाहिए, और उन लोगों के साथ अधिक से अधिक बातचीत करनी चाहिए।

(१५) सर्वेक्षक को सूचक या उस भाषा के भाषियों के संपर्क में अधिक से अधिक रहना चाहिए ताकि उन लोगों को आपस में बात करते सुना जा सके।

(१६) सूचक से सुने गए कुछ शब्द या वाक्य यथावसर सूचक के सामने प्रयुक्त किए जायें तो सूचक आगे और भी तत्परता से बतलाता है, क्योंकि उसे विश्वास हो जाता है कि उसकी भाषा के संबंध में जानकारी एकत्र करने वाला व्यक्ति बताई गई चीजों परिश्रम से याद कर रहा है।

(१७) सूचक के साथ लगातार बहुत देर तक काम करना ठीक नहीं होता। ऐसा न हो कि वह ऊब कर बतलाने में रुचि लेना छोड़ दे। नाइडा ने ४५ मिनट को सामान्यतः ठीक समय माना है। मेरे विचार में ऐसा कोई नियम बनाना कदाचित बहुत व्यावहारिक नहीं। वस्तुतः समय का निर्धारण सूचक की प्रकृति (कम बोलने वाला या बातूनी), उसके पास कितना समय है उसकी उम्र (मेरा अनुभव यह रहा है कि अधेड़ या कुछ बूढ़े देर तक बिना ऊबे बतलाते रहते हैं और १८-२० वर्ष की उम्र वाले सबसे जल्दी ऊब जाते हैं) तथा उसके स्वास्थ्य आदि के आधार पर भाषा-सर्वेक्षक स्वयं कर सकता है।

(१८) सूचक से एक ही बात बार बार दुहराने को नहीं कहना चाहिए। इससे वह ऊब सकता है। यदि दो-तीन बार के बाद भी उसी को दुहराने की आवश्यकता, है तो ऐसा बाद में किसी और प्रसंग में करना अधिक उचित होगा।

(१९) 'ऐसा क्यों' या इस प्रकार के अन्य प्रश्न पूछना उचित नहीं। यदि सूचक जानता है तो बतला देगा, और यदि नहीं जानता है तो यह सोचकर कि उसे अपनी भाषा के बारे में नहीं मालूम है, ऊब सकता है और आगे सर्वेक्षक की सहायता करने से कतरा सकता है। सूचक ऐसी स्थिति में यह सोचकर भी हीन भावना का अनुभव करता है कि सर्वेक्षक उसके बारे में क्या सोचेगा कि इसे अपनी भाषा के बारे में इतनी सी बात भी नहीं मालूम है।

(२०) नाइडा ने लिखा है कि एक बार कोई सर्वेक्षक अंगुली से इशारा करके विभिन्न वस्तुओं के नाम पूछता रहा और सूचक हर बार एक ही उत्तर देता रहा। हुआ यह कि हर बार सूचक यह समझता था कि सर्वेक्षक अंगुली का नाम पूछ रहा है और वह वही बताता रहा। इस प्रकार जब एक ही उत्तर

वार-बार मिले तो ऐसी ग़लतफ़हमी का अनुमान लगा लेना चाहिए, और इससे वचने के लिए वस्तु को छुआ जा सकता है या और तरीके अपनाये जा सकते है।

(२१) नाम जानने के लिए सूचक की वस्तुओ को देखने मे, अपनी वस्तुओं को दिखाना वहुत सहायक होता है। इसका आशय यह भी हुआ कि सर्वेक्षक भी अपने साथ कुछ वस्तुएँ ले जाय, और अच्छा हो कि वह (पहले) अपनी वस्तुएँ भी दिखाए।

(२२) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय सर्वेक्षक को सतर्कता के साथ सूचक के शब्दो को सुनना चाहिए। निश्चित रूप से वह 'यह क्या है' या 'इसका क्या नाम है' या 'यह किस काम आता है' का समानार्थी कोई शब्द या वाक्य प्रयुक्त करेगा। इस प्रकार के प्रश्नो के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दो को जान लेने पर उनकी वस्तुओ के नाम-काम आदि पूछने मे सर्वेक्षक को आसानी रहेगी।

(२३) इस सम्वन्ध मे एक यह वात भी ध्यान देने की है कि यदि सूचक से सुनकर उसी रूप मे प्रश्न किया जाय और सूचक एक शब्द न कहकर एक या कई वाक्य कहे, या देर तक वोलता रहे, तो उसका आशय यह समझना चाहिए कि उस प्रश्न का अर्थ 'इसका क्या नाम है' न होकर 'यह किस काम आता है' है।

(२४) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय उनके नाम तथा काम आदि के वारे मे कुछ कहते रहना चाहिये, यद्यपि यह निश्चित है कि सूचक कुछ नही समझेगा। इससे लाभ यह होगा कि अपनी वस्तुएँ दिखाते समय वह भी उनके वारे मे कुछ कहना चाहेगा, जिससे उसकी भाषा को सुनने और कुछ प्रारम्भिक वातो को पकडने का अवसर मिलेगा।

(२५) सूचक की सस्कृति एव उसके अधविश्वास आदि को ध्यान मे रखते हुए उन वस्तुओ के नाम प्राय. नही पूछने चाहिए, जिन्हे वताने मे सूचक को किसी भी कारण सकोच हो। उदाहरण के लिए अनेक पिछडी जातियो के आदिवासी अपना नाम, रात मे साँप-विच्छू के नाम तथा शैतान-मृत आदि तथाकथित अमांगलिक शक्तियो आदि के नाम लेना नही चाहते।

आदिम जातियो मे कुछ शब्द टैवू होते है। यदि उनकी जानकारी हो तो उन्हे भी नही पूछना चाहिए।

(२६) सूचक की चीजो देखते समय उन चीजो के वारे मे उनके न समझने के वावजूद कुछ कहते और पूछते चलो, जिससे वह स्पष्ट समझ जाय कि उन वस्तुओ के वारे मे सर्वेक्षक जानना-सुनना चाहता है। इसका परिणाम यह

होगा कि वह हर वस्तु को दिखाने के समय उसके नाम काम के बारे में कुछ कहता चलता। जिससे अनेक वस्तुओं के नाम जानने तथा सूचक की भाषा समझने में मदद मिलेगी।

(२७) अनुसंधाता को सूचक की वस्तुओं के प्रति प्रशंसात्मक भाव व्यक्त करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि लोभ या उस वस्तु को लेने की गंध न आने पाए।

(२८) सूचक को सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में सर्वदा सहज जिज्ञासा का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।

(२९) ऊपर 'यह क्या है' का समानार्थी शब्द या वाक्य जानने के लिए कहा जा चुका है। वस्तुतः सर्वेक्षक के लिए सूचक की भाषा के तीन वाक्य जानना बहुत आवश्यक हैं 'यह क्या है', 'यह किसका है', 'वह क्या कर रहा है'। इनमें प्रथम से अनेक संज्ञा शब्द, दूसरे से सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूपों तथा तीसरे से अनेक धातुओं की जानकारी हो सकती है।

(३०) भाषा के, विषय एवं वक्ता से सम्बद्ध विभिन्न स्तरों की जानकारी के लिए विभिन्न विषयों एवं अवसरों पर, तथा विभिन्न वर्गों-जातियों धर्मों स्तरों के लोगों के बीच बातें सुननी चाहिए। इससे उस भाषा के विभिन्न स्तरों के शब्द आदि समझने में आसानी होगी।

(३१) काम के बाद समय मिलते ही सामग्री का विश्लेषण आरम्भ कर देना चाहिए। इससे आगे के काम में मदद मिलती है तथा जानी गई चीज के भूलने का भय नहीं रहता और वह याद होती चलती है।

उपर्युक्त पद्धति से किसी भाषा का अलिखित शब्द भण्डार तथा उससे सम्बद्ध अन्य बातें एकत्र की जा सकती हैं किन्तु इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। ध्वनि, रूप, तथा वाक्य नियम विषयक सामग्री अपेक्षाकृत जल्द एकत्र की जा सकती है, किन्तु किसी भाषा की पूरी या पर्याप्त शब्दावली एकत्र करने के लिए कई वर्षों का समय चाहिए। साथ ही सम्बद्ध पूरे प्रदेश के सभी धर्मों, जातियों, व्यवसायियों, स्तरों एवं अवस्था के सूचकों से सामग्री ली जानी चाहिए।

अध्याय ३

शब्द-अध्ययन-पद्धति

अन्य भाषिक इकाइयो के अध्ययन की तरह शब्दो का अध्ययन भी तीन प्रकार से किया जा सकता है : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक। ये अध्ययन रचना, अर्थ, ध्वनि और प्रयोग की दृष्टि से हो सकते है। इनमे कुछ के बारे मे इसी पुस्तक मे अन्यत्र कुछ विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ सक्षेप मे इन्हे लिया जा रहा है, जिन विषयो को पुस्तक मे अन्यत्र नही उठाया गया है, उन पर यहाँ कुछ विस्तार से कहा जायगा।

(क) रचना की दृष्टि से .

रचना की दृष्टि से सभी शब्द विचारणीय नही होते। ऊपर के शब्दो के वर्गीकरण मे जिन शब्दो को 'रूढ' कहा गया था उनकी रचना का प्रश्न नही उठता। उदाहरण के लिए घर, मेज, रोटी, पानी या इस प्रकार के अन्य शब्द जिनको सम्बद्ध अर्थ मे विश्लेषित नही किया जा सकता अपने आप मे लघुतम इकाई है। रचना का प्रश्न यौगिक शब्दो के प्रसग मे उठता है जो दो या अधिक भाषिक इकाइयो से बनते है। उदाहरण के लिए अव्यावहारिकता (अ+व्यवहार+इक+ता), सुपठ्य (सु+पठ्+य), अग्रेजियत (अग्रेजी+अत), घुडदौड़ (घोडा+दौड) आदि। आगे शब्द-निर्माण के अध्याय मे हम विस्तार से देखेगे कि शब्दो की रचना मूल मे उपसर्ग, मध्यसर्ग, प्रत्यय या अन्य शब्द जोड़ने या किसी ध्वनि या ध्वनिसमूह को परिवर्तित करने या निकालने आदि से होती है। योगरूढ शब्द भी इस यौगिक के अन्तर्गत ही आते है, क्योकि रचना की दृष्टि से वे भी यौगिक ही है, केवल अर्थ की दृष्टि से रूढ है।

इस प्रसग मे यह भी उल्लेख्य है कि यह आवश्यक नही कि एक शब्द यदि एक भाषा मे रचना की दृष्टि से विचारणीय है तो सभी भाषाओ मे वह

विचारणीय हो। इसका कारण यह है कि एक ही शब्द एक भाषा में रूढ़ हो सकता है तो दूसरी भाषा में यौगिक। उदाहरण के लिए 'इन्सान' 'किताब', 'अदालत' अरबी में यौगिक हैं अर्थात् इनकी रचना पर विचार हो सकता है किन्तु ये ही शब्द हिन्दी में मूल अर्थात् रूढ़ हैं और इनकी रचना पर विचार करने का प्रश्न नहीं उठता। इसी प्रकार नेता, पवन, पथ, नगर संस्कृत में यौगिक शब्द हैं किन्तु हिन्दी में ये रूढ़ि हैं।

रचना की दृष्टि से शब्द का वर्णनात्मक या संरचनात्मक विश्लेषण भाषा विशेष की भाषिक इकाइयों के संदर्भ में होता है। ऐतिहासिक अध्ययन में उन तत्वों का इतिहास देखा जाता है जिनसे उस शब्द की रचना होती है। तुलनात्मक में पारिवारिक दृष्टि से सम्बद्ध या असम्बद्ध एक या अनेक भाषाओं में प्रयुक्त उस शब्द या उसके तत्वों का तुलनात्मक विवेचन किया जाता है।

(ख) अर्थ की दृष्टि से

अर्थ शब्द की आत्मा है। उसकी आत्मा की दृष्टि से भी उसका अध्ययन होता है। इस अध्ययन के अनेकानेक रूप हो सकते हैं। एककालिक (समकालिक) भाषाविज्ञान में शब्द के उस एक समय में प्रचलित अर्थों को देखा जाता है। जैसे मान लें हम 'घर' शब्द लें। हमें यह देखना होगा कि हिन्दी में उसका कितने अर्थों में प्रयोग हो रहा है। यह प्रयोग कोश से नहीं वास्तविक प्रयोग से देखा जाना चाहिए। जब हम प्रयोगों पर दृष्टि दौड़ाते हैं तो हमें यह देख कर आश्चर्य होता है कि जिसे हम सामान्यतः एक या दो अर्थ वाला समझते हैं उसका प्रयोग अनेक अर्थों में हो रहा है —

१ उसका घर अच्छा है। (मकान)
२ आपका घर कहाँ है? (जन्मभूमि, स्वदेश)
३ इस मकान में पाँच घर हैं। (कमरा)
४ यह तो घर की बात है। (निज, आपस)
५ रोग का घर खाँसी। (मूल कारण)
६ यह बड़े घर की बेटी है। (घराना, वंश)
७ तुम तो झूठ के घर हो। (राशि, समूह)
८ उसमें बुराई घर कर गई है। (स्थान)
९ घर में कहाँ गई हैं? (घर में=पत्नी)
१० उस औरत ने घर कर लिया है (पति)

ये तो घर के मुख्य प्रयोग थे। गौण प्रयोग दो-चार और भी खोजे जा सकते हैं। भाषाविज्ञानवेत्ता के कार्य की इतिश्री यही नही हो जाती। वह इन भिन्न-भिन्न अर्थों का आपसी सम्बन्ध भी खोजता है। साथ ही घर के इन अर्थों मे हिन्दी के कौन-कौन से शब्द उसके पर्याय या विपरीतार्थी है, इसका अध्ययन भी, इसके अर्थों का भाषा के पूरे ढाँचे मे स्थान निर्धारित करने के लिए आवश्यक है।

ऐतिहासिक दृष्टि से शब्दो के अर्थ का विकास देखना होता है। कैसे और क्यो सस्कृत मे तैल 'तिल का रस' था पर हिन्दी मे 'तेल' का अर्थ बहुत फैल गया है और गोला, बादाम, सरसो, मछली आदि के प्रसग मे भी तेल का प्रयोग होने लगा है। यही नही यदि आपने अपने नौकर को चिलचिलाती धूप मे कहीं दौड़ा दिया तो लौटकर वह पसीने से लथपथ, उलाहना देता है, 'बाबूजी आपने तो मेरा तेल निकाल लिया'। इस तरह इस शब्द ने 'तिल' से अपनी विजय यात्रा शुरु की और सरसो-अलसी, गोला-बादाम, मछली-चिड़िया होता आदमी तक पहुँच गया। अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन मे यह अर्थ का विस्तार था। संकोच और आदेश आदि भी होते हैं, जिन्हे हम आगे अर्थ से सबद्ध स्वतन्त्र अध्याय मे देखेगे।

शब्द के अर्थ का तुलनात्मक अध्ययन भी कम मनोरजक और उपयोगी नही है। भाषाशास्त्री यह जानते है कि अग्रेजी शब्द 'फीस' और हिन्दी 'पशु' मूलत एक हैं किन्तु आज दोनों के अर्थों मे ज़मीन-आसमान का अन्तर है। 'किताब' शब्द मराठी मे भी चलता है किन्तु वहा इसका अर्थ 'उपाधि' है, और हिन्दी मे 'किताब' का अर्थ 'पुस्तक' है। देखने मे यह अर्थ-भेद आश्चर्यजनक है किन्तु वस्तुत यहाँ ध्वनि-परिवर्तन के कारण ऐसा हुआ है। हिन्दी 'किताब' अरबी 'किताब' से सम्बद्ध है पर मराठी किताब 'खिताब' का विकसित रूप है। 'घाम' मराठी मे पसीना है और हिन्दी मे धूप है। इसका सम्बन्ध सस्कृत 'धर्म' से है। इसी प्रकार सस्कृत पर्ण से निकला 'पान' शब्द हिन्दी मे ताम्बुल है तो मराठी मे पुस्तक का पृष्ठ। मराठी मे ही 'तालीम' व्यायाम या कसरत है किन्तु हिन्दी मे शिक्षा है। मूल शब्द अरबी 'तालीम' है।

(ग) प्रयोग की दृष्टि से

शब्द का प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन भाषा की अभिव्यञ्जनाशक्ति के वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन करता है। अभी तक बहुत कम भाषाओं मे इस प्रकार का कार्य हुआ है। प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन मे अनेक बाते आती है। उदाहरण के लिए एक समस्या है कि तथाकथित समानार्थी शब्दो

म क्या कुछ प्रयोगिक अतर है ? उदाहरण के लिए हिंदी म अधिक और बहुत' दोनो ही ज्यादा के अथ म प्रयुक्त होत हैं। किन्तु प्रयोगो से पता चलता है कि बहुत' केवल ज्यादा होने का बोध कराता है

राम बहुत बोलता है।

सीता बहुत सुन्दर है।

किन्तु दूसरी ओर अधिक तुलनाबोधक शब्द है

राम अधिक बोलता है।

इस दूसरे वाक्य का अथ यह है कि किसी और की तुलना म यह बात कही जा रही है।

राम मोहन स अधिक बोलता है।

इसी प्रकार

सीता अधिक सुदर है।

अर्थात किसी की तुलना म

सीता राधा से अधिक सुदर है।

ऊपर के दोनो वाक्यो म अधिक के स्थान पर यदि बहुत' रखें तो और भी बात सामन आती हैं

(१) राम मोहन स अधिक बोलता है।

राम मोहन से बहुत बोलता है।

(२) सीता राधा स अधिक सुदर है।

सीता राधा स बहुत सुदर है।

स्पष्ट है पहले वाक्य म 'बहुत रख देने स वाक्य का अथ बदल गया है और दूसरे म बहुत का प्रयोग अच्छा नहा लगता। यहाँ केवल अधिक ही आ सकता है बहुत नही। इस तरह दोनो शब्द समानार्थी है पर दोनो के प्रयोग म अतर है।

वस्तुत प्रयोग म अन्तर का अथ यह है कि ऊपर स व समानार्थी भल हो सूक्ष्म दष्टि स उनका अथ एक नहीं है। दूसरे शब्दों म वे समानार्थी हैं पर एकार्थी नही हैं। इस समानार्थी हाने और एकार्थी न होने को केवल अथ बतलाकर समझना कठिन है। प्रयोग दिखलाकर ही शब्द की शक्ति और सामा स्पष्ट की जा सकती है।

कभी-कभी य दोना साथ भो आत हैं।

वह बहुत अधिक सुन्दर है।

और तब अत्यधिक का भाव व्यक्त होता है। किन्तु यहाँ प्रयोग की एक और बात ध्यान देने की है। 'बहुत' के बाद 'अधिक' का प्रयोग हो सकता है किन्तु 'अधिक' के बाद 'बहुत' का प्रयोग नही हो सकता। इस प्रकार के सही प्रयोग पर ही भाषा का स्वाभाविक प्रवाह निर्भर करता है।

इस तरह शब्दो के प्रयोग का अध्ययन वाक्य मे शब्द विशेष का क्रम या उसका स्थान बतलाता है तथा भाषा की अभिव्यंजना मे उसकी शक्ति और सीमाओ, दोनो ही का उद्‌घाटन करता है।

(घ) ध्वनि की दृष्टि से

अर्थ शब्द की आत्मा है तो ध्वनि उसका शरीर है। ध्वनि की दृष्टि से हम शब्द के शरीर का अध्ययन करते है।

जहाँ तक ध्वनियो के वर्णन का प्रश्न है पहली बात देखने की यह है कि किसी शब्द मे कौन-कौन सी ध्वनियाँ हैं और ये ध्वनियाँ अपने आदर्श रूप से कितनी भिन्न है। उदाहरण के लिए 'ल' ध्वनि जीभ की नोक के ऊपरी भाग को वर्त्स्य के पास ले जाकर बोली जाती है किन्तु 'बाल्टी' बोलने मे यही 'ल' जीभ की नोक उलट कर नीचे के भाग को मूर्द्धा और कठोर तालु के बीच ले जाकर उच्चरित किया जाता है।

इसी प्रकार यह भी देखा जाता है कि शब्द के उच्चरित रूप और लिखित रूप मे ध्वनि के स्तर पर क्या सम्बन्ध है। यदि अन्तर है तो कितना है। साथ ही एक शब्द जब दूसरे के पास आता है तो उसकी किस-किस स्थान की ध्वनियाँ कितनी-कितनी परिवर्तित होती हैं। उदाहरण के लिए 'डाक' 'घर' से मिलकर उच्चारण मे डाग् (डाग्घर) हो जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने मे ध्वनियो का इतिहास देखते है। जैसे सस्कृत का 'दधि' शब्द हिन्दी मे 'दही' हो गया अर्थात् 'ध' 'ह' हो गया।

ध्वनि का तुलनात्मक अध्ययन दो या अधिक भाषाओ मे सम्बद्ध शब्दो मे ध्वन्यात्मक समानता, अन्तर और परिवर्तन को लेकर होता है।

उपर्युक्त चार दृष्टियो या पद्धतियो—रचना, अर्थ, प्रयोग ध्वनि—ही प्रमुख है। इन चारो को मिला-जुलाकर शब्दो की व्युत्पत्ति और उनका इतिहास, शब्दो मे छिपा समाज या उसकी चिन्तन-प्रणाली का स्वरूप तथा कोश आदि अन्य रूपो मे भी शब्दो का अध्ययन किया जा सकता है, और किया जाता है।

खण्ड दो

अध्याय ४

कोश विज्ञान

कोश विज्ञान भाषा विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। मानव विकास के प्रारम्भ में कोश की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि मानव का सम्बन्ध केवल अपनी भाषा से था। न तो उसके पास अपने पूर्वजों की भाषा का कोई रूप था जिसे जानने-समझने के लिए वह ऐसा प्रयास करे और न एक भाषा भाषी कबीले का दूसरे से बहुत अधिक संपर्क हो आवश्यक था कि वह इस दिशा में कुछ करे। साथ ही, *कोश का आधार लिपि है। यह आधार भी उनके पास* नहीं था, या था भी तो नगण्य रूप में। लिपि के विकास के साथ-साथ मनुष्य को अपने पूर्वजों की रचनाएं उत्तराधिकार के रूप में मिलीं जिन्हें समझने के लिए कोशों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसी प्रकार व्यापारिक या सांस्कृतिक कारणों से एक भाषा भाषी जब दूसरे के संपर्क में आये और एक दूसरे की बात गहराई से समझने की आवश्यकता हुई तो द्विभाषीय कोश की नींव पड़ी। इस प्रकार समाज के विकास के साथ साथ अनेक प्रकार के कोशों का विकास हुआ है और होता जा रहा है।

भाषा विज्ञान की अन्य शाखाओं की भाँति ही कोश निर्माण भी सबसे पहले अपने प्रारम्भिक रूप में भारतवर्ष में ही विकसित हुआ। लगभग १००० ई०पू०—निघंटुओं की रचना हुई। तब से लेकर १००० ई० तक इन दो हज़ार वर्षों में भारत में कई प्रकार के सैकड़ों कोश लिखे गये जिनमें से 'अमरकोश' आदि बहुत से तो अब भी उपलब्ध हैं। यूरोप में १००० ई० के पूर्व ठीक अर्थों में कोश नहीं मिलते। अंग्रेज़ी कोशों का इतिहास तो १६वीं सदी के अंतिम चरण से ही प्रारम्भ होता है, यद्यपि अब वे संसार में सम्भवतः सर्वोत्तम माने गये हैं।

कोशों के प्रमुख प्रकार

अब तक विश्व की अनेकानेक भाषाओं में अनेक प्रकार के कोश बने हैं और आगे उनके प्रकारों की संख्या हमारे जीवन, ज्ञान और आवश्यकताओं के

विकास के साथ-साथ बढती ही जा रही है। मुख्यत निम्नाकित प्रकार के कोश मिलते है —

व्यक्ति कोश .

किसी एक व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त सभी शब्दो के कोश को व्यक्ति कोश कहते है। हिन्दी मे प्रस्तुत पक्तियो के लेखक द्वारा सम्पादित तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शब्दो का कोश 'तुलसी शब्द सागर' प्रकाशित हो चुका है। अग्रेज़ी मे शेक्सपियर तथा मिल्टन के कोश इसी प्रकार के है।

पुस्तक कोश

किसी एक पुस्तक का कोश पुस्तक कोश कहलाता है। बाइबिल कोश, कुरान कोश इस दृष्टि से काफ़ी प्रसिद्ध हैं। हिन्दी मे रामचरित मानस कोश तथा विनय कोश उल्लेख्य है।

भाषा कोश

भाषाओ के कोश मूलत. तीन प्रकार के मिलते है एकभाषी, द्विभाषी, बहुभाषी। एकभाषी कोष मे एकभाषा के शब्दो का अर्थ उसी भाषा मे होता है। अग्रेज़ी मे ऑक्सफोर्ड, चैम्बर्स, वेब्स्टर या हिन्दी मे हिन्दी शब्द-सागर, इसी प्रकार के कोश हैं। द्विभाषी कोश मे एक भाषा के शब्दो का अर्थ दूसरी भाषा मे देते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी-रूसी कोश, अग्रेजी-हिन्दी कोश, उर्दू-हिन्दी कोश या सस्कृत-अग्रेज़ी कोश आदि। बहुभाषी कोश मे दो से अधिक भाषाओ के शब्द साथ-साथ होते हैं। जैसे प्राकृत-अग्रेज़ी-हिन्दी, अग्रेज़ी-हिन्दी-उर्दू, हिन्दी-मराठी-अग्रेजी, हिन्दी-उर्दू-सिन्धी-अग्रेजी। उपर्युक्त भाषा कोशो मे पहले और दूसरे मे अधिक गहराई होती है। तीसरे प्रकार के कोशो की श्रेणी मे जो भी कोश अब तक प्रकाशित हुए है, प्राय उन सभी की शब्द-समूह और अर्थ दोनो ही दृष्टियो से अपनी काफ़ी सीमाएँ है। भाषा कोश, विशेषत एकभाषी और द्विभाषी, प्राय दो प्रकार के होते हैं · वर्णनात्मक, ऐतिहासिक। तुलनात्मक सामग्री देकर दोनो ही को तुलनात्मक भी बनाया जा सकता है। कोश-साहित्य मे वर्णनात्मक और ऐतिहासिक कोशो का विशेष मूल्य है, अत. इन पर नीचे कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

वर्णनात्मक कोश .

इसमे किसी भाषा मे किसी एक काल मे प्रयुक्त सारे शब्दो और उनके सारे अर्थो को देते है। इस प्रसग मे यह प्रश्न विचारणीय है कि यदि एक

शब्द के एक से अधिक अर्थ हैं तो उन्हें किस क्रम से रखा जाय। हिंदी में नागरी प्रचारिणी सभा का हिंदी शब्द सागर या उसका संक्षिप्त रूप, बहुत हिन्दी कोश या प्रामाणिक हिन्दी कोश आदि इसी प्रकार के वर्णनात्मक कोश हैं। उनमें अर्थ किसी भी क्रम से न दिये जाकर मनमाने ढंग से जैसे याद आते गये आगे पीछे दे दिये गये हैं। वस्तुतः वर्णनात्मक कोश में अर्थ प्रचलन के आधार पर क्रमबद्ध किए जाने चाहिए। जो अर्थ सबसे अधिक प्रचलित हो उसे सबसे पहले और जो सबसे कम प्रचलित हो उसे बाद में। कभी कभी अर्थ के कम या अधिक प्रचलन के सम्बन्ध में विवाद भी खड़ा हो सकता है और ऐसी स्थिति में विवादग्रस्त अर्थों में किसी को भी आगे पीछे रखा जा सकता है।

ऐतिहासिक कोश

किसी भाषा का ऐतिहासिक कोश उसके विकास आदि को समझने के लिए बड़ा सहायक होता है। ऐतिहासिक कोश में किसी भाषा में केवल प्रचलित शब्दों या उनके प्रचलित अर्थों को ही न लेकर सारे शब्दों और उस भाषा में प्रयुक्त उनके सारे अर्थों को लेते हैं। वर्णनात्मक कोश में हमने देखा कि अर्थ को प्रचलन के आधार पर रखा जाता है। ऐतिहासिक कोश में अर्थ अपने इतिहास के आधार पर रखे जाते हैं। उदाहरणार्थ हम मान लें कि किसी भाषा का एक शब्द है 'म'। उसके अ इ ई उ ऊ ये पाँच अर्थ हैं। यहाँ देखना होगा कि सबसे पहले किस अर्थ का प्रयोग हुआ और फिर किस किस का। मानलें कि उस भाषा का प्रारम्भ १००० ई० में है और अ अर्थ का प्रयोग १६०० ई० में, इ का ११०० में, ई का १००० में, उ का १७०० में और ऊ का १२०० ई० में हुआ है। कहना न होगा यहाँ उन अर्थों को कालक्रम से सजाना होगा अर्थात् १००० ई० में प्रचलित अर्थ पहले दिया जायगा, फिर क्रम से ११००, १२००, १६०० और १७०० ई० के अर्थ दिये जायँगे। अर्थात् ई इ ऊ अ उ। इस प्रकार का कोश बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस भाषा का साहित्य उपलब्ध हो। ऐसे कोश के निर्माण के पूर्व दो बातें आवश्यक हैं (१) उस भाषा में प्राप्त सभी ग्रंथों का पाठ पाठालोचन के आधार पर निश्चित कर लिया जाय। यहाँ यह ध्यातव्य है कि प्रक्षिप्त अंशों को निकाल फेंकने की आवश्यकता नहीं बल्कि उनके रचे जाने का काल निर्धारित करके उन्हें भी उस काल या शती की रचना मान कर उसके समकालीन साहित्य के साथ रखा जाय। (२) सभी रचनाओं का काल निश्चित कर लिया जाय।

इन दो वातो के कर लेने पर किस सदी मे कौन शब्द किस अर्थ मे प्रयुक्त हुआ, इसका निश्चय करना सरल हो जायेगा, और उनके आधार पर सरलता से ऐतिहासिक कोश वन जायेगा। इस प्रसग मे यह भी उल्लेख्य है कि ऐतिहासिक कोश हर दृष्टि से वहुत पूर्ण नही वन सकता, क्योकि तैयार होने के वाद नई खोजो के आधार पर यदि कोई नई रचना सामने आ गई, पुरानी रचना का नया पाठ आ गया, या किसी रचना का काल कुछ और सिद्ध हो गया तो उनके कारण कोश मे पर्याप्त परिवर्तन करना होगा। किसी भी, आधुनिक भारतीय भाषा का इस प्रकार का ऐतिहासिक कोश अभी तक नही वना। सस्कृत का मेनियर विलियम्स का कोश इसी प्रकार का है, यद्यपि वहुत अपूर्ण है। संस्कृत का इस प्रकार का एक आदर्श कोश पूना मे वन रहा है। अग्रेजी की आक्सफोर्ड डिक्शनरी इस प्रकार का सर्वोत्तम प्रयास है।

पारिभाषिक कोश

पीछे शब्दो के वर्गीकरण मे पारिभाषिक और अर्धपारिभाषिक शब्दो का उल्लेख किया जा चुका है। सामान्य कोषो मे सामान्य शब्द तो होते ही है उनके साथ कोश के आकार-प्रकार के अनुकूल पारिभाषिक शब्द भी होते है। पारिभाषिक कोशो मे केवल पारिभाषिक एव अर्धपारिभाषिक शब्द होते है।

ये पारिभाषिक कोश भी मुख्यत दो प्रकार के होते है। एक तो वे जिनमे शब्द का पूरा अर्थ समझाया जाता है। दूसरा वह जिनमे दो या अधिक भाषाओ के पारिभाषिक शब्दो का वर्णानुक्रम से सग्रह होता है। दूसरे वर्ग के राजनीति, चिकित्सा विज्ञान, पत्रकारिता, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयो के अनेक अग्रेजी-हिन्दी कोश प्रकाशित हो चुके है। यूरोपीय देशो मे रूसी-अग्रेजी-फ्रेंच-जर्मन या फ्रेंच-अग्रेजी-जर्मन या इसी प्रकार के और भी वहुत से ३, ४, ५, ७, ८, १० भाषाओ के तुलनात्मक परिभाषिक कोश छप चुके है।

पर्याय कोश

किसी एक भाषा के समानार्थी शब्दो का यह कोश लेखको के वडे काम का होता है। इसमे एक अर्थ या उसके समीप के अर्थो के सारे शब्द एक स्थान पर दिये होते है ताकि कवि या लेखक उस समनार्थी शब्द-समूह मे अपने लिए अपेक्षित उपयुक्त या सटीक शब्द छाँट सके।

ऐसे शब्दो की प्राय शब्द-सूचियाँ ही मिलती है, किन्तु वैब्स्टर के पर्याय कोश की तरह यदि सभी शब्दो के अर्थ और प्रयोग का अतर भी समझाया

जा सके तो यह कोश और भी उपयोगी बन सकता है, और कोश की सहायता से लेखक या कवि न केवल अनेक शब्द पा सकता है अपितु उनके ठीक प्रयोग में भी सहायता ले सकता है।

विलोम कोश

विलोमार्थी या विपरीतार्थी (अच्छा बुरा जन्म मृत्यु) शब्द प्रायः पर्याय कोशों में भी दिये होते हैं। अनेक व्याकरणों में भी विलोमार्थी शब्दों की सूचियाँ दी रहती हैं। यह भी अभिव्यक्ति की सहायता के लिए ही होता है। अब तक इस तरह का कोई अच्छा कोश देखने में नहीं आया।

मुहावरा कोश

यह कोश वर्णनात्मक ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक तीनों प्रकार का या मिलाजुला हो सकता है। मुहावरे भाषा के प्राण होते हैं। वर्णनात्मक में इनका अर्थ और प्रयोग रहता है ऐतिहासिक में इनका पूरा इतिहास, जैसे किस भाषा में आये हैं, मूलतः किस पर आधारित हैं, या अर्थ में क्या कुछ विकास हुआ है आदि देते हैं। तुलनात्मक में अन्य भाषाओं के समानार्थी मुहावरे देते हैं।

लोकोक्ति कोश

मुहावरा कोश की तरह लोकोक्तियों या कहावतों का कोश भी तीनों प्रकार का हो सकता है।

प्रयोग कोश

भाषा प्रयोग पर ही आधारित है, इसीलिए व्याकरण या कोश आदि प्रयोग से ही नियमित होते हैं। प्रयोग कोश किसी भाषा की सम्यक जानकारी के लिए बहुत आवश्यक है। अंग्रेजी में फाउलर का कोश इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। प्रयोग कोश में भाषिक इकाइयों के ठीक प्रयोग के संकेत रहते हैं, तथा मिलते जुलते प्रयोगों से अंतर भी स्पष्ट किया रहता है। उदाहरण के लिए यदि हिन्दी का प्रयोग कोश बने तो राज राज़ का भेद ने को में से ठीक प्रयोग, क्रियापदों की प्रयोग सीमाएँ सकना पाना में अंतर बहुत अधिक में भेद आदि भाषा के सभी स्तरों (ध्वनि, बल सुर, शब्द रूप, वाक्य मुहावरे लोकोक्ति) की सामग्री का प्रयोग स्तर पर विवेचन होगा।

विश्व कोश

यह कोश आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता है ताकि एक ही पुस्तक में आप अधिक से अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त कर सकें। विश्व कोश दो

प्रकार का होता है। एक तो सामान्य होता है, जिसमे सभी विषयो की प्रविष्टियाँ होती है। ब्रिटेनिका, अमेरिकाना, हिन्दी विश्व कोश आदि इसी श्रेणी के है। दूसरे प्रकार का विश्वकोश अलग-अलग विषयो का होता है। जैसे—दर्शन विश्व कोश, इतिहास विश्व कोश, भौतिकी विश्वकोश आदि।

जीवनी कोश

इसमे विभिन्न कालो के उल्लेख्य व्यक्तियो का जीवनियाँ रहती है। कथा कोश, अन्त कथा कोश भी इसी के अन्तर्गत आ सकते है। इसमे नामो, विशेषत विदेशी नामो के ठीक उच्चारण देना अच्छा रहता है।

भौगोलिक कोश

इसमे भौगोलिक नामो के सम्बन्ध मे जानकारी रहती है। नामो के ठीक उच्चारण का ध्यान इसके लिए भी आवश्यक है।

उच्चारण कोश

उच्चारण की पूरी जानकारी के लिए उच्चारण कोश की आवश्यकता होती है। अग्रेजी और फ्रासीसी आदि मे इस प्रकार के कोश है। ऐसे कोश मे वर्तनी और उच्चारण मे अन्तर (लोप, आगम, परिवर्तन) का स्पष्ट उल्लेख रहता है। साथ ही बलाघात का भी सकेत रहता है। ऐसा कोश ऐसी भाषाओ के लिए अधिक आवश्यक है जहाँ वर्तनी और उच्चारण मे बहुत अधिक भेद है। हिन्दी में भी धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ गई है। उपन्यास, कविता, कृष्ण, पाप, बलदेव, शेष आदि अनेकानेक शब्द हिन्दी मे ऐसे है, जिनका उच्चारण अब वर्तनी के अनुरूप न रहकर क्रिश्डं, पाप्, बल्देव, शेश हो गया है।

इसके अतिरिक्त अब्द कोश (प्रतिवर्ष की बातो का कोश), अनेकार्थी कोश (ऐसे शब्दो का कोश जिनके कई अर्थ हो। संस्कृत मे ऐसे कई कोश है) एव एकाक्षरी कोश (एक अक्षर के शब्दो का कोश। ऐसे कोश भी संस्कृत मे है) आदि आदि और प्रकार के कोश भी बनते रहे हैं, और कुछ आज भी बन रहे है।

कोश-निर्माण-विषयक कुछ आवश्यक बाते

शब्द-संकलन :

कोश-निर्माण मे सबसे पहला काम कोशकार को इसी दिशा मे करना पडता है। कोश यदि जीवित भाषा का बनाना है, तो शब्द लोगो से सुनकर इकट्ठे करने पड़ते है। यदि साहित्य या पुरानी भाषा का बनाना हो तो पुस्तको से लेना पड़ता है। लोगो से सुनकर इकट्ठा करने मे पूर्ण कोश बनाना

प्रायः असम्भव सा है, क्योंकि हर जीवित भाषा में शब्द बढ़ते रहते हैं। नये शब्द विभिन्न स्रोतों से आते रहते हैं। साहित्य के आधार पर कोश बनाने के लिए सम्बद्ध सारी पुस्तकों की पूरी शब्दानुक्रमणी बना लेना सबसे अच्छा होता है। ऐसा कर लेने पर कोई शब्द या अर्थ छूटने नहीं पाता। ऐतिहासिक कोशों के लिए तो यह अनिवार्य है। पिछले खण्ड में शब्द संकलन अध्याय इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ विचार किया गया है।

वर्तनी

शब्द-संकलन के बाद उन्हें कोश में देने के लिए उनकी वर्तनी (spelling) निश्चित कर लेना आवश्यक है। इस दृष्टि से सबसे अधिक आवश्यक चीज है एकरूपता। अनेकरूपता होने पर होता यह है कि कभी कभी शब्द कोश में रहता है किन्तु मिलता नहीं। इस विषय में आवश्यक निर्णयों का उल्लेख भूमिका में अवश्य किया जाना चाहिए ताकि देखने वाले सहायता ले सकें। साथ ही यदि किसी शब्द की एक से अधिक वर्तनियाँ प्रचलित हों तो (जैसे लिए लिये) अधिक प्रचलित रूप के साथ अर्थ देना चाहिए तथा दूसरे को यथास्थान देकर अर्थ के लिए प्रथम के संदर्भ का संकेत दे देना चाहिए।

शब्दक्रम

कोश में शब्द विशेष क्रम से होते हैं ताकि देखने वाला उन्हें सरलता से पा ले। संसार के कोशों में अनेक प्रकार के शब्द क्रम प्रचलित रहते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं —

आज की अधिकांश भाषाओं के अधिकांश कोशों में शब्द वर्णानुक्रम से रखे जाते हैं। पहले शब्द केवल प्रथम वर्ण के आधार पर रखे जाते थे। अर्थात् 'क' से शुरू होने वाले सारे शब्द एक साथ। इसका आशय यह हुआ कि यदि किसी भाषा में 'क' से प्रारम्भ होने वाले ५००० शब्द हैं तो वे एक जगह बिना किसी क्रम के रखे जाते थे और खोजने वाले को सारे शब्दों को देखकर अपेक्षित शब्द खोजना पड़ता था। बाद में शब्द के दूसरे वर्ण का भी विचार होने लगा और अंत में सारे वर्णों का। हिन्दी में वर्णानुक्रम बहुत निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिए क—क़ ख—ख़ ग—ग़ ज—ज़ फ—फ़ ड—ड़ ढ—ढ़ आ——आँ आदि में किसे आगे और किसे पीछे रखें यह सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत नहीं है। अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु के सम्बन्ध में भी निर्णय आवश्यक है। इसी प्रकार ज्ञ को ज्ञ मानकर रखें या ग्यँ (ग्य) मानकर या ज्यँ मानकर। इस तरह की समस्याओं के सम्बन्ध में अपनाई गई नीति का उल्लेख भूमिका में होना चाहिए।

अक्षर संख्या

इसके आधार पर भी शब्दो को रखा जाता है। भारत मे इस प्रकार के एकाक्षरी-कोश मिलते है। अक्षर-सख्या पर आधारित कोशो मे एक अक्षर (syllable) वाले शब्द पहले, फिर दो वाले, फिर तीन वाले, और आगे भी इसी प्रकार के रखे जाते है।

सुर

सुर-प्रधान भाषाओ (Tone languages) मे वर्णानुक्रम या अक्षर-सख्या के अतिरिक्त सुर के आधार पर भी शब्दो को रखते है, क्योकि वहाँ एक ही शब्द कई सुरो मे भी प्रयुक्त होता है और इस प्रकार कई अर्थ देता है।

विचार .

पर्याय कोशो (थेसारस) मे शब्दो को भावो या विचारो के आधार पर रखा जाता है। जैसे जीवो के नामो के शब्द एक स्थान पर। ऐसे ही धर्म, अंग, खाद्य-पदार्थ, कला, विज्ञान आदि के अलग-अलग। प्रसिद्ध सस्कृत कोश अमर कोश के काड इसी आधार पर है।

व्युत्पत्ति

कभी-कभी शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर भी रखे जाते है। अरबी में इस प्रकार के कोश प्राय मिलते है, जिनमे वर्णानुक्रम से 'माद्दा' (धातु root) देते हैं और हर माद्दे के साथ उससे बनने वाले शब्द। धातु पर आधारित सभी भाषाओ के इस प्रकार के कोश बनाए जा सकते है।

व्याकरण .

शब्द-कोश मे प्रविष्टि के साथ व्याकरण की दृष्टि से टिप्पणी भी आवश्यक है। यदि एक शब्द एक से अधिक व्याकरणिक रूपो मे प्रयुक्त ('गया', सज्ञा और क्रिया, 'बडा' सज्ञा और विशेषण) होता हो तो व्याकरण का उल्लेख करके उसके साथ सम्बद्ध अर्थ देने चाहिए। व्याकरण के साथ-साथ उससे बनने वाले अनियमित रूप भी अवश्य देने चाहिए (जैसे जाना मे 'गया' या करना मे 'किया')।

अर्थ

वर्णनात्मक कोश मे अर्थ प्रचलन के आधार पर और ऐतिहासिक मे इतिहास के आधार पर दिया जाता है। इसे पीछे समझाया जा चुका है। अर्थ दो प्रकार के होते है। एक मे केवल समानार्थी शब्द होते है (जैसे गज का अर्थ हाथी) दूसरे मे परिभाषा देते है या समझाते है। (जैसे हाथी एक

जानवर है जो) दोनों प्रकारों का उचित प्रयोग होना चाहिए। व्याख्या जहाँ अपेक्षित हो वहीं दी जानी चाहिए। एकभाषीय कोश में व्याख्या अधिक अपेक्षित है, किन्तु द्विभाषीय कोश में समानार्थी शब्द देना ही पर्याप्त है। जैसे अंग्रेजी हिंदी कोश में (elephant) की हिंदी में व्याख्या निरर्थक है। वहाँ केवल 'हाथी' शब्द दे देना पर्याप्त है। हाँ यदि शब्द हिंदीभाषी के लिए नवीन हो तब व्याख्या अपेक्षित होगी।

उद्धरण

अर्थ के स्पष्टीकरण या उदाहरण के लिए अर्थ के साथ उसके प्रयोग भी दिए जाते हैं। ऐसे उद्धरण प्रामाणिक होने चाहिए। यदि कई दिये जायें तो उन्हें कालक्रमानुसार रखना अच्छा होता है।

चित्र

कभी-कभी अर्थ पर्याय या व्याख्या से ही स्पष्ट नहीं होते। ऐसी स्थिति में वस्तु का चित्र आवश्यक हो जाता है प्रमुखतः ऐसी चीजों का जिनसे कोश का प्रयोक्ता अपरिचित हो। उदाहरणार्थ हाथी का चित्र भारतीय कोश में अपेक्षित नहीं होगा, किन्तु उस देश के कोश में जहाँ हाथी नहीं होता यह बहुत आवश्यक है। भारतीय कोश में कंगारू का चित्र आवश्यक हो सकता है।

उच्चारण

कोश में उच्चारण भी आवश्यक है। क्योंकि मात्र सामान्य वर्तनी (spelling) से वह स्पष्ट नहीं होता। अंग्रेजी फ्रेंच आदि कोशों में इसी कारण उच्चारण दिया रहता है। इन भाषाओं के तो उच्चारण-कोश भी प्रकाशित हो चुके हैं जिनका काम केवल उच्चारण बतलाना है। हिन्दी कोशों में उच्चारण नहीं रहता। नागरी लिपि के समर्थकों का कहना है कि जैसा हमारा उच्चारण है वैसा ही नागरी में लिखते हैं अतः अलग उच्चारण की हिंदी में आवश्यकता नहीं। किन्तु ऐसा मानना अवैज्ञानिक है। हिंदी में सभी शब्दों का उच्चारण वही नहीं है जो लिखा जाता है। उदाहरणार्थ 'ऋषि' का उच्चारण 'रिशि' 'द्विवेदी' का 'दुवेदी' 'साहित्यिक' का 'साहितिक' 'उपन्यास' का 'उपन्यास' 'राम' का 'राम्' तथा 'लगभग' का 'लगभग्' है हिन्दी में इस प्रकार के हजारों शब्द हैं जिनका उच्चारण वर्तनी के अनुरूप नहीं है। ऐसे सारे शब्दों का उच्चारण कोशों में दिया जाना चाहिए जिनको विदेशी छात्रों को पढ़ाने का अनुभव है वे जानते हैं कि कोशों में एस न होने से कितनी कठिनाई होती है। इसी प्रकार उच्चारण के साथ-साथ बलाघात (stress) का भी हिन्दी कोशों में संकेत अपेक्षित है।

व्युत्पत्ति :

यह भी कोश का एक महत्त्वपूर्ण अग है। अच्छे शब्दकोश मे इसका होना आवश्यक है। व्युत्पत्ति का कभी तो सीधे सकेत कर देते हैं और कभी तुलनात्मक दृष्टि से सम्बद्ध या असम्बद्ध सभी भाषाओ के प्राप्त रूपो को देते हैं। आगे इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

व्युत्पत्ति-विज्ञान

व्युत्पत्ति विज्ञान भाषा विज्ञान की एक शाखा है जिसमें शब्दों के इतिहास का अध्ययन किया जाता है। इतिहास में उस शब्द का अध्ययन तो आता ही है साथ ही उसको बनाने वाले भाषिक घटकों (जैसे प्रकृति प्रत्यय आदि) के भी विकास का अध्ययन आता है। इस तरह शब्द की रचना उसका उद्गम या उद्भव और उसका विकास तीनों इसके अन्तर्गत आते हैं। इस अध्ययन के लिए हिन्दी में व्युत्पत्ति के अतिरिक्त निरुक्त या निर्वचन शास्त्र शब्द भी चलते हैं।

निरुक्त शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार निस्+वच्+क्त से बना है। यों तो संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण उपनिषद् तथा महाभारत आदि में इस शब्द का प्रयोग उच्चरित, अभिव्यक्त तथा परिभाषित आदि अनेक अर्थों में हुआ है किन्तु उसका मूल अर्थ अलग अलग करके कहना या अलग अलग करके कहा हुआ है तथा उसका मुख्य प्रयोग शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या के लिए हुआ है। इस अर्थ में यह शब्द छान्दोग्य उपनिषद् (८ ३ ३) तथा महाभारत (१ २६६) आदि कई ग्रन्थों में मिलता है। इसी अर्थ के आधार पर निरुक्त नाम से कई प्राचीन ऋषियों ने वैदिक शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या के लिए ग्रन्थ लिखे जिनमें अब केवल यास्क का निरुक्त ही उपलब्ध है।

निर्वचन शब्द निरुक्त से केवल इस बात में भिन्न है कि निरुक्त विशेषण तो है ही भाववाचक संज्ञा भी है क्योंकि वह प्रकृत दोनों अर्थों में आता है जब कि निर्वचन केवल संज्ञा है। अर्थात् निर्वचन केवल निरुक्त की प्रक्रिया है जबकि निरुक्त प्रक्रिया भी है और वह भी है जिसका निर्वचन किया गया हो। इसकी रचना निस्+वच्+ल्युट् से हुई है तथा इसका अर्थ है अलग अलग करके कहना।

'व्युत्पत्ति' शब्द 'पद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'गति करना'। इसमे वि+उत् उपसर्ग तथा क्तिन् (भाववाचक अर्थ मे) प्रत्यय है। 'व्युत्पत्ति' शब्द का भी 'निरुक्त' की भाँति ही एकाधिक अर्थों मे प्रयोग मिलता है, किन्तु भाषाशास्त्र के प्रसग मे उसका अर्थ व्याकरणिक विश्लेषण है अर्थात् इसमे शब्द को विश्लेषित करके धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का निर्देश किया जाता रहा है।

इस प्रकार निरुक्त मे शब्द विशेष की धातु आदि का निर्देश करके अर्थ को स्पष्ट करने पर बल होता है तो व्युत्पत्ति मे केवल धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि व्याकरणिक इकाइयो का निर्देश करने पर। यो आज व्युत्पत्ति मे, जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, शब्द का एक प्रकार से सर्वांगीण अध्ययन आता है।

हर नई चीज का विकास आवश्यकतावश ही होता है। हमारे यहाँ प्राचीन काल मे बोलचाल की भाषा जैसे-जैसे वैदिक भाषा से दूर हटती गई वैदिक भाषा को समझना और उसका ठीक उच्चारण या पाठ करना लोगो के लिए कठिन होता गया। किन्तु वैदिक ऋचाओ का अध्ययन-अध्यापन तत्कालीन पडित वर्ग के लिए एक प्रकार से अनिवार्यत आवश्यक था, परिणामत इस कठिनाई को दूर करने के लिए दो शास्त्रो का विकास हुआ। अर्थ समझने के लिए निरुक्त या निर्वचन शास्त्र तथा ठीक उच्चारण के लिए शिक्षा शास्त्र।

यो शब्दो के निर्वचन करने के प्राचीनतम उदाहरण ऋग्वेद मे मिलते है, जिससे यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि कदाचित् शब्दो की निरुक्ति देने की मौखिक परम्परा निरुक्त से काफी पुरानी थी। आज भी कभी-कभी सामान्य लोग इस प्रकार के अनुमान लगाते पाये जाते है।

निर्वचन या निरुक्त का प्राचीनतम रूप अनुमानाश्रित अधिक रहा होगा। धीरे-धीरे समय के साथ उसमे वैज्ञानिकता आती गई होगी। यास्क के निरुक्त तक आते-आते इसमे काफी कुछ शास्त्रीयता आ गई थी, किन्तु फिर भी उसमे अनुमान का अश बिल्कुल न रहा हो, ऐसी बात नही। व्याकरण शास्त्र कदाचित् निरुक्त या निर्वचन का ही विकसित रूप है। इसी कारण व्याकरण के आधार पर शब्द-विश्लेषण के उदाहरण बहुत पुराने नही मिलते, जबकि निरुक्त के उदाहरण बहुत पुराने भी मिल जाते हैं। यह भी कहना कदाचित् अन्यथा न हो कि अतिम निरुक्तकार यास्क के बाद ही सच्चे अर्थों मे व्याकरण की परम्परा चली। वह काल सधिकाल है। उसके पूर्व निरुक्तकार ही प्राय भाषा का विश्लेषण करते थे। उसके बाद व्याकरण ने इसका स्थान ले लिया।

थे यास्क भी व्याकरण के महत्त्व से अपरिचित नहीं थे, इसीलिए निरुक्तकार के लिए व्याकरण का ज्ञान उन्होंने आवश्यक माना है।

अंग्रेज़ी में व्युत्पत्ति का अर्थ तो डेरिवेशन (derivation) भी कहते हैं, किन्तु इसके लिए मुख्य शब्द एटिमॉलॉजी (etymology) चलता है। अंग्रेज़ी में यह शब्द फ्रांसीसी शब्द etymologie से आया है और वहाँ यह शब्द लेटिन etymologia का विकसित रूप है। लैटिन का भी यह अपना शब्द नहीं है। यहाँ ग्रीक से आया है। ग्रीक एतिमॉलॉजिया' के मूल में दो शब्द हैं 'एतिमास' (etymos) और लॉगोस (logos)। पहले शब्द का अर्थ यथार्थ, सच्चा' या 'ठीक' है और दूसरे का शब्द' या लेखा जोखा। इस तरह इसका मूल अर्थ हुआ 'यथार्थ या सच्चा शब्द' या 'शब्द के सच्चे अर्थ का लेखा जोखा'। प्रसिद्ध स्टोइक दार्शनिक क्रिसिपास (Chrysippos) ने जिनका काल तीसरी सदी ई०पू० है, एक ग्रन्थ एतिमॉलोजिका लिखा था जिसमें शब्दों के ठीक अर्थ की छानबीन थी। कहना न होगा कि निरुक्त' भी मूलतः इसी के समकक्ष था, और दोनों देशों में इन शास्त्रों का विकास कदाचित् एक ही प्रकार की आवश्यकता के कारण हुआ जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्राचीन यूनान में 'एतिमॉलॉजी' भाषाविज्ञान की शाखा न होकर दर्शन की एक शाखा थी, जिसमें शब्द द्वारा व्यक्त भाव की यथार्थ जानकारी के लिए उसके मूल अर्थ का अध्ययन किया जाता था। वस्तुतः यूनानी और रोमन लोगों के लिए यह शास्त्र किसी शब्द का मूल अर्थ ज्ञात करने का साधन मात्र था। आज की तरह शब्द की उत्पत्ति और उसका इतिहास जानना इसका साध्य नहीं था। उत्पत्ति और इतिहास पर विचार होता भी था तो साध्य रूप में नहीं, अपितु शब्द का मूल या वास्तविक अर्थ जानने के लिए साधन रूप में। इस तरह मुख्यतः अर्थ से सम्बन्धित होने के कारण यह विज्ञान उन लोगों के लिए दर्शन की शाखा अर्थ विज्ञान के अन्तर्गत आता था।

व्युत्पत्ति विज्ञान मूलतः ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के अन्तर्गत आता है किन्तु व्युत्पत्तियों के अध्ययन में वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक भाषा विज्ञान की भी ज़रूरत पड़ती है। वर्णनात्मक की इसलिए कि शब्द किन किन तत्त्वों से बना है तथा उसका इतिहास के विभिन्न कालों में क्या अर्थ था आदि बातें भी व्युत्पत्ति के अध्ययन के लिए अपेक्षित हैं। तुलनात्मक की इसलिए कि भाषा विशेष के शब्द विशेष की व्युत्पत्ति में, विभिन्न कालों में उस शब्द के आर्थिक ध्वन्यात्मक परिवर्तन की जानकारी के लिए उस परिवार की अन्य भाषाओं से तुलना करनी पड़ती है। वस्तुतः किसी भी प्रकार के परिवर्तन का पता तुलना से ही लगता है। इसके अतिरिक्त यदि शब्द किसी और भाषा से गृहीत है तो मूल से किस

दृष्टि से कितना परिवर्तित है इसके लिए उस भाषा से भी तुलना करनी पड़ती है।

व्युत्पत्तियो के अध्ययन में सबसे अधिक सहायता ध्वनि-विज्ञान से लेनी पडती है। शब्दो मे ध्वनि की दृष्टि से प्रायः बहुत अधिक परिवर्तन हो जाया करते हैं। 'उपाध्याय' और 'ओझा' मे ऊपर से देखने मे कोई खास सम्बन्ध नही दिखाई पडता। ध्वनि विज्ञान के सहारे ही 'उपाध्याय' मे संभावित परिवर्तनो का पता लगाते है और तब यह स्पष्ट होता है कि 'ओझा' उपाध्याय का ही परिवर्तित रूप है। कृष्ण-कान्ह, अद्य-आज, नृत्य-नाच को भी ध्वनि विज्ञान की सम्यक् जानकारी से ही जोडा जा सकता है। ध्वनि विज्ञान अपने तीनो (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक) रूपो मे व्युत्पत्ति देने मे सहायता करता है।

व्युत्पत्ति विज्ञान मे सहायता पहुँचाने वाली भाषा विज्ञान की दूसरी शाखा अर्थ विज्ञान है। शब्द के दो पक्ष होते हैं। एक बाहरी, जिसे उसका शरीर कह सकते है। ध्वनियो के रूप मे यही हमारे समक्ष रहता है। शब्द का दूसरा पक्ष भीतरी है जिसे उसकी आत्मा कह सकते हैं। परिवर्तित शब्द को बाहर और भीतर दोनो ओर से देखकर ही किसी पूर्ववर्ती शब्द से जोड़ा जा सकता है। अंग्रेजी का शब्द है 'ट्रेजरी' और हिन्दी मे उसका विकास है 'तिजोरी'। 'ट्रेजरी' से 'तिजोरी' का सम्बन्ध केवल ध्वनि के आधार पर नही जोडा जा सकता। अर्थ विज्ञान ही यह बतलाएगा कि आर्थिक दृष्टि से भी इनके सबद्ध होने की सभावना है। सस्कृत 'पशु' और अंग्रेजी 'फी', संस्कृत 'सिंधु' और अंग्रेजी इडि(या), सस्कृत 'गृह' और हिन्दी 'घर', सस्कृत 'आमलक' और हिन्दी 'आँवला', सस्कृत 'वाटिका' भोजपुरी 'बारी', सस्कृत 'द्वार' पजाबी 'बारी' अर्थ-विज्ञान के आधार पर ही जोड़े जा सकते है। अर्थ विज्ञान के भी तीनो रूप (वर्णन, तुलना, इतिहास) हमारी सहायता करते है। अर्थ-निर्धारण मे वर्णनात्मक तथा अर्थ-परिवर्तन की ठीक जानकारी मे तुलनात्मक और वर्णनात्मक सहायक होते हे।

इस प्रकार व्युत्पत्तिविज्ञान मे सहायक के रूप मे ध्वनि विज्ञान और अर्थ विज्ञान दोनो ही एक दूसरे के पूरक है।

रूप विज्ञान से भी व्युत्पत्ति विज्ञान को कुछ न कुछ सहायता लेनी पडती है। शब्द यदि कोई पद या रूप है तो उसके विश्लेषण एवं उनके अर्थ-निर्धारण मे यह हमारी मदद करता है। किसी भाषा का सामान्य व्याकरण हमे शब्द विशेष के बारे मे अपेक्षित सारी जानकारी नही दे पाता या देता भी है तो गलत देता है। इसके लिए भी व्युत्पत्ति विज्ञान को रूप विज्ञान की शरण लेनी पडती है। विशेषत. प्राचीन भाषाओ के लिए तो यह और भी सत्य है।

वाक्य विज्ञान भी व्युत्पत्ति विज्ञान की सहायता करता है। कभी कभी कोश से किसी शब्द के अर्थ तथा व्याकरण से उसके व्याकरणिक अर्थ का ठीक पता नहीं चलता। इसके लिए हम उसका वाक्यों में प्रयोग देखना पड़ता है, जिसमें वाक्य विज्ञान के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मुख्यतः प्राचीन साहित्य के शब्दों के अध्ययन में तो यह अनिवार्य हो जाता है। वैदिक संस्कृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन शब्दों के व्युत्पत्तिक अध्ययन में सचमुच ही इस विज्ञान ने बड़ी सहायता की है।

भाषा विज्ञान की शाखा शब्द विज्ञान भी व्युत्पत्ति विज्ञान से पर्याप्त सम्बन्धित है। एक तो व्युत्पत्ति विज्ञान अपने आप में शब्द विज्ञान की एक शाखा जैसी है क्योंकि शब्द विज्ञान शब्दों का अध्ययन है, और व्युत्पत्ति विज्ञान शब्दों (एवं पदों) का एक विशेष दृष्टि से अध्ययन। इसके अतिरिक्त किसी भाषा का शब्द समूह कब और क्या बदलता है, कोई भाषा कहाँ-कहाँ से और क्या शब्द लेती है ये बातें शब्द विज्ञान में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। कहना न होगा कि व्युत्पत्ति विज्ञान के लिए भी इन बातों की जानकारी अपेक्षित है। यथा, सर्वश्री दाम जैसे शब्द भारतीय भाषाओं में यूनान से आये हैं। अन्य विज्ञानों की सहायता से हिन्दी 'दाम' का हम संस्कृत द्रम्म या प्रा० दम्म से जोड़ सकते हैं किन्तु शब्द विज्ञान ही यह बतलायेगा कि यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है और यूनानी 'द्राख्म' से आया है। वस्तुतः विदेशी मूल के सारे शब्दों की व्युत्पत्ति में हम शब्द विज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है।

भाषा विज्ञान की उपर्युक्त शाखाएं तो व्युत्पत्ति विज्ञान की सहायता करती ही हैं, साथ ही इन्हीं के माध्यम से या सामग्री या प्रमाण संकलन या विश्लेषण के लिए स्वतन्त्र पुरातत्त्व इतिहास साहित्य, धर्म भूगोल मनोविज्ञान मानवविज्ञान आदि से भी इसे पर्याप्त सहायता मिलती है।

व्युत्पत्ति के क्षेत्र में काम करने के लिए निम्नांकित बातें ध्यान में रखने की हैं —

(क) जिस व्यक्ति को इस क्षेत्र में काम करना हो उसे भाषा विज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। विशेषतः ध्वनि विज्ञान में उसकी गति बहुत अच्छी होनी चाहिए।

(ख) शब्द या शब्दों से सम्बद्ध भाषाओं साहित्य तथा संस्कृति का अच्छा ज्ञान हो तो उसका काम अधिक गहरा तथा विश्वसनीय हो सकेगा।

(ग) सम्बद्ध पुस्तकों की उसके पास अधिक-से अधिक पूर्ण सूची होनी चाहिए ताकि उस क्षेत्र में जो कुछ काम हो चुका है उससे वह परिचित हो

सके। ऐसा न करने से कभी-कभी तो ऐसे व्यर्थ के कामो मे काफी समय लग जाता है जो दूसरे कर चुके है, और जिसे आधार मानकर काम आगे बढाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हुए सारे कार्यो को पढ लेने से व्युत्पत्ति शोध-कर्ता वे बहुत सी गलतियाँ करने से बच जाता है जो पूर्ववर्ती लोग कर चुके है। इस प्रकार पूर्ववर्ती कार्य जान लेने से उसका श्रम ठीक प्रकार से व्युत्पत्ति-कार्य को आगे बढाने मे लगता है, व्यर्थ के कामो मे या पिष्टपेषण मे नही।

(घ) जिस भाषा या भाषा-परिवार पर इस दृष्टि से कार्य करना हो उसके बारे मे तथा उसकी भाषाओ एव वोलियो के बारे मे अधिक-से-अधिक जानकारी उपयोगी सिद्ध होती है।

(ङ) सबसे पहले जिस (या जिन) भाषा (ओ) के शब्दो पर कार्य करना हो उनकी ध्वनियो का तुलनात्मक चार्ट बना लेना चाहिए। इस चार्ट के लिए अधिक-से-अधिक तुलनात्मक सामग्री एकत्र करनी चाहिए। इस सामग्री से ऐसे शब्दो को साथ-साथ रखना चाहिए जिनके किसी एक मूल शब्द से निकलने की सभावना हो। उदाहरणार्थ—

सस्कृत	पालि	प्राकृत	जिप्सी
घृत	घत	घिअ	गिर
सिंधी	लहँदा	पजावी	वगाली
गिहु	घिऊ	क्यो	घि
उडिया	भोजपुरी	अवधी	हिन्दी
घिअ	घीव	घीउ	घी

यहाँ एक शब्द के विभिन्न भाषाओ मे प्राप्त रूप एकत्र किये गये है। इनके आधार पर यह जाना जा सकता है कि सस्कृत की 'घ' ध्वनि जिप्सी मे 'ग' सिंधी मे 'ग' तथा पजावी मे 'क' जैसी है और शेष मे 'घ' ही है। यहाँ तो एक शब्द से निष्कर्ष निकाला गया। ४०-४०, ५०-५० इसी प्रकार के शब्द लेकर ध्वनि की आदि, मध्य, अत, बलाघातयुक्त एव वलाघातशून्य, अक्षर मे स्थिति देखकर उसके विकास की रूपरेखा निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार सारे स्वरो और सारे व्यजनो के बारे मे पता लगाते है। इससे इन सभी भाषाओ और बोलियो के ध्वनि-समूह का तुलनात्मक ढंग से आपस मे, तथा ऐतिहासिक दृष्टि से सस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के साथ सम्बन्ध का पता चल जाता है। इस ऐतिहासिक और तुलनात्मक चार्ट के सहारे सरलता से पता चल जाता है

कि किसी भाषा की कोई ध्वनि पहले क्या रही होगी।

संस्कृत	हिन्दी
वन	बन
विवाह	ब्याह
दधि	दही
बधिर	बहरा

उदाहरणार्थ मान लीजिए संस्कृत और हिन्दी में सम्बन्ध स्थापन के लिए आपने कुछ शब्दों की सूची बनाई। उपर्युक्त शब्दों से पता चलता है कि आदि स्थान का संस्कृत 'व' हिन्दी में 'ब' हो जाता है तथा बीच के स्थान का 'ध' 'ह' हो जाता है अर्थात संस्कृत व > हिन्दी ब, संस्कृत ध > हिन्दी ह। अब मान लीजिए आपको हिन्दी 'बहू' की व्युत्पत्ति खोजनी है। उपर्युक्त नियम को उलट दें तो कह सकते हैं कि हिन्दी 'ब' संस्कृत में 'व' रहा होगा तथा 'ह' 'ध', अतः इसका पुराना रूप 'वधू' होगा।

वस्तुतः व्युत्पत्ति खोजना इतना आसान नहीं है। यहाँ केवल समझाने के लिए यह एक बहुत सतही उदाहरण दिया गया। हमने देखा कि उपर्युक्त चार्ट तैयार कर लेने पर ठीक व्युत्पत्ति देना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

(च) ध्वनि का चार्ट बनाते समय दो बातों का ध्यान रखना बड़ा जरूरी है। ये हैं भाषा की अनुलेखन पद्धति और वर्तनी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम ध्वनियों का अध्ययन करते हैं, लिपि चिह्न का नहीं। कभी कभी एक ही अक्षर (letter) कई भाषाओं में कई ध्वनियों का काम करता है। ऐसी स्थिति में उसे एक ध्वनि का प्रतीक न मान लेना चाहिए। उदाहरण के लिए 'ष' हिन्दी में 'श' है किन्तु संस्कृत में 'ष' था। 'ऋ' संस्कृत में 'ऋ' थी किन्तु गुजराती में 'रु' है। 't' अंग्रेजी में 'ट' जैसी ध्वनि है तो फ्रांसीसी में 'त' जैसी। आशय यह है कि हमारा ध्यान ध्वनियों पर होना चाहिए और इसके लिए सतर्क रहना चाहिए। ऐसा न हो कि लिपिचिह्न की अनेकरूपता हमें भटका दे। कभी-कभी एक भाषा में भी यह गड़बड़ी मिलती है। अंग्रेजी में u 'अ' भी है, 'उ' भी, ch 'च' भी है और 'क' भी।

यही बात वर्तनी के बारे में भी है। वर्तनी और उच्चारण में अंतर हो तो बड़ी सावधानी से अपने निष्कर्ष निकालने चाहिए। ऐसी वर्तनी शब्द के पुराने रूप या पुराने उच्चारण को (psychology talk daughter) तो प्रकट करती है किन्तु वर्तमान उच्चारण (साइकॉलजि, टाक डाटर) भिन्न होता है।

(छ) व्युत्पत्ति मे शब्द कभी-कभी तोड़कर अर्थात् उसके उपसर्ग मूल शब्द एव प्रत्यय को अलग-अलग करके (अ+कुश+ल+ता) देखना भी उपयोगी होता है।

(ज) बलाघात सुर लहर आदि का ध्वनियो पर कभी-कभी ऐसा प्रभाव पड़ता है कि परिवर्तन के सामान्य नियम से उन्हे अलग कर देता है। अत. इस पक्ष पर भी ध्यान आवश्यक है।

(झ) ऊपर ध्वनि चार्ट बनाने की बात कही गई है। कभी-कभी सादृश्य के कारण असाधारण परिवर्तन भी हो जाते हैं। सस्कृत मह्य >प्राकृत मज्झं से हिन्दी मझ बनना चाहिए था किन्तु बन गया मुझ। इससे यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि संस्कृत अ>प्राकृत अ>हिन्दी उ है। वस्तुतः यह तुभ्य>तुज्झ>तुझ का प्रभाव है। वस्तुत ध्वनियो का परिवर्तन प्राय बहुत नियमित होता है। इस नियम मे सबसे बडी गड़बडी सादृश्य के कारण पड़ती है अत इस पर भी हमारा ध्यान होना चाहिए।

(ञ) इसी प्रकार किसी भाषा मे गृहीत परवर्ती शब्द भी ध्वनि नियम के अनुसार नही चलता। ऐसी स्थिति मे यदि उसके बाहर से आने का ध्यान नही रखा गया तो निष्कर्ष गलत हो जाएगा। उदाहरण के लिए सस्कृत कृष्ण का हिन्दी मे नामो मे 'किशुन' रूप भी मिलता है। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना गलत होगा कि सस्कृत ष हिन्दी मे श हो जाता है। वर्ष> बरस, षष्टि>साठ, षड>साँड़ मे ष>स है। वस्तुत 'किशुन' तद्भव शब्द नही है। सस्कृत से हिन्दी काल मे 'कृष्ण' शब्द मूल रूप मे आया और उसका यह विकास है।

(ट) कुछ लोग व्युत्पत्ति मे 'अनुमान' लगाना अवैज्ञानिक मानते हैं। मैं इस मत से असहमत हूँ। बिना अनुमान या अदाज़ के तो हम आगे बढ ही नही सकते। हाँ यह नही कि हम अपने अनुमान को ही सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जाये। हमे चाहिए कि अपने अनुमान को शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से देखें यदि वह उपर्युक्त नियमो के बिल्कुल अनुकूल हो तो उसे मानें, अन्यथा छोड दे। अनुमान आगे बढने का एक आधार होता है, किन्तु यह आवश्यक नही कि वह सत्य ही हो। इस प्रकार अनुमान करने के बाद उसके प्रति तटस्थ होकर हमे छानबीन करनी चाहिए।

(ठ) ध्वन्यात्मक दृष्टि से व्युत्पत्ति ठीक मिल जाने पर उसके अर्थ पर भी विचार कर लेना चाहिए। किन्तु ऐसा नही कि अर्थ मे अन्तर हो तो उसे ग़लत मान लें। अन्तर पर विचार कर लेना चाहिए और यह देखना चाहिए

कि अर्थ परिवर्तन के कारण यह अन्तर सम्भव है या नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत 'पशु', अंग्रेजी 'फ़ी' एक है। पशु भी कभी द्रव्य धन के स्थान पर दिये जाते थे अतः ऐसा अर्थ परिवर्तन समझ में आता है। किन्तु हिन्दी के 'आम' (फल) को संस्कृत आम्र से मान लेने पर हिंदी 'आम' (सामान्य) उससे नहीं जोड़ सकते। यह अलग शब्द है जो अरबी से आया है।

इस तरह अनुमान से आरम्भित फिर ध्वन्यात्मक व्यवस्था, एवं अर्थ की दृष्टि से पूर्णतः परीक्षित व्युत्पत्ति ही सच्ची व्युत्पत्ति हो सकती है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो विश्व की अनेक भाषाओं में पहुँच जाते हैं। उनकी व्युत्पत्ति पर विचार करने में यह भी देखना होता है कि वे कहाँ-कहाँ से अर्थात् किस रास्ते गए। यह ध्वनि के अध्ययन के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का एक शब्द है शृंगवेर जिसका अर्थ है अदरक। यहाँ संक्षेप में इसका इतिहास देखा जा सकता है। संस्कृत में एक शब्द है शृंग (सींग), इसी के आधार पर सींग जैसा होने से इस जड़ (वेर) को 'शृंगवेर' कहा गया। वस्तुतः शृंग और वेर संस्कृत के अपने शब्द नहीं हैं। ये द्रविड़ परिवार के हैं और इनका अर्थ क्रमशः 'सींग' और 'जड़' है। अर्थात् ऐसी शृंगवेर जड़ है जो सींग जैसी हो। यही संस्कृत में शृंगवर पालि में सिंगिवेर तथा प्राकृत में सिंगवेर हो गया। पालि प्राकृत से जाकर यह शब्द सिंहली में 'इगुरु', मध्यईरानी में Singypyl तथा ग्रीक में Zingiberis बना। फिर एक तरफ मध्य ईरानी से (Sogrvel) आर्मेनिक होते यह Zanghebhil रूप में सिंधु में पहुँचा तो दूसरी ओर आर्मेनिक से अरबी में Zanjabil और तुर्की में Zence fil रूप में। अरबी से स्वाहिली (Tangawizi) आदि कई अफ्रीकी भाषाओं में यह गया। अरबी में ही जार्जियन (Janjapili) बना। अब ग्रीक से यह लैटिन (Zingiber) में पहुँचा और वहाँ से यह एक ओर तो इटलियन (Zenzero) स्पेनिश (Jengibre) पुर्तगाली (Gengivre) फ्रेंच (Ging mbre) अंग्रेजी (Ginger) जर्मन (Ingwer) डच (Gember), आदि में गया और दूसरी ओर हंगरियन (Gyomber) आदि में। रूसी, चेक, बलगेरियन अल्बानियन रूमानियन उइगुर, फ़िजियन इस्लोवेनियन स्वीडिश, फ़िनिश आदि में भी विभिन्न रूपों में यही शब्द है। यह है संस्कृत शृंगवेर की विश्वविजयिनी यात्रा। संस्कृत 'शर्करा' शब्द भी इसी प्रकार संसार की अनेकानेक भाषाओं में शकर शूगर साखर सक्कीन आदि रूपों में प्रयुक्त हो रहा है।

कभी कभी व्युत्पत्तियों में बड़ी जटिल समस्याएँ आ जाती हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत सपत्नी (इसका शाब्दिक अर्थ है पत्नी सहित' अर्थात् 'और

पत्नी वाला') से हिन्दी 'सौत' का विकास है। प (> व > व >) उ होकर 'स' के 'अ' से मिलकर 'औ' हो जाता है और 'न' के लोप से 'त' शेष रह जाता है। किन्तु इसी से सम्बद्ध शब्द पजाबी मे है 'सौकन' या 'सौकण'। इसमे 'स', औ, 'न' या 'ण' की कोई समस्या नही है, किन्तु 'क' कहाँ से आ गया। किसी भी तरह से इसका समाधान नही हो रहा था। एक शिक्षाग्रथ मे यह सकेत मिला कि पुराने ज़माने मे कुछ प्रदेशो के लोग 'त्न' का ठीक उच्चारण नही कर पाते थे वे 'त्न' को 'त्कन' बोलते थे। इस सकेत के प्रकाश मे अनुमान यह लगता है कि इस उच्चारण-दोष ने ही 'त्न' का 'त्कन' कर दिया फिर त् के लोप और क् न् के बीच 'अ' के आगम से 'सौकन' या 'सौकण' बन गया।

नीचे दो शब्दो ('तुम' और 'आप') की व्युत्पत्ति पर कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

तुम

तुम शब्द विभिन्न भाषाओ और बोलियो मे विभिन्न रूपो (बाँगरु तम, तम्ह, थम, कौरवी तुम, तम, ताजुज्बेकी तम; ब्रज तुम, कनौजी तुम, तुम्ह, बुन्देली तुम; निमाड़ी तुम; अवधी तुम, तुम्ह, बघेली तुम्ह; छत्तीसगढी तुम; दक्खिनी तुम, राजस्थानी तुम, तम, पहाड़ी तुम, तुमूं, तिमि; जिप्सी तिमी; गुजराती तमे, तम; मराठी तुम, बंगाली-आसामी तुमि; उडिया तुम्ह आदि) मे मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे बहुत विवाद है। कामता प्रसाद गुरु स० त्वम् > प्रा० तुम्ह से इसे व्युत्पन्न मानते हैं। श्यामसुन्दर दास इसे स० त्वम् > प्रा० तुम से मानते है। पिशेल ने इस प्रसग मे 'यूयम' के स्थान पर सस्कृत मे *तुष्मे की कल्पना की है। तेसितोरी, सुकुमार सेन, धीरेन्द्र वर्मा तथा उ० ना० तिवारी आदि सभी इसी से 'तुम' को विकसित मानते है।

मेरे विचार मे तुम की व्युत्पत्ति मे 'त' की समस्या इतनी सामान्य एव सीमित नहीं है, जितनी उसे प्राय विद्वानो ने माना है। ऐसी स्थिति मे इस प्रश्न को थोडे विस्तार से देखना अपेक्षित है। वस्तुत 'तुम' के अपभ्रश, प्राकृत तथा पालि मे प्रयुक्त पूर्ववर्ती रूपो की प्राप्ति मे कोई कठिनाई नही है। इसका विकास पालि 'तुम्हे' प्राकृत, अपभ्रंश 'तुम्हे', परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट 'तुम्ह' से स्पष्ट है। वास्तविक कठिनाई है पालि के 'तुम्हे' के पूर्ववर्ती रूप की प्राप्ति मे। वैदिक संस्कृत तथा सस्कृत मे प्रथमा बहुवचन मे रूप था 'यूयम्'। वस्तुत 'यूयम्' रूप भी कदाचित उत्तम पुरुष बहुवचन से प्रभावित बाद का रूप था। जैसा कि मूल 'युष्मद्' तथा बहुवचन के अन्य रूपो 'युष्मान्', 'युष्माभि.',—'युष्मभ्यम्', 'युष्मत् 'युष्माकम्' तथा 'युष्मासु' से स्पष्ट

कुछ लोगों ने 'हाब्सन जाब्सन' नाम का प्रयोग भी इस प्रकार की व्युत्पत्तियों के लिए किया है। इस शब्द की कहानी बड़ी दिलचस्प है। अंग्रेज सिपाहियों ने भारत में आने पर मुहर्रम में पहले पहल जब शिया मुसलमानों को हसन हुसेन चिल्लाते सुना तो उनकी समझ में कुछ न आया। बाद में ध्वनि साम्य के कारण उन्होंने यह सोचा कि ये लोग कदाचित् हाब्सन जाब्सन चिल्ला रहे हैं। परिणामतः उनके लिए हसन हुसेन हाब्सन जाब्सन बन गया। इस प्रकार 'हाब्सन जाब्सन' भ्रामक व्युत्पत्ति का अच्छा उदाहरण है। इस प्रसंग में मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आ रही है। एक बार एक अनपढ़ बूढ़े ने आन्ध्रप्रदेश का नाम सुनकर मुझसे पूछा कि क्या सच्चा क्या वहाँ ज्यादातर लोग 'आन्हर (=अंध)' हैं जो उसका यह नाम पड़ा है। भोजपुरी में 'आन्हर' का अर्थ अंधा होता है। उस बूढ़े की समझ में आन्ध्र तो आया नहीं। उसने समझा कि आन्ध्र कदाचित् उसकी अपनी बोली का आन्हर ही है और उसकी बोली में आन्हर का अर्थ अंधा था अतः उसने आन्ध्र प्रदेश को 'आन्हर प्रदेश अर्थात् अंधों का प्रदेश' समझ लिया। इस तरह उसने अपने ढंग से 'आन्ध्र प्रदेश' की व्युत्पत्ति कर डाली।

हिन्दी का एक अल्पप्रचलित शब्द है हाथीचक। यह एक पौधे का नाम है जो दवा के काम आता है। मूलतः यह शब्द अरबी का है जो इतालवी भाषा में आकर Articiocco तथा अंग्रेजी में Arti Choke हो गया। अंग्रेजों के साथ भारत में आने पर इसका प्रचार कदाचित् बंगला में सर्वप्रथम हुआ। वहाँ इसका नाम एक अपरिचित और अस्पष्ट शब्द था अतः लोगों ने आर्टी को हाथी कर दिया तथा 'चोक' को चोख। 'हाथी' और 'चोख' बँगला में सार्थक हैं। इसी तरह बंगाली में भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण यह शब्द हाथी चोख हो गया। हिंदी में यही 'हाथी चक' है। भोजपुरी प्रदेश में इसे 'हाथीचिघार' अर्थात् 'हाथी की चिग्घाड़' कहते हैं। चिग्घाड़ शायद चोक को चोकरना (भोजपुरी में चिग्घाड़ना को 'चोकरना' भी कहते हैं) समझ लेने के कारण हुआ।

इस प्रकार एक अच्छा उदाहरण 'हीराकुण्ड' है। उड़ीसा का प्रसिद्ध बाँध है हीराकुद। उड़िया भाषा में कुद का अर्थ है 'नदी द्वारा घिरा स्थान'। यह स्थान नदी द्वारा घिरा है, तथा यहाँ कभी हीरों की खोज हुई थी अतः इसका नाम हीराकुद पड़ा। यह शब्द जब हिन्दी की पत्र पत्रिकाओं में आया तो लोगों (अनपढ़ लोग नहीं पढ़े लिखे सम्पादकों एवं लेखकों) ने सोचा कि 'हीरा' तो ठीक है किन्तु यह 'कुद' क्या है? सम्भव है यह 'कुण्ड' हो। बस यह सोचना

था, इसका नाम हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ मे 'हीराकुण्ड' हो गया। अव भी हिन्दी मे इसे हीराकुण्ड ही कहते और लिखते हैं। इस प्रकार शव्द भ्रामक व्युत्पत्ति के शिकार सर्वदा अनपढो के हाथ ही नही, कभी-कभी पढे-लिखे लोगो के हाथ भी हो जाते हैं।

पुलिस और सेना के सिपाही अव तो काफी पढे-लिखे होते है किन्तु पहले यह स्थिति नही थी। परिणाम यह हुआ कि अनेक अग्रेजी शव्द उनकी वोल-चाल मे भ्रामक व्युत्पत्ति के चक्कर मे पड़कर कुछ से कुछ हो गए। खज़ाने पर पहरा देने वाले सिपाही के पास यदि आप १९५० के पूर्व रात मे जाते तो वह ज़ोर से कहता 'हुकुम सदर'। वस्तुत उसको सिखाया गया था 'हू कम्स देयर' (कौन आ रहा है), किन्तु अंग्रेजी न जानने के कारण उसके लिए 'हू कम्स देयर' निरर्थक था अत उसने इसे 'हुकम सदर' समझा और यही कहने लगा। 'हुकुम सदर' अर्थात् 'सदर का हुक्म है कि न आइए'। इसी प्रकार सेना मे 'स्टैन्ड एट ईज़' को 'ठन्डा टी' कहते रहे हैं। 'ठन्डा टी' अर्थात् 'ठंडी चाय' की तरह अर्थात् शान्त।

वनारस के रिक्शे वाले तथा मजदूर आदि हिन्दू यूनिवर्सिटी के 'आर्ट कॉलिज' को 'आठ कॉलिज' कहते रहे हैं। 'आर्ट' उनके लिए अपरिचित और अस्पष्ट था अत उसे 'आठ' कर लिया। इसी आधार पर 'आर्ट कॉलिज' से आगे स्थित 'साइन्स कॉलिज' उनकी भाषा मे 'नौ कॉलिज' (जो आठ के वाद आए) कहलाता है। एक वार मैंने एक रिक्शे वाले से वनारस स्टेशन पर कहा मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय ले चलो। उसने तुरन्त पूछा कहाँ जायेंगे वावूजी 'आठ कॉलिज' या 'नौ कॉलिज'। मैं उसके प्रश्न को विलकुल न समझ सका। फिर किसी स्थानीय व्यक्ति ने हमारे-उसके वीच दुभाषिए का काम करके समस्या सुलझाई।

'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' का 'ऑनरेरी' शव्द कुछ भोजपुरी क्षेत्रो मे 'अन्हेरी' हो गया है। 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' को लोग 'अन्हेरी के साहव' कहते हैं। यहाँ ध्वनि और अर्थ दोनो साम्य, भ्रामक व्युत्पत्ति की पृष्ठभूमि मे काम कर रहा है। 'अन्हेरी' ऑनरेरी मे ध्वनि साम्य है ही, अर्थ साम्य यह है कि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट वैतनिक तो होते नही अत उनके यहाँ रिश्वत का वोलवाला होता होता है और भोजपुरी मे 'अन्हेरी' का अर्थ होता है 'अन्याय'।

कहीं कहीं ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के 'ऑनरेरी' शव्द को लोगो ने 'अनाडी' भी कर दिया है। यहाँ भी ध्वनि तथा अर्थ दोनों साम्य हैं। अर्थ साम्य इसलिए है कि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट कायदे-कानून की नियमित शिक्षा न पाने के कारण

इन मामलों में कुछ अपवादों को छोड़कर, प्राय 'अनाड़ी' से ही होते हैं।

रहीम ने लिखा है —

> रहिमन याचकता गहे बड़ छोट ह्वै जात।
> नारायण हूँ को भयो बावन आँगुर गात॥

इसमें 'बावन आँगुर गात' ध्यान देने योग्य है। हिन्दी तथा उसकी बोलियों में बहुत ठिगने व्यक्ति को 'बौना' 'बावन' या 'बावण' आदि कहते हैं। उसे बावन आदि क्यों कहते हैं यह लोगों को स्पष्ट नहीं था। अतः लोगों ने यह सोचा कि ५२ अंगुल लम्बा होने के कारण यह 'बावन' या 'बौना' कहलाता है। रहीम जैसे विद्वान् भी इस भ्रामक व्युत्पत्ति के भ्रम से नहीं बच पाये। वस्तुतः 'बावन या बौना' का सम्बन्ध ५२ से बिलकुल नहीं है। 'बावन' संस्कृत 'वामन' तथा बौना संस्कृत 'वामनक' के तद्भव रूप हैं।

ऐसी प्रवृत्ति विश्व की सभी भाषाओं में मिलती है। मद्रास प्रांत में कभी एक कलक्टर आए थे जिनका नाम 'कालटपट (Colletpet) था। वे कुछ सख्त थे। बहुत जल्द ही वहाँ की जनता में इनका नाम 'कालापेट्टी' प्रसिद्ध हो गया। 'कालापेट्टी' तामिल भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है 'सख्त' या 'क्रूर'। इस प्रकार ध्वनि अर्थ दोनों में साम्य होने के कारण यह परिवर्तन हो गया।

कटक में इसी प्रकार का एक 'मकट बाजार' है। इसमें 'मकट' 'मार्केट' है। उस बाजार का नाम पहले कोई मार्केट था। 'मार्केट' शब्द अस्पष्ट था अतः उसे लोगों ने मिलती-जुलती ध्वनि वाला उड़िया शब्द मकट (=बंदर, कदाचित वहाँ बन्दर भी रह हों) बना दिया। बाजार वह है ही, अतः हो गया 'मकट बाजार'। जिसका अर्थ ऊपर से देखने में लगता है 'बंदर बाजार' किन्तु वास्तविक अर्थ है 'बाजार-बाजार'।

अनेक भारतीय शब्द भी अंग्रेजी में जाकर 'भ्रामक' व्युत्पत्ति के चक्कर में कुछ से कुछ हो गये हैं। उदाहरणार्थ अंग्रेजी में एक शब्द है बॉबरे (Bobbery) जिसका अर्थ होता है — 'शोरगुल करती हुई कतार' (चैम्बर्स डिक्शनरी १९६० पृ० ११५)। यह सुनकर कितना आश्चर्य होता है कि मूलतः यह हिन्दी शब्द 'बाप रे' है। इसमें भ्रामक व्युत्पत्ति ठीक उस रूप में तो नहीं काम कर रही है किन्तु बाबरे अंग्रेजी शब्दों एवं रूपों के अनुरूप है, अतः अंग्रेजों ने 'बाप रे' सुन उसे न समझने के कारण 'बॉबरे' कर लिया।

इसी तरह "शाह शुजाउल्मुल्क (नाम) अंग्रेजी में 'शा शुगर मिल्क' (चाय चीनी दूध) इंडियन वर्ड्स इन इंगलिश १९५४ पृ० ४८) हो गया है।

पटना मे एक बाग का नाम सुना है 'गर्दनिया' बाग है। यह 'गर्दनिया' शब्द असल मे 'गार्डन' का भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण परिवर्तित रूप है। 'गार्डन' का अर्थ है 'बाग'। बाग का पुराना नाम किसी अँग्रेज के नाम पर कोई गार्डन था। 'गार्डन' अस्पष्ट एव अपरिचित था अतः मिलता-जुलता शब्द गर्दनिया (गर्दन का भोजपुरी आदि मे प्राप्त रूप) उसके स्थान पर आ गया और बाग था ही, अत बाग जुड गया और हो गया 'गर्दनिया बाग' अर्थात् 'बाग-बाग'।

'पाव रोटी' शब्द भी ऐसा ही है। 'पाउ' पुर्तगाली भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'रोटी'। पाउरोटी भारत मे सर्वप्रथम पुर्तगाली ले आए और उन्होने उसे 'पाउ' कहा। स्पष्टता के लिए लोगो ने इसके साथ 'रोटी' जोडकर इसे 'पाउरोटी' बनाया। पर 'पाउ' शब्द अस्पष्ट था। रोटी बडी थी ही। यह सोचकर कि यह 'पाउ' शायद पाव (१/४ सेर) हो, पाव भर की एक रोटी, उसका भ्रामक व्युत्पत्ति प्राप्त रूप 'पावरोटी' हो गया। इधर अँग्रेजी 'डबल' ने 'पाव' को हटा दिया और 'पावरोटी' शब्द अब 'डबलरोटी' हो गया है।

कुछ दिन पूर्व तक 'अँगरेज' को हिन्दी प्रदेश के अनेक क्षेत्रो की जनता 'रगरेज' कहती रही है। यहाँ भी वही बात है। अँगरेज उनके लिए प्रारम्भ मे अपरिचित शब्द था किन्तु उससे ध्वनि साम्य रखने वाला 'रगरेज' परिचित था अत लोग 'अँगरेज' के स्थान पर 'रँगरेज' मान बैठे। अनेक लोक गीतो मे अँगरेज के स्थान पर 'रगरेज' मिलता भी है।

देसवा के कइलस बर्बाद रँगरेज बेइमनवा (भोजपुरी)।

इसी तरह 'ऐक्टिंग रजिस्ट्रार' को कही-कही 'एक टाँग रजिस्ट्रार' कहा जाता रहा है। यहाँ भी ध्वनि और अर्थ दोनो साम्य है। अर्थ साम्य इसलिए कि स्थायी व्यक्ति ही दोनो टाँगो से टिक सकता है, अत. 'ऐक्टिंग' निश्चय ही 'एक टाँग' (अर्थात् एक पैर का) कहलाने का अधिकारी है।

'ब्रेकवान' का बृखभान, चेम्सफोर्ड (वाइसराय का नाम) का कुछ भोजपुरी क्षेत्रो मे 'चिलमफोड' (यह कहा जाता है कि वह धूम्रपान का विरोधी थी और उसने चिलम फोड दी थी), 'कैम्पबेल' का 'कम्बल', 'चार्ज शीट', का 'चार शीट' (जो चार शीट कागज पर लिखी हो), 'लाइब्रेरी' का 'राय बरेली' (एक शहर के प्रचलित नाम के आधार पर), 'सिगनल' का 'सिकन्दर', 'अस्सरैं नौ' का 'साढे नौ'; अरबी 'इतिकाल' का हिन्दी 'अतकाल' (अतिम समय=मृत्यु), अँग्रेजी 'ऐडवाँस' का भोजपुरी मे 'अठवाँस' (आठवाँ अश); 'बनर्जी' का 'बानर जी' (हाब्सन-जाब्सन कोश मे), 'ऐडरसन' (नाम) का मराठी मे

'इन्द्रमन', 'जानमार्ले' नाम का कुछ हिन्दी क्षेत्रों में 'जॉन मारले', 'मैकेंजी' नाम का 'मक्खनजी', 'क्वाटर गार्ड' का 'कोनरगार्द' तथा अंग्रेजी शब्द 'टैंडम' (Tand m, एक सवारी का नाम) का हिन्दी में 'टमटम' (उसका भोंपू टमटम बजता था कदाचित इसी कारण यह परिवर्तन हुआ) कुछ अन्य उदाहरण हैं।

भ्रामक व्युत्पत्ति सहज प्रक्रिया है। पर कभी-कभी पढ़े लिखे लोग जान बूझ कर विदेशी शब्दों का स्वदेशी रूप दे देते हैं। इस प्रक्रिया का परिणाम भी वही होता है जो भ्रामक व्युत्पत्ति का। अंतर केवल यह है कि यह सहज न होकर सप्रयास होता है। 'मैक्समूलर' का 'मोक्षमूलर', 'अफगानिस्तान' का 'आवागमनस्थान' (अर्थात भारत से बाहर जाने और फिर भारत में लौटने का स्थान), 'जापान' का 'जयप्राण', 'अलेक्जेंडर' का 'अलक्षेन्द्र', 'मिस्टर' का 'मित्र', 'धीर' का 'ध्यवन दत्त', 'क्राइस्ट' का 'कृष्ण' तथा 'स्कैंडेनेवियन' का 'स्कंधनिवासी' आदि उदाहरण इसी श्रेणी के हैं।●

अध्याय ६

नाम-विज्ञान

नामविज्ञान शब्दो के अध्ययन या शब्द-विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसमे नामो का अध्ययन होता है। अंग्रेजी मे इसके लिए तीन नामो (onomatology, onomasiology, onomastics) का प्रयोग होता है। नाम, वह शब्द या शब्दो का समूह है जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या सत्ता आदि का बोध होता है। कोई आवश्यक नही कि व्यक्ति, स्थान या वस्तु आदि का उनके नाम से सार्थक सबंध हो। 'सुन्दरलाल' नाम का व्यक्ति महा असुन्दर हो सकता है और 'घूरेलाल' कामदेव के अवतार हो सकते है। 'सोनबरिसा' (जहाँ सोना बरसे) नाम के गाँव मे धूल उड़ सकती है और 'सूखेपुर' (जहाँ की धरती सूखी ही सूखी हो) मे लहलाते खेतो की सरसता दृष्टिगत हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि नाम सकेत या प्रतीक होता है। वह सकेत यादृच्छिक भी हो सकता है जैसे जिस घर मे फूटी कौड़ी भी न हो, उस घर के लडके का नाम अशर्फीलाल या करोडपति के लड़के का नाम छकौड़ीमल, और दूसरी ओर सार्थक भी हो सकता है, जैसे मातावदल, कनछेदी, नकछेदी, बेचू आदि। उल्लेख्य है कि कुछ क्षेत्रो मे जिस व्यक्ति के लड़के मर जाते हैं वे अंधविश्वासवश पुत्र पैदा होते ही मा बदल देते है, अर्थात् दूसरी स्त्री (मा) को दे देते है (मातावदल), कुछ लोग उसके कान (कनछेदी) या नाक (नक-छेदी) या दोनो छेद देते है और कुछ आने दो आने मे टोना-टोटके स्वरूप उसे बेच (बेचू)देते हैं, और तदनुसार नामकरण कर देते है। नाम बहुत छोटे भी होते है जैसे शिव, लावा (गाँव का नाम) तथा बहुत बड़े भी होते है, जैसे उदयप्रताप बहादुर सिह, मोहनदास करमचन्द गाँधी। ग्रेट ब्रिटेन मे एक रेलवे स्टेशन का नाम ५८ वर्णों (Leanfairpwllgwyngyllgogerychwyrndrob-wllllantysiliogogogoch) का तथा आस्ट्रेलिया मे एक झील का नाम ३९ (Kardivilliwarrakurrakurrieapparlarndoo) वर्णों का है।

नामविज्ञान में जिन नामों का अध्ययन होता है वे अत्यधिक व्यापक होते हैं। इनमें व्यक्तियों के नाम या उपनाम, जानवरों के नाम (पालतू जानवरों को लोग कभी-कभी नाम दे देते हैं जैसे कुत्ते का नाम लालू, कालू, टाइगर, टॉमी आदि। इसी प्रकार हाथी, घोड़े, बन्दर, बिल्ली, तोते आदि के भी नाम होते हैं। चिड़ियाघर में और जानवरों के इस प्रकार के नाम होते हैं), पक्षियों के नाम (तोते आदि के जैसे आत्माराम, गिरधारी, राम आदि), भौगोलिक नाम (महासागर, सागर, खाड़ी, नदी, झील, तालाब, महाद्वीप, द्वीप, प्रायद्वीप, देश) के तथा देश, प्रदेश या प्रान्त, डिवीज़न, सबडिवीज़न, कमिश्नरी, ज़िला, तहसील, परगना, नगर, कस्बा, ग्राम, मुहल्ला, स्टेशन, सड़क, गली, चौराहा, तिराहा आदि के), लोगों के मकानों व बंगलों के नाम, पुस्तकों के नाम, पत्र-पत्रिकाओं के नाम, लेख, कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, तथा चलचित्र के शीर्षक आदि, धर्म, गोत्र के नाम, त्योहारों के नाम, संस्थाओं के नाम, व्यापारिक नाम (जैसे अशोक (ब्लेड), सनलाइट (साबुन), कोकाकोला (पेय), डालडा (वनस्पति घी), ब्रुकबाण्ड (चाय), नस (काफी), पारकर (कलम), मरफी आदि), ऋतुओं, महीनों, तिथियों, दिनों के नाम, तारा, ग्रह, उपग्रह, राशि के नाम, भाषा, उपभाषा, बोली-उपबोली के नाम, कहने का आशय यह कि सभी तरह के नाम आते हैं।

इन नामों के वर्गीकरण के आधार पर नामविज्ञान को कभी दो (व्यक्तिनामविज्ञान तथा स्थाननामविज्ञान) कभी तीन (व्यक्तिनामविज्ञान, सामूहिक नामविज्ञान (जैसे जाति, धर्म, आस्पद, गोत्र आदि के नामों का अध्ययन), भौगोलिकनामविज्ञान) तथा कभी और अधिक शाखाओं में बाँटा गया है। वस्तुतः उपर्युक्त नामों का ठीक-ठीक वर्गीकरण काफी कठिन है, इसी कारण अभी तक सर्वसम्मति या बहुसम्मति से नामविज्ञान की शाखाओं प्रशाखाओं के नाम स्वीकृत नहीं हुए हैं। यों मोटे रूप से व्यक्तिनाम, स्थाननाम, सामूहिकनाम तथा अन्य नाम—ये चार अंग माने जा सकते हैं।

नामविज्ञान के क्षेत्र में विदेशों में पर्याप्त काम हुआ है। अंग्रेज़ी वाङ्मय इस दृष्टि से काफ़ी सम्पन्न है। गार्डिनर की 'द थ्यूरी ऑफ़ प्रॉपर नेम्स', एकवॅल (Ekwall) की 'द कन्साइज़ ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी ऑफ़ इंगलिश प्लेस नेम्स' तथा रेनले एवं अन्य लोगों की 'द ओरिजिन ऑफ़ इंगलिश प्लेस नेम्स' इस क्षेत्र में उल्लेख्य हैं। लंदन की गलियों के नामों पर भी काम हो चुका है।

भारत में, नामविज्ञान रूप में भाषाविज्ञान की यह शाखा अभी अपनी

शैशवावस्था मे है, किन्तु नामो के अध्ययन के प्रयास अत्यन्त प्राचीन काल से होते रहे है। सस्कृत वाडमय मे अनेक ग्रथो मे यत्र-तत्र स्थान या व्यक्ति नामों की व्युत्पत्ति देने के प्रयास हुए है। इस दृष्टि से यास्क का निरुक्त प्राचीनतम उल्लेख्य ग्रथ है। उसमे पृथ्वी, अग्नि, आदित्य, वैश्वानर आदि अनेक देवी-देवताओ तथा कम्बोज आदि कई स्थान नामों की व्युत्पत्तियाँ दी गई है। पाणिनि के अष्टाध्यायी, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि मे भी यत्र-तत्र अच्छी सामग्री है।

आधुनिक काल मे अग्रेजो के आने के बाद इस दृष्टि से ठोस प्रयास हुए है। इस दिशा मे सर्व प्रमुख उल्लेख्य ग्रंथ विभिन्न जिलो के गजेटियर हैं जिनमे नगरो, कस्बो आदि के नामो पर काफी सामग्री है। कुछ अन्य प्रकार के ग्रथो (जैसे ग्राउज का 'मथुरा मेम्वॉयर' या प्रयाग, काशी, अयोध्या आदि तीर्थों पर धार्मिक दृष्टि से लिखी गईं परिचयात्मक पुस्तिकाएं) मे भी कुछ सामग्री मिल जाती है। इसी प्रकार भाषाओ के इतिहास पर लिखी गई पुस्तको मे भी स्थानो और कही-कही व्यक्तिनामो की व्युत्पत्ति पर थोडी बहुत सामग्री (जैसे सुनीति कुमार चटर्जी के 'ओरिजिन एड डेवलपमेट आफ बेगाली लैग्विज' या बानीकात काकती के 'असमीज इट्स फार्मेशन एड डेवलपमेट' मे) है।

हिन्दी मे नामविज्ञान के क्षेत्र मे धीरेन्द्र वर्मा का लेख 'अवध के जिलो के नाम' (उनकी पुस्तक 'विचारधारा' मे सकलित) प्रथम व्यवस्थित अध्ययन है। बाद मे उन्ही के निर्देशन मे कार्य करके विद्याभूषण विभु ने हिन्दी प्रदेश के हिन्दी पुरुषो के नाम पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल० की उपाधि ली। ग्रथ 'अभिधान अनुशीलन' नाम से छप चुका है। राहुल साकृत्यायन ने एक लम्बा लेख 'जिला आजमगढ के नामो का इतिहास' सम्मेलन पत्रिका (भाग ४३ सख्या १) मे प्रकाशित किया था। सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अवध के स्थान नामो का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डी० लिट्० तथा श्री प्रकाश कुर्ल ने सहारनपुर जिला के स्थान-नामो (a socio-linguistic study of District Saharanpur place-names) पर एवं लक्ष्मीनारायण शर्मा ने 'ब्रज के स्थान-अभिधानो का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' पर आगरा से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। श्री शर्मा जी ने एम० ए० के लिए लघु-शोधप्रबन्ध भी इसी विषय (आगरा मुहल्ले के नामो का भाषावैज्ञानिक अध्ययन) पर प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत पंक्तियो के लेखक ने भी 'अमृत पत्रिका' (प्रयाग से प्रकाशित हिन्दी दैनिक जो अब बन्द हो चुका है) के कुछ अको मे इस विषय पर कुछ लेख लिखे थे। इसी प्रकार प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'भाषा

विश्व कोश' में विश्व की प्रमुख भाषाओं के परिचय में बहुतों के नाम पर संक्षेप में विचार किया गया है। लेखक की दूसरी पुस्तक 'हिन्दी भाषा' में हिंदी, उर्दू आदि नामों पर काफी विस्तार तथा हिन्दी प्रदेश की प्रमुख बोलियों के नामों पर संक्षिप्त सामग्री दी गई है। यों हिन्दी में इस कार्यों का अभी श्रीगणेश ही हुआ है और काफी काम शेष है।

नामों का अपने आप में एक मनोरंजक अध्ययन तो है ही, और इससे नामों के बारे में हमारी जिज्ञासा की शांति तो होती है, साथ ही इससे हमारे अंधविश्वास, प्राचीन इतिहास और संस्कृति, जाति मिश्रण तथा मनोविज्ञान आदि पर भी प्रकाश पड़ता है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसीलिए यहाँ व्यक्तिनामों में लगभग ८० प्रतिशत नाम धर्म और दर्शन पर आधारित हैं, शेष में अन्य प्रकार के नाम हैं। स्थान नामों की आवश्यकता तो कभी-कभार ही पड़ती है, अतः उन पर तो समय का प्रभाव बहुत अधिक नहीं पड़ता, किंतु व्यक्तिनामों की आवश्यकता तो रोज पड़ती है, अतः उन पर बहुत अधिक दृष्टिगत होता है। हमारे नाम समय के साथ बदलते रहे हैं। वैदिक काल से लेकर अब तक के नामों पर एक दृष्टि डालें तो यह बात स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती। प्राचीन वैदिक नाम बहुत अधिक धर्म प्रधान नहीं हैं, किंतु परवर्तीकाल में जैसे जैसे धर्म के प्रति अंधआस्था बढ़ती गई धार्मिक नाम बनते गए। बौद्ध और जैन धर्म आए तो उनके आधार पर भी नामकरण किए जाने लगे (अमिताभ, गौतमबुद्ध, सिद्धार्थ, राहुल, बुद्धदेव, ऋषभ, जिनेश्वर, जैनेन्द्र, सुपार्श्व)। आगे चलकर मुसलमानों के आगमन तक इसी प्रकार के नामों की सम्मिलित प्रवृत्ति विशेष रूप से चलती रही। मुसलमानों के आगमन ने अन्य क्षेत्रों की भाँति नामों पर भी प्रभाव डाला और रामगुलाम, राम इकबाल, इज्जत सिंह, उलफत राय, मुसद्दीलाल, खुशीराम, हुरमत, खुशबख्त, मुंशीराम, बहराम, हजूरसिंह, सुहराब, रुस्तम, खुरशेद जैसे नाम हिंदुओं में काफी प्रचलित हो गए। अंग्रेज भारत में राजा तो रहे किंतु वे हमारी संस्कृति में प्रवेश न कर सके। इसी कारण स्वीटी, बेबी, रूबी, लिली, डाली जैसे कुछ ही नाम विशेष मिलते हैं। इनमें भी प्रायः वास्तविक नाम न होकर पुकारने के नाम होते हैं। हाँ डिप्टी सिंह, कप्तानसिंह जैसे कुछ नाम अवश्य हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज आंदोलन ने भी नामों को बहुत अधिक प्रभावित किया, शची देवी, ओमवती, ओमप्रकाश, वेददान, वेदप्रकाश, वेदमित्र, वेदव्रत, वेदमणि। देश की आजादी के लिए संघर्ष और स्वराज्य की प्राप्ति ने भी नामों पर अपनी

छाप छोडी है · देशराज, देशरत्न, भारत भूषण, भारत मित्र, स्वदेशीलाल, क्रातिकुमार, स्वतत्रनारायण, स्वराज्यपाल, सुदेशचद ।

व्यक्ति नामो मे सबसे मनोरजक सामग्री अधविश्वास पर आधारित नामो मे मिलती है । पीछे मातावदल, छेदी, वेचू का उल्लेख किया जा चुका है । ऐसे नाम अनपढ या कम पढे-लिखे निम्न श्रेणी के लोगो मे विशेष रूप से मिलते है । कुछ नाम है · खदेरन, दखेरू, पवारू, घुरफेकन, फेकू, लुटई, वदलू, घसीट्टू, घसीटेलाल, खचेड्डू, छेदी, कनछेदी, छिद्दन, नत्थू, नथुनी, जोखू, तुल्लू, फेरू, लौट्टू, विक्कू, विकाऊ, वेचन, वेचई, वेचू, सौट्टू, मोलू, विसाऊ, मागू, मगतू, घुरहू, अलियार ।

ये सारे के सारे मूलत· अधविश्वास पर आधारित है । एक सबसे वडा अधविश्वास तो यह है कि जैसे अच्छी चीज सवको पसन्द आती है, वैसे ही अच्छा नाम रखने से वह सवको पसन्द आएगा, अत नाम पर नजर लग कर उस पर भी लग जाएगी, और दूसरे वह भगवान को भी पसन्द आ जाएगा, अर्थात् मर जाएगा । इस कारण वहुत से अनपढ भारतीय अच्छे नामो की तुलना मे वुरे नामो को पसन्द करते रहे है ।

उपर्युक्त नाम मूलत इस अधविश्वास पर आधारित है कि वच्चे को यदि पैदा होते ही घर से निकाल (खदेरन, खदेडू) या वाहर फेक (पवारू, फेकू) दे, घूरे पर फेक दे (घुरफेकन), लुटा या किसी और के वच्चे से वदल दे (लुटई, फेरू, वदलू) जमीन पर घसीट दे (घसीट्टू, घसीटेलाल, खचेड्डू=जो खीचा गया हो), कान या नाक या दोनो छेद दे (छेदी, कनछेदी, नकछेदी, नत्थू=जो नाथ दिया गया हो, नथुनी=नथ), पैदा होते ही तराजू पर तौल या वेच दे (जोखू, तुल्लू, वेचऊ, सौट्टू, मोलू, विकाऊ, विक्कू) या वदल दे (वदलू) तो वह दीर्घायु होता है । वहुत से लोग, जिनके वच्चे वार-वार मर जाते है, ऐसा करते रहे है, और इसी आधार पर ऐसे नाम रखते रहे है । वाद मे परपरा चल जाने पर ऐसी कोई क्रिया न करने पर भी लोग ऐसे नाम रखने लगे होगे । अव शिक्षा के प्रचार के साथ ऐसे नाम कम होते जा रहे है, और शायद शीघ्र ही वह समय आएगा जव ये इतिहास की चीज वन जाएँगे ।

पुराकालीन नामो का अध्ययन अपार सभावनाओ से भरा है । रामायण और महाभारत के वारे मे परपरागत विश्वास यह है कि ये सारी-की-सारी घटनाए ऐतिहासिक हैं और इन दोनो काव्यो के सभी पात्र ऐतिहासिक है । किन्तु इनके नामो के अध्ययन से विचित्र संकेत मिलता है । कौरवो के नाम दुर्योधन, दु शासन, दुस्सह आदि है । कौन वाप अपने लडके के ये नाम रखेगा ?

इसी प्रकार रामायण में रावण पक्ष के नाम कुंभकरण, मेघनाद, शूर्पणखा आदि भी यही बात कह रहे हैं। तो क्या ये कल्पित हैं?

महाभारत में कुछ पात्रों के नामों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है जिससे बड़े आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं। यहाँ विस्तार से इस प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता। किन्तु निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि पाँचों पांडव वस्तुतः सगे भाई नहीं थे। अर्जुन जाति के प्रतीक अर्जुन, वृक जाति के प्रतीक भीम, यौधेय जाति के प्रतीक युधिष्ठिर तथा मद्र जाति के प्रतीक नकुल और सहदेव थे। इन चारों जातियों ने मिलकर कुरु और भरत जातियों के मिश्रण कौरवों से युद्ध किया था (विस्तार के लिए देखिए 'महाभारत : एक ऐतिहासिक अध्ययन'—बुद्ध प्रकाश, इलाहाबाद, १९५९)।

यह कम लोगों को ज्ञात है कि विनोबा भावे का वास्तविक नाम विनायक भावे है। वे जब पहले पहल गाँधी जी के आश्रम में गए तो वहाँ पहले से एक पजोबा नाम के सज्जन रहा करते थे। गाँधी जी ने पजोबा के सादृश्य पर इन को विनोबा कहना प्रारम्भ किया और 'विनायक भावे' विनोबाभावे बन गए।

अब तक हम लोग व्यक्तियों के नामों पर विचार कर रहे थे। स्थान नामों का अध्ययन भी कम उपयोगी और मनोरंजक नहीं है। नीचे कुछ नामों पर संक्षिप्त में विचार किया जा रहा है।

बिहार प्रांत का नाम वहाँ पर बौद्ध विहारों के आधिक्य के कारण पड़ा है। अंडमान द्वीप का पुराना नाम अगमान (अग, वग का उल्लेख मिलता है) माना जाता रहा है। अब लोगों का विचार है यह नाम 'हनुमान' का विकसित रूप है। संभव है पहले वहाँ 'वानर' जाति के लोग रहते हों। उल्लेख्य है कि राम के साथ सेना बन्दरों की नहीं थी यह 'वानर' नामक आदिवासियों की थी। बन्दर की पूजा के कारण या कुछ-कुछ बन्दर सा होने के कारण उन्हें कदाचित यह नाम दिया गया था। मध्य एशिया स्थित 'बुखारा' नगर का नामकरण वहाँ प्राचीन काल में बौद्ध विहारों के बाहुल्य के कारण पड़ा है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि बौद्ध धर्म किसी समय में वहाँ तक फैला था। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को अपनी बुखारा यात्रा में वहाँ काफी भग्नावशेष देखने को मिले जो भारतीय सम्पर्क के प्रमाण थे। एक प्राचीन खंडहर पर स्वस्तिक का चिह्न भी मिला।

आसाम में मिट्टी के तेल का प्रसिद्ध केन्द्र है डिगबोई। इस नाम का मूल बड़ा अजीब है। कहा जाता है कि असम रेलवेज एंड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड

को डिब्रूगढ से आगे रेलवे लाइन बनाते समय उधर मिट्टी का तेल होने का संकेत मिला। तेल के लिए खुदाई एक अंग्रेज की देख-रेख मे शुरू हुई। खोदने वाले मजदूरो से वह अंग्रेज 'डिग ब्वाय' डिग ब्याय' (खोदते जाओ, खोदते जाओ) कहता था। यह 'डिगब्वाय' मज़ाक-मज़ाक मे वहाँ के मजदूरों की जबान पर चढ गया और वह स्थान डिगब्वाय के आधार पर 'डिगबोई' कहलाने लगा।

प्राचीन काल मे नगर, ग्राम, मुहल्ले आदि के नामों के साथ ग्राम, पल्ली, क्षेत्र, प्रस्थ, स्थल, हट्ट, पुर, नगर, पट्टन, मंडप, चत्वर, चतुष्क आदि का प्रयोग होता था। मुस्लिम काल मे कटरा, बाजार, बाड़ा, कूचा, गली, बाग़, बस्ती, दरवाजा, मोहल्ला, दरीबा, गंज आदि प्रयोग शुरू हुए। अंग्रेजों के समय मे रोड, गार्डन, मार्केट, सिटी, गेट आदि जोड़े जाने लगे। इस श्रेणी के कुछ नाम बडे दिलचस्प है। मुसलमानो के काल मे भारत मे 'गुलामो' की बिक्री होने लगी थी। घोड़े का प्रचार भी बहुत अधिक बढ गया था, जिस का परिणाम यह हुआ कि हर अच्छे नगर मे घोड़ो और गुलामों के बाजार लगा करते थे। अरबी भाषा मे एक शब्द है 'नख्खास' जिसका अर्थ होता है जानवर या गुलाम बेचने वाला। भारतीय नगरो मे वे स्थान जहाँ गुलाम और घोड़े बेचे जाते थे इसी आधार पर नख्खास कहलाए। आज भी गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, फरूखाबाद आदि अनेक नगरो मे नख्खास, नख्खास कोना या नख्खास मुहल्ला नाम के स्थान है। यों अब लोग भूल चुके हैं इनका अर्थ, किन्तु इनका विश्लेषण स्पष्ट करता है कि ये स्थान कभी गुलामो और घोडो आदि के विक्रय-स्थल थे।

इसी प्रसग मे दिल्ली के मुहल्ले 'मोरी गेट' का नाम लिया जा सकता है। यह मुहल्ला मुसलमानी काल का है, और उस समय इसका नाम 'मोरी दरवाजा' था। 'मोरी' तुर्की भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'घोड़ा'। इस शब्द के अर्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि तुर्कों के जमाने मे इस स्थान पर घोड़े बिका करते थे। इसी प्रकार दिल्ली के 'उर्दू बाजार' को सामान्यत: लोग 'उर्दू का बाजार' समझते हैं। वस्तुत उर्दू का मतलब है 'फौजी शिविर'। उर्दू बाजार मूलत· सैनिको के लिए बाजार होने के कारण इस नाम से अभिहित हुआ था।

यहाँ तक हमने स्थान नामो पर कुछ फुटकल रूप से विचार किया। स्थान नामो का पूरा और विस्तृत अध्ययन विस्तार मे भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर गाजीपुर के नाम का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

इसी प्रकार रामायण में रावण पक्ष के नाम कुंभकर्ण, मेघनाद, शूर्पणखा आदि भी यही बात कह रहे हैं। तो क्या ये कल्पित हैं?

महाभारत के कुछ पात्रों के नामों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है जिससे बड़े आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं। यहाँ विस्तार से इस प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता। किन्तु निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि पाँचों पांडव वस्तुतः सगे भाई नहीं थे। अर्जुन जाति के प्रतीक अर्जुन, वृक जाति के प्रतीक भीम, यौधेय जाति के प्रतीक युधिष्ठिर तथा मद्र जाति के प्रतीक नकुल और सहदेव थे। इन चारों जातियों ने मिलकर पुरु और भरत जातियों के मिश्रण कौरवों से युद्ध किया था (विस्तार के लिए देखिए 'महाभारत : एक ऐतिहासिक अध्ययन'—बुद्ध प्रकाश, इलाहाबाद, १९५९)।

यह कम लोगों को ज्ञात है कि 'विनोबा भावे' का वास्तविक नाम विनायक भावे है। वे जब पहले पहले गांधी जी के आश्रम में गए तो वहाँ पहले से एक पजोबा नाम के सज्जन रहा करते थे। गांधी जी ने पजोबा के सादृश्य पर इन को विनोबा कहना प्रारंभ किया और 'विनायक भावे' 'विनोबाभावे' बन गए।

अब तक हम लोग व्यक्तियों के नामों पर विचार कर रहे थे। स्थान नामों का अध्ययन भी कम उपयोगी और मनोरंजक नहीं है। नीचे कुछ नामों पर संक्षिप्त में विचार किया जा रहा है।

'बिहार' प्रांत का नाम यहाँ पर बौद्ध विहारों के आधिक्य के कारण पड़ा है। अंडमान द्वीप का पुराना नाम अगमान (अंग, अग का उल्लेख मिलता है) माना जाता रहा है। अब लोगों का विचार है यह नाम 'हनुमान' का विकसित रूप है। संभव है पहले यहाँ 'वानर' जाति के लोग रहते हों। उल्लेख्य है कि राम के साथ सेना बंदरों की नहीं थी वह 'वानर' नामक आदिवासियों की थी। बंदर की पूजा के कारण या कुछ-कुछ बन्दर सा होने के कारण उन्हें कदाचित् यह नाम दिया गया था। मध्य एशिया स्थित 'बुखारा' नगर का नामकरण वहाँ प्राचीन काल में बौद्ध विहारों के बाहुल्य के कारण पड़ा है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली भाँति परिचित हैं कि बौद्ध धर्म किसी समय में वहाँ तक फैला था। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को अपनी बुखारा-यात्रा में वहाँ बौद्ध भग्नावशेष देखने को मिले जो भारतीय सम्पर्क के प्रमाण थे। एक प्राचीन खंडहर पर स्वस्तिक का चिह्न भी मिला।

आसाम में मिट्टी के तेल का प्रसिद्ध केंद्र है डिगबोई। इस नाम का मूल बड़ा मजीब है। कहा जाता है कि असम रेलवेज एंड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड

को डिब्रूगढ से आगे रेलवे लाइन बनाते समय उधर मिट्टी का तेल होने का संकेत मिला। तेल के लिए खुदाई एक अंग्रेज की देख-रेख मे शुरू हुई। खोदने वाले मजदूरों से वह अंग्रेज 'डिग ब्वाय' डिग ब्याय' (खोदते जाओ, खोदते जाओ) कहता था। यह 'डिगब्वाय' मज़ाक-मजाक मे वहाँ के मजदूरों की जबान पर चढ गया और वह स्थान डिगब्वाय के आधार पर 'डिगबोई' कहलाने लगा।

प्राचीन काल मे नगर, ग्राम, मुहल्ले आदि के नामों के साथ ग्राम, पल्ली, क्षेत्र, प्रस्थ, स्थल, हट्ट, पुर, नगर, पट्टन, मंडप, चत्वर, चतुष्क आदि का प्रयोग होता था। मुस्लिम काल मे कटरा, बाजार, बाड़ा, कूचा, गली, बाग, बस्ती, दरवाजा, मोहल्ला, दरीबा, गज आदि प्रयोग शुरू हुए। अंग्रेजों के समय मे रोड, गार्डन, मार्केट, सिटी, गेट आदि जोड़े जाने लगे। इस श्रेणी के कुछ नाम बडे दिलचस्प है। मुसलमानो के काल मे भारत मे 'गुलामो' की बिक्री होने लगी थी। घोडे का प्रचार भी बहुत अधिक बढ गया था, जिस का परिणाम यह हुआ कि हर अच्छे नगर मे घोडो और गुलामो के बाजार लगा करते थे। अरबी भाषा मे एक शब्द है 'नख़्ख़ास' जिसका अर्थ होता है जानवर या गुलाम बेचने वाला। भारतीय नगरो मे वे स्थान जहाँ गुलाम और घोड़े बेचे जाते थे इसी आधार पर नख़्ख़ास कहलाए। आज भी गाजीपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, फरूखाबाद आदि अनेक नगरो मे नख़्ख़ास, नख़्ख़ास कोना या नख़्ख़ास मुहल्ला नाम के स्थान है। यो अब लोग भूल चुके है इनका अर्थ, किन्तु इनका विश्लेषण स्पष्ट करता है कि ये स्थान कभी गुलामो और घोड़ो आदि के विक्रय-स्थल थे।

इसी प्रसग मे दिल्ली के मुहल्ले 'मोरी गेट' का नाम लिया जा सकता है। यह मुहल्ला मुसलमानी काल का है, और उस समय इसका नाम 'मोरी दरवाजा' था। 'मोरी' तुर्की भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'घोड़ा'। इस शब्द के अर्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि तुर्कों के जमाने मे इस स्थान पर घोडे बिका करते थे। इसी प्रकार दिल्ली के 'उर्दू बाजार' को सामान्यत: लोग 'उर्दू का बाजार' समझते है। वस्तुत उर्दू का मतलब है 'फौजी शिविर'। उर्दू बाजार मूलत सैनिको के लिए बाजार होने के कारण इस नाम से अभिहित हुआ था।

यहाँ तक हमने स्थान नामो पर कुछ फुटकल रूप से विचार किया। स्थान नामो का पूरा और विस्तृत अध्ययन विस्तार से भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर गाजीपुर के नाम का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'गाजीपुर' या इससे मिलते जुलते नाम से गाजीपुर नगर का कोई पुराना उल्लेख हमें नहीं मिलता। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान पटना से बनारस इधर से ही गया होगा किन्तु उसने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। फाह्यान के प्रायः २०० वर्ष बाद ह्वेनसांग यहाँ गया था। उसके अनुसार इस प्रदेश का नाम 'चेन चू' था। कहने की आवश्यकता नहीं कि चीनी भाषा में व्यक्तिवाचक नामों का भी अनुवाद कर लिया जाता है। 'चेन चू' का शाब्दिक अर्थ 'युद्ध के स्वामी या राज्य' होता है। इस आधार पर लोगों का अनुमान है कि उस समय इसका नाम सम्भावित 'युद्धपतिपुर' था। कनिंघम ने 'चेन चू' के आधार पर उस स्थान का नाम 'गजपतिपुर' या 'गजपुर' होने का अनुमान लगाया है और 'गाजीपुर' इस विचार से गजपतिपुर या गजपुर का बिगड़ा रूप है। फ्लीट ने भी इस मत का समर्थन किया है। किन्तु परवर्ती विद्वानों ने प्रायः इसे अशुद्ध माना है। नन्दलाल डे ने भी अपने भौगोलिक कोष में इसे अशुद्ध कहा है। डा० होई भी इसी मत के हैं। नेविल के मतानुसार ह्वेनसांग का 'चेन चू' गाजीपुर जिले का 'उधरनपुर' है जिसका उस समय अनुमानित नाम 'युद्धरनपुर' रहा होगा। आज का 'उधरनपुर' 'युद्धरनपुर' का ही बिगड़ा या विकसित रूप है।

गाजीपुर के नाम के सम्बन्ध में दूसरा अनुमान यहाँ के एक बड़े टीले या कोट से लगाया जाता है। गाजीपुर नगर से बिलकुल लगा एक बहुत ऊँचा टीला है जिसे लोग राजा गाधि का टीला कहते हैं। इस अनुमान पर लोगों का कहना है कि महर्षि विश्वामित्र के पिता राजा गाधि का यहाँ किला था और उन्हीं के नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम 'गाधिपुर' था। इस आधार पर 'गाजीपुर' 'गाधिपुर' का ही विकसित रूप ठहरता है। एक 'गाधिपुर' नाम का उल्लेख पुराणों में है किन्तु वह कदाचित् कन्नौज के पास था। कुछ लोगों के अनुसार कन्नौज का ही पुराना नाम 'गाधिपुर' था।

'गाजीपुर' नाम के सम्बन्ध में एक और जनश्रुति भी है। कहा जाता है कि मांधाता नाम के राजा एक बार जगन्नाथपुरी जा रहे थे। रास्ते में गाजीपुर जिले के कठोत गाँव के एक तालाब में स्नान करने से उनकी इच्छा पूरी हो गई। इसके फलस्वरूप मांधाता वहीं रुक गए और एक किला बनाकर रहने लगे। उनके परिवार में किसी ने एक मुसलमान की लड़की पकड़ ली और फलस्वरूप उसकी विधवा माँ ने उस समय के मुसलमान बादशाह के यहाँ प्रार्थना पत्र दिया और राजा के यहाँ से चालीस गाजियों का एक समूह आया और राजा को मार डाला। गाजियों के इस समुदाय के नेता सईद मसऊद ने यहाँ के

ागी हिन्दुओ को बुरी तरह पीसा, जिसके फलस्वरूप उसे मलिक-उस-मदत-ाजी की पदवी मिली। उसने इस 'गाजी' उपाधि के उपलक्ष्य मे ही 'गाजीपुर' ा शहर बसाया।

यह जनश्रुति कुछ साधार मालूम होती है। 'गाजीपुर' नाम निश्चित ही केसी मुसलमान का बसाया या कम-से-कम उसके नाम पर रखा ज्ञात होता है। गाजी' शब्द किसी पुराने सस्कृत शब्द का (जैसे गाधि का) विगड़ा रूप नही ो सकता। विगडे रूप मे 'ग' और 'ज' जैसी विदेशी ध्वनि आने की प्रवृत्ति ााय नही मिलती। यहाँ एक और वात की ओर भी ध्यान जाता है। ह्वेनसाग े अनुसार इसका नाम 'चेन चू' था जिसका अर्थ 'लडाई के स्वामी का प्रदेश' ा 'लडाई करने वाले का प्रदेश' है। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है 'गाजी' ा भी शाब्दिक अर्थ यही है। 'गाजी' शब्द अरवी का है। इसका सम्बन्ध रवी शब्द 'गज्युन' से है जिसका अर्थ 'लडना' होता है। अरव मे इसी आधार र बडे धर्मयुद्धो को 'गजवा' तथा छोटे को 'सरिया' कहते थे। इसका अर्थ ो यह होता है कि ह्वेनसाग के समय मे भी इसका नाम 'गाजीपुर' ही था। र यह सभव नही लगता। उसका समय ५वी सदी है और इस प्रकार की टना घटने का समय एक हजार ईसवी के पूर्व। अत यह अर्थैक्य आकस्मिक हो सकता है।

यो एक सभावना यह भी हो सकती है कि इसका पुराना नाम भी इसी प्रकार का कुछ रहा हो, और मुसलमानी काल मे यह नया नाम दे दिया गया हो या उसी का मुसलमानीकरण कर दिया गया हो। आश्चर्य है कि इसे गाजियावाद (गाजी आवाद) नही कहा। वस्तुत. मुसलमानी काल मे मिश्रित नाम भी काफी रखे गए थे—वादशाहपुर, वेगमपुर, सुलतानपुर।

नामो के अध्ययन से तरह-तरह की सूचनाए मिलती है। 'वृन्दावन' कहता है कि कभी वहाँ जगल था। व्रज का महावन स्थान भी अपने वारे मे यही सकेत करता है, यद्यपि अव वहाॅ वन विल्कुल नही हैं। 'मिर्जापुर' स्पष्ट ही मुसलमानी शासनकाल का नाम है। इधर भारतीय सस्कृति के वहुत से तथाकथित प्रेमी उसे 'मीरजापुर' कहने और लिखने लगे है। उनका कहना है कि 'मीर' का अर्थ है 'समुद्र' और 'जा' का अर्थ 'उत्पन्न'। अर्थात् यह 'मिर्जा' नही है, अपितु 'मीरजा' अर्थात् 'लक्ष्मी' है और इस तरह 'मीरजापुर' का अर्थ है 'लक्ष्मीपुर'। कहना न होगा कि यह शब्द इन प्रयोक्ताओ के मनोविज्ञान का अच्छा उद्घाटन कर रहा है। 'वनारस' का 'वाराणसी' या 'अलक्जेडर' का 'अलक्षेन्द्र' कर देने वालो का मनोविज्ञान भी इससे वहुत भिन्न नही है।

वाराणसी नाम स्पष्ट कहता है कि मूलत यह नगर गंगा के असी घाट तथा वरुणा के बीच में स्थित था।

अन्त म दो शब्दों की कहानी देकर हम यह प्रकरण समाप्त करेंगे।

सिनहा

हिन्दी का एक बहुत प्रचलित शब्द है 'सिनहा' जिसे कुछ कायस्थ अपने नामों के साथ लगाते हैं। मूलत यह शब्द संस्कृत भाषा का हिंस शब्द है जिसका सम्बन्ध हिंस धातु से और जिसका अर्थ है 'खूंखार' या 'हिंसा करने वाला'। आगे चलकर वर्णविपर्यय से यही शब्द सिंह' बन गया (र का लोप) जो शेर का संस्कृत पर्याय है। सिंह अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध है अत प्रारंभ म क्षत्रियो न प्रतीक स्वरूप इसका प्रयोग अपने नामों के साथ प्रारम्भ किया और धीरे धीरे यह क्षत्रियो या राजाओं के नाम के साथ प्रयुक्त होने लगा। साहित्य म प्राप्त इसका प्राचीनतम प्रयोग अमरसिंह के अमरकोश म "शाक्यसिंह रूप म मिलता है जिसका अर्थ यह हुआ कि पहली ईसवी के आस पास यह प्रयोग म आ चुका था। आगे चलकर यह केवल क्षत्रियों तक सीमित नहीं रहा कोई भी राजा, जाट, गूजर, अहीर आदि तथा जो भी अपने को वीर समझने वाले इसका प्रयोग करने लगे। राजस्थान के बहुत स ब्राह्मण अपने नाम के साथ सिंह लगाते हैं। अपने इसी प्रकार से यह कायस्थों के नामों के साथ भी प्रयुक्त होने लगा। अंग्रेजी भाषा के प्रचार के बाद कुछ सिंह लोगों न अपन 'सिंह' की वर्तनी अंग्रेजी में SINHA की जिसे इस शब्द से अपरिचित अंग्रेजों और अन्य लोगों न सिनहा पढ़ा। प्रारम्भ मे ऐसा कदाचित अंग्रेजों से कायस्थो के नाम के साथ हुआ अत वे ही 'सिनहा कहलाए। आश्चर्य है कि 'हिंस शब्द की यात्रा की परिसमाप्ति 'सिनहा मे हुई है।

हिन्दी

हिन्दी', हिन्दू, हिन्दुस्तान' मूलत हिन्दु शब्द से सम्बन्धित हैं। प्रश्न यह है कि इस 'हिन्दु' का मूल क्या है?

हमारे परम्परावादी संस्कृत पण्डित मूल शब्द हिन्दु' मानते हैं। इसकी व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी जाती है। कुछ लोग 'हिन्' (=नष्ट करना)+'दु (=दुष्ट) से हिन्दु मानते हैं। अर्थात 'हिन्दु का अर्थ है 'दुष्टो का विनाश करने वाला (हिनस्ति दुष्टान्)। "शब्दकल्पद्रुम' (खण्ड ५, १९६१) म 'हीन +दुष+डु से हिन्दु सिद्ध किया गया है। इस दृष्टि से 'हिन्दु का अर्थ हुआ 'हीनों या ओछों को दूषित करने वाला हीनं दूषयति)। 'मेरुतन्त्र' के २३वें प्रकाश म शङ्कर पार्वती से कहते हैं —

हिन्दुधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः ।
हीनञ्च दूषयत्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ।।

अर्थात् 'हीनो को दूषित करने वाला' 'हिन्दु' है। यहाँ 'हीन' का अर्थ कुछ लोग 'म्लेच्छ' आदि विदेशी मानते है। 'मेरुतत्र' को प्राय. परम्परावादी पण्डित प्राचीन ग्रन्थ समझते है, किन्तु वास्तविक स्थिति यह नही है। इसमे 'फिरंगी' शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे स्पष्ट है कि यह बहुत बाद का ग्रन्थ है और यूरोपीयो के भारत मे आने पर लिखा गया है।

'हिन्दु' की एक तीसरी व्युत्पत्ति 'हीन+दु' [हीनो (म्लेच्छो) का दलन या दण्डित करने वाला] से भी मानी गई है। 'हिन्दु' की एक चौथी व्युत्पत्ति है—'यो हिंसाया दूयते, स हिन्दू' अर्थात् हिंसा को देखकर जो दुखी होते है, वे हिन्दू हैं।

वस्तुतः उपर्युक्त तीनो व्युत्पत्तियाँ कल्पनाप्रसूत है। 'हिन्दु' शब्द 'ह' के साथ सस्कृत शब्द नही है। उल्लेख्य है कि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ मे इसका प्रयोग नही हुआ है। मुझे इसका प्राचीनतम प्रयोग सातवी सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथ चूर्णि' मे मिला है।

आधुनिक विद्वानो द्वारा स्वीकृत एव प्राय सर्वमान्य मत यह है कि 'हिन्दु' शब्द फारसी भाषा का है। यो फारसी का यह अपना शब्द नही है अपितु सस्कृत शब्द सिंधु का फारसी रूपान्तरण है। प्रश्न उठता है कि 'सिन्धु' की व्युत्पत्ति क्या है ? सस्कृत के अधिकाश वैयाकरण इसका सम्बन्ध 'स्यन्द' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है पसीजना, द्रवना, स्रवित होना। इसी मे, 'य्' के सम्प्रसारण, 'दस्य ध', तथा 'उद्' प्रत्यय के योग से 'सिन्धु' शब्द बना है, जिसका अर्थ नदी-विशेष, तथा समुद्र आदि है। हाथी के गण्ड-स्थल से मद बहने के कारण उसे भी 'सिन्धु' या 'सिन्धुर' आदि कहा गया है। इस प्रकार इसका मूल अर्थ 'बहना' है।

'सिन्धु' की एक दूसरी व्युत्पत्ति सस्कृत की 'इन्द्' धातु से मानी गई है। 'इन्द्' का अर्थ होता है 'ऐश्वर्य होना'। सस्कृत का 'इन्द्र' शब्द भी इसी से सम्बद्ध है। ग्रासमान, रॉथ आदि विद्वान 'इन्द्' को मूलत 'इध्' या 'इन्ध्' मानते है, यद्यपि बेनफे तथा कुछ और विद्वान् 'इन्द्र' को भी मूलत. 'स्यन्द्' से ही निष्पन्न मानते है। 'इन्द्' या 'स्यन्द्' से ही स्लाव शब्द 'जेद्रु', स० 'इन्द्र' अवेस्ता 'जोन्दाह' (जिन्दा,जिन्दगी) आदि सम्बन्धित है। 'सिन्धु' शब्द को 'इन्द्' या 'इन्ध्' से सम्बद्ध माननेवाले उस नदी मे ऐश्वर्य या उसकी जीवन-शक्ति पर बल देते हैं। मोनियर विलियम्स 'सिन्धु' शब्द को 'सिध्' (=जाना) धातु से निकला होने का अनुमान लगाते है।

प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक उपर्युक्त मतों से सहमत नहीं है। ये सब पुरानी धातुएँ तो ठीक हैं, किन्तु मेरी निजी राय यह है कि इस नदी विशेष का 'सिन्धु' नाम, मूलतः संस्कृत का शब्द नहीं है। जब आर्य भारत में आये उस समय पश्चिमोत्तर भारत में आर्येतर लोग रहते थे, और ये लोग पर्याप्त सुसंस्कृत थे। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि सिन्धु नदी का कोई नाम इन आर्येतर लोगों द्वारा प्रयुक्त होता रहा होगा। प्रायः ऐसा होता भी नहीं कि कोई विदेशी जाति किसी देश में आये और वहाँ के सारे के सारे नामों को बदल डाले, विशेषतः ऐसी स्थिति में जब कि वहाँ के रहने वाले असभ्य न होकर सुसंस्कृत हों। हाँ, नवागन्तुक छोटी नदियों या छोटे पहाड़ों आदि के नाम तो रख या बदल सकते या लेते हैं, जिनको अधिक लोग नहीं जानते, किन्तु पश्चिमोत्तर भारत की सबसे बड़ी नदी के सम्बन्ध में, जिसकी घाटी में इतनी बड़ी संस्कृति थी, उनको ऐसा करना पड़ा हो या उन्होंने ऐसा किया हो, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं दीखता। ऐसी स्थिति में कम-से-कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह शब्द मूलतः द्रविड़ भाषा का है। यों यह भी असम्भव नहीं कि द्रविड़ लोग जब भारत में आये हों तो उन्हें भी यह नाम आस्ट्रिक आदि किसी अन्य पुरानी जाति से मिला हो। साथ ही, यह भी सम्भव है कि आर्यों के आने के समय इस नदी का जो नाम प्रचलित रहा हो आर्यों ने 'सिन्धु' रूप में उसका संस्कृत रूप बना लिया हो। क्योंकि शब्दों के संस्कृतीकरण की परम्परा आर्यों में प्राचीनकाल से मिलती है। उन्होंने अनेक देशी विदेशी नामों ('एलेग्ज़ाण्डर' के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'अलकसंद' आया है) एवं शब्दों के साथ ऐसा किया है। 'सिड', 'सिद', 'सित' या 'चिन्द' आदि रूपों में, द्रविड़ परिवार की कई भाषाओं एवं बोलियों में एक अत्यन्त प्राचीन धातु मिलती है, जिसका प्रयोग छिड़कने, सींचने या बहने आदि के लिए होता है। मेरा अनुमान है कि द्रविड़ों को यह शब्द यदि किसी पुरानी जाति से नहीं मिला था, तो इसी धातु के आधार पर प्राचीन द्रविड़ों ने इस बड़ी नदी (सिन्धु) को 'सिद' या 'सित' नाम दिया। यह नाम इसमें बहते हुए बहुत अधिक पानी के कारण भी हो सकता है या इस कारण भी हो सकता है कि इनकी सभ्यता का उस काल में मूल केन्द्र (सिन्धु की घाटी) जो था इसी से सींची जाने वाली भूमि पर बसा था। नदी ही नहीं मेरे विचार से तो नदी के आधार पर आसपास के प्रदेश का भी तात्कालिक नाम कदाचित् 'सिन्द' या 'सित' ही था। सन् १९२८-२९ में पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त कुछ अभिलेखों से यह पता चलता है कि हड़प्पा मोहनजोदड़ो के लोगों के स्थान का नाम उस काल में 'सिन्द' या 'सित था'। इससे मेरे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत

में इस नदी या प्रदेश के लिए 'सिन्धु' शब्द वस्तुत संस्कृत शब्द न होकर प्राचीन द्रविड शब्द 'सिद्' या सित्' का ही संस्कृतीकृत रूप है, जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है। ज्ञान की वर्तमान परिधि मे 'सिन्धु' शब्द को और पीछे तक ले जाना सम्भव नही। किन्तु यह असम्भव नही कि भविष्य मे और प्रमाणो के मिलने पर इसे आस्ट्रिक या और किसी प्राचीन भाषा का शब्द सिद्ध किया जा सके।

द्रविड 'सिद्' या 'सित्' के आधार पर संस्कृतीकरण के द्वारा बने इस 'सिन्धु' शब्द का भारतीय साहित्य मे प्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' मे मिलता है। 'ऋग्वेद' मे इसका प्रयोग सामान्य रूप से नदी (भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने १. १४३. ३. आदि), नदी विशेष (१० ७५) तथा कदाचित् नदी के आस-पास के प्रदेश (२. ८. ९६) के लिए हुआ है। यो जल-देवता आदि अन्य अर्थं भी है जो मूल अर्थ से वहुत दूर नही है। प्रदेश विशेष के अर्थ मे बाद मे यह 'महाभारत' तथा परवर्ती काव्य-ग्रन्थो मे भी आता है। 'ऋग्वेद' मे 'सप्तसिन्धव' (सात नदियाँ) तथा 'सप्तसिन्धुषु' आदि अन्य ग्रन्थो मे भी यह मिलता है।

आर्यों के भारत-आगमन के पूर्व भी भारत से ईरान का सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है, जैसा कि ज्योतिष, पौराणिक कथाओ तथा अन्य क्षेत्रो मे आपसी प्रभावो से स्पष्ट होता है। आर्यो के भारत-आगमन के बाद यह सम्पर्क सगोत्रीय होने के कारण कदाचित् और अधिक बढ गया। ५०० ई०पू० के आस-पास दारा प्रथम के काल मे सिन्धु नदी के आसपास का प्रदेश ईरानी लोगो के हाथ मे था। इन्ही सम्पर्को के साथ भारत से ईरान तथा ईरान से भारत मे याजक आया-जाया करते थे। शकद्वीप के मग ब्राह्मण (जो भारत मे शाकलद्वीपी ब्राह्मण कहलाए) फारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आकर यहाँ बसे। कदाचित् याजको के साथ हमारे 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव' आदि शब्द भी ईरान पहुंचे। हमारी प्राचीन 'स' ध्वनि ईरान की अवेस्ता आदि मे 'ह' उच्चारित होती रही है, जैसे स० 'सप्त', अवेस्ता 'हफ्त', स० 'असुर', अवेस्ता 'अहुर' आदि। इसी कारण ये 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धव' आदि शब्द अवेस्ता मे 'हिन्दु' (अवेस्ता मे महाप्राण ध्वनियाँ नही होती अत 'ध' का 'द' हो गया है) और 'हफ्तहिन्दव' आदि रूप मे मिलते है। प्राचीन ईरानी साहित्य मे 'हिन्दु' शब्द नदी के अर्थ मे तो प्रयुक्त हुआ है, साथ ही सिन्धु नदी के पास के प्रदेश के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ है। उस समय ईरान वालो के पास भारत की भूमि के लिए केवल यही एक शब्द था, अत धीरे-धीरे ईरानी, भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गए, उसे वे इसी नाम से अभिहित करते गये। इस प्रकार

किसी अन्य शब्द के अभाव में इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया और 'सिन्धु नदी के पास की भूमि का वाचक' शब्द धीरे धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। ईरानी सम्राट दारा (प्राचीन रूप दारयवहु सं० धारयद्वसु) के अभिलेखों में 'भारत' के लिए 'हिन्दु' आया है। सूसा के राजमहल के अभिलेख में आता है पिरुसहाय इस मत हचा कुश उता हिन्दौव उता हचा हरउतिया अबरिय, अर्थात् राजमहल के हाथी दाँत जिस पर यहाँ काम किया गया, कुश (सम्भवत अबीसीनिया) हिन्दु (भारत) और हरहुती (सं० सारस्वती, कदाचित सीमा प्रांत) से लाया गया। अवेस्ता ग्रन्थ वेंदीदाद (१ १८) में हप्त हिंदु (सप्त सिन्धु) को सोलह पवित्र स्थानों में एक माना गया है। यस्न' (५७ २९) में भी 'हिन्दू' शब्द भारत के लिए प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन ईरानी साहित्य में हिन्दुग' (यूनानी शब्द Indos यही है) हिन्दु, हिन्दुवम (सं० सिन्धुय=सिन्धुवासी) आदि अनेक अन्य प्रयोग भी मिलते हैं। हिन्दु' शब्द में धीरे धीरे अर्थ सम्बन्धी विकास ('सिंध प्रदेश' से बढ़कर' भारत) तो हुआ ही साथ ही इसमें ध्वनिक विकास भी हुआ और इसमें 'द' पर बलाघात होने के कारण अत्य उ' लुप्त हो गया और इस प्रकार यह शब्द 'हिन्दू' से हिंद हो गया। आगे चलकर हिंद शब्द में ईरानी के विशेषणार्थक प्रत्यय ईक' जुड़ने से 'हिन्दीक' शब्द बना जिसका अर्थ था हिन्द का। इसी हिन्दीक का विकास (क के लुप्त हो जाने के कारण) हिन्दी' रूप में हुआ। इस प्रकार हिन्दी का मूल अर्थ है हिंद का या 'भारतीय। इस अर्थ में हिन्दी' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन फारसी तथा अरबी आदि में अनेक स्थलों पर हुआ है। उदाहरणार्थ अरबी में तमर का अर्थ है 'खूजा खजूर'। इससे कुछ मिलते जुलते होने के कारण उन लोगों ने 'इमली को (जिसका परिचय उन्हें भारत से ही प्राप्त हुआ था) तमर हिन्दी' या 'तमर ए हिन्द' कहा। विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त हिन्दी शब्द सज्ञा रूप में भी बहुत-सी भाषाओं में प्रयुक्त होता रहा है उदाहरणार्थ फारसी तथा अरबी में हिन्दी शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार की तलवार के लिए (जो भारतीय इस्पात की बनी होती थी या भारत से जाती थी) तथा तलवार के वार के लिए भी होता रहा है। मिस्र में मलमल (जो भारत से जाती थी) के लिए हिन्दी शब्द चलता रहा है। भारतीयों के काला होने के कारण फारसी में हिन्द का अर्थ काला भी है। कभी भारतीयों से उनकी अनबन भी थी इसी कारण फारसी में हिन्दू' के अन्य अर्थ डाकू आदि भी हैं।

भाषा के लिए हिन्दी' शब्द के प्रयोग का इतिहास भी फारस और अरब से ही आरम्भ होता है। छठी सदी ईसवी के कुछ पूर्व में ही ईरान में 'जबान

ए-हिन्दी' का प्रयोग भारत की भाषाओ के लिए होता रहा है। इस दृष्टि से कुछ उदाहरण उल्लेख्य है · (१) ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ (५३१-५७६ ई०) ने अपने दरबार के प्रमुख विद्वान् हकीम बजरोया को 'पञ्चतन्त्र' का अनुवाद कर लाने के लिए भारत भेजा था। बजरोया ने यह काम पूरा किया। 'कर्कटक और दमनक' के आधार पर उसने इस अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा। इसकी भूमिका नौशेरवाँ के मन्त्री बुजर्च मिहर ने लिखी। भूमिका मे अन्य बातो के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि यह अनुवाद 'जबाने हिन्दी' से किया गया है। यहाँ स्पष्ट ही 'जबाने हिन्दी' का प्रयोग 'भारतीय भाषा' या 'सस्कृत' के लिए है। (२) इस पहलवी अनुवाद से इस पुस्तक के अरबी गद्य तथा पद्य मे कई नामों से कई अनुवाद हुए। ६वी सदी तक के प्राय सभी अनुवादो मे मूल पुस्तक को 'जबाने हिन्दी' का कहा गया है। उदाहरणार्थ ७०० ई० के आस-पास मे किए गए अब्दुल्ला इब्नुल मुकफ्फा के अनुवाद मे, इब्ने मकना के अनुवाद मे, तथा 'जाविदाने खिरद' नाम से ८१३ ई० मे इब्ने सुहैल द्वारा किये गए अनुवाद मे। (३) 'महाभारत' के भी कुछ भागो का रूपान्तर पहलवी भाषा मे ७वी सदी मे किया गया था। उसमे भी मूल भाषा को 'जबाने हिन्दी' कहा गया। (४) १२२७ ई० मे मिनहाजुस्सिराज भारत आया था। उसने अपनी पुस्तक 'तबकाते-नासिरी' मे लिखा है कि 'जबाने हिन्दी' मे 'विहार' का अर्थ 'मदरसा' है। स्पष्ट ही यहाँ 'जबाने हिन्दी' का प्रयोग सस्कृत के लिए न होकर या तो सामान्य भारतीय भाषा के अर्थ मे है, या फिर भारत के 'मध्य भाग की भाषा' (कदाचित् 'हिन्दुवी' या 'हिन्दी') के लिए। (५) १३३३ ई० मे इब्ने बतूता अपने 'रेहला इब्ने बतूता' मे तारन नगर के सम्बन्ध मे लिखते हुए लिखता है—'किताबत अला बाज अलजदरात बिल हिन्दी' अर्थात् कुछ दीवारो पर हिन्दी मे लिखा था। भाषा के अर्थ मे स्वतन्त्रत 'हिन्दी' शब्द का विदेशो मे यह कदाचित प्राचीनतम प्रयोग है, यद्यपि यह नाम आज की हिन्दी के लिए न होकर सस्कृत के लिए है। (६) तैमूर लङ्ग के पोते के काल मे (१४२४ ई०) शरफुद्दीन यज्दी ने तैमूर और उसके परिवार के सम्बन्ध मे 'जफरनामा' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमे एक स्थान पर आता है कि 'राव' हिन्दी शब्द है। विदेशो मे 'हिन्दी भाषा' के लिए 'हिन्दी' शब्द का सम्भवत यह प्रथम प्रयोग है।

भारतवर्ष मे भी भाषा के अर्थ मे 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का प्रारम्भ मुसलमानो द्वारा ही किया गया। भारतीय परम्परा मे 'प्रचलित भाषा' के लिए प्राचीन काल से ही 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है। इसका प्रयोग क्रम से सस्कृत, प्राकृत तथा बाद मे हिन्दी आदि के लिए हुआ। यहाँ

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं— सो देस के बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका की है (१४३८ ई० में लिखित भास्वती की भाषा-टीका) 'संस्कृत कबिरा कूप जल भाषा बहता नीर' (कबीर) 'आदि अंत जसि कथा अहै लिखि भाषा चौपाई कहै' (जायसी) 'भाषा भनिति मोर मति थोरी' 'भाषा निबद्ध मति मंजुल' (तुलसीदास) 'भाषा बोल न जानहीं जिनके कुल के दास' (केशवदास)। संस्कृत आदि के ग्रंथों की हिन्दी टीकाओं में भाषा-टीका रूप में भी यह शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रामप्रसाद निरञ्जनी कृत 'भाषा योगवासिष्ठ' (१७४१ ई०) १६ फरवरी १८०२ को फोर्ट विलियम कालिज द्वारा 'भाखा मुन्शी' की माँग की स्वीकृति तथा लल्लू लाल को उक्त कालिज के कागज़ों में 'भाषा मुन्शी' कहे जाने से पता चलता है कि हिंदी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है। संस्कृत के टीका ग्रन्थों में तो यह अब भी चल रहा है। पुरानी पीढ़ी के पण्डित 'हिंदी टीका' न कहकर 'भाषा टीका' ही कहते हैं।

मुसलमान यहाँ आये तो यहाँ की भाषा को 'ज़बाने हिंदी' कहने लगे। उनका विशेष सम्बन्ध मध्यदेश से था, अतः धीरे धीरे मध्यदेशीय बोली के लिए उन्होंने 'ज़बान हिंदी' या 'हिंदी ज़बान' या 'हिंदी' नाम का प्रयोग किया। आरम्भ में इस नाम के अंतर्गत पंजाबी (कम से कम पूर्वी) भी कदाचित आती थी।

'हिंदी' नाम का भारत में प्रथम प्रयोग कब किसने किया, यह अभी तक अनुसंधान का विषय है। प्रायः यही कहा जाता है कि अमीर खुसरो की रचना में सबसे पहले 'हिंदी' शब्द हिंदी भाषा के लिए मिलता है। मैं समझता हूँ कि भाषा के अर्थ में खुसरो में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग संदिग्ध है। उन्होंने हिंदी शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों या भारतीय (इलियट ३ ८ ५३६) के लिए ही किया है। यहाँ बहुत विस्तार से इस विषय को लेना सम्भव नहीं है किंतु संक्षेप में कुछ बातें कही जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा तर्क तो यह दिया जाता है कि खुसरो लिखित 'खालिकबारी' में 'हिन्दी' शब्द कई बार आया है। वस्तुतः 'खालिकबारी' खुसरो की रचना नहीं है वह खुसरो के बहुत बाद के किसी 'खुसरो शाह' की रचना है। इसके लिए कई तर्क दिये जा सकते हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं। (क) अमीर खुसरो जैसे विद्वान की रचना यदि 'खालिकबारी' होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि 'खालिकबारी' बहुत ही अव्यवस्थित है। कभी फ़ारसी शब्दों के समानार्थी हिंदी शब्दादि दिये गए हैं तो कभी वाक्यों के समानार्थी वाक्य।

भाषा सीखने की दृष्टि से भी इन वाक्यो या शब्दो मे कोई एकरूपता नही है। जो शब्द लिये गये है, उनमे सब ऐसे नहीं है जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय। साथ ही, प्रारम्भिक ज्ञान के लिए बहुत से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द छूट भी गए हैं। जो वाक्य दिये गये है, वे भी तुक या छन्द बैठाने की दृष्टि से लिये गये ज्ञात होते हैं। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नही है। कारक, काल-रचना आदि की दृष्टि से भी वे महत्त्व नही रखते। (ख) छन्दो का बिना किसी योजना के परिवर्तन और कही-कही उनमे अप्रवाह या दोष भी 'खालिकबारी' को कविवर खुसरो की रचना मानने मे व्याघात उपस्थित करते है। (ग) बीच मे आता है—'तुर्की जानी ना'। तुर्की का विद्वान् खुसरो यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की नही आती, यह बात कल्पनातीत है। यो सभी शब्दो के लिए तुर्की शब्द दिये भी नही गये है। अत. ऐसा कथन बड़ा निरर्थक-सा लगता है। यह बात भी 'खालिकबारी' को अमीर खुसरो से सम्बद्ध करने मे अडचन डालती है। (घ) शब्दो की गलतियाँ भी है। हिन्दी 'काना' के लिए फारसी शब्द 'कोर' दिया गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है। 'तिदर्व' 'कुबक' और 'हस' को एक माना है, जबकि तीनो अलग-अलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुर्राज' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। 'खालिकबारी' से इस तरह की अशुद्धियो के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। ऐसी भद्दी गलतियाँ खुसरो नही कर सकते और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि 'खालिकबारी' का लेखक लगता है, गयासुद्दीन तुगलक अपने लड़को को हिन्दी पढाने के लिए पुस्तक लिखने का आदेश ही दे सकते है। (कहा जाता है कि गयासुद्दीन तुगलक के कहने से अमीर खुसरो ने उनके लड़को को हिन्दी पढाने के लिए इसे लिखा था।) उपर्युक्त बातो को देखते हुए यह कहना उचित नही लगता कि 'खालिकबारी' खुसरो की रचना है। ऐसी स्थिति मे 'हिन्दी' शब्द का खुसरो द्वारा प्रयोग 'खालिकबारी' के आधार पर नही माना जा सकता। दूसरे प्रमाण के रूप मे खुसरो का एक वाक्य उद्धृत किया जाता है जिसमे उन्होने कहा है कि मेने फारसी के साथ-साथ हिन्दी मे भी चन्द नज्मेक ही है ('जुज्वे चन्द नज्मे हिन्दी नीज़ नज़्रे दोस्ता करदा शुदा अस्त') वस्तुत. यह वाक्य उनके किसी भी प्रामाणिक सस्करण मे मुझे नही मिला। 'देवल देवी खिज्र खाँ' मसनवी से कुछ लोगो ने उद्धरण दिये हैं, किन्तु वहाँ भी मूलत 'हिन्दुवी' का प्रयोग है न कि 'हिन्दी' का। इसके अतिरिक्त खुसरो द्वारा भाषा के अर्थ मे 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का कोई अन्य प्रमाण देखने मे नही आया। यो भाषा के अथ

कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं— सो देस क वनमाली शिष्याय भाषा टीका की है (१४३८ ई० म लिखित भास्वती की भाषा-टीका) संस्कृत कविरा कूप जल भाषा बहता नीर (कबीर) आदि अत जसि कथ्या अहै लिखि भाषा चौपाई कहै (जायसी) भाषा भनति मोर मति थोरी भाषा निबद्ध मति मजुल (तुलसीदास) भाषा बोल न जानही जेहि के कुल के दास' (केशवदास)। संस्कृत आदि के ग्र थो की हिन्दी टीकाओ म भाषा टीका रूप म भी यह शब्द उसी अथ म प्रयुक्त हुआ है। रामप्रसाद निरञ्जनी कृत 'भाषा योगवासिष्ठ (१७४१ ई०) १६ फरवरी १८०२ को फोर्ट विलियम कालिज द्वारा भाखा मुन्शी की मांग की स्वीकृति तथा लल्लू लाल को उक्त कालिज के कागजों म भाषा मुन्शी कहे जाने स पता चलता है कि हिन्दी के लिए भाषा शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है। संस्कृत के टीका ग्रन्थो मे तो यह अब भी चल रहा है। पुरानी पीढी के पण्डित हिन्दी टीका न कहकर भाषा टीका ही कहते है।

मुसलमान यहाँ आये तो यहाँ की भाषा को जबाने हिन्दी कहने लग। उनका विशेष सम्बन्ध मध्यदेश स था अत धीरे धीरे मध्यदेशीय बोली के लिए उ होने जबाने हिन्दी या हिन्दी जबान या हि दी नाम का प्रयोग किया। आरम्भ म इस नाम के अतगत पजाबी (कम से-कम पूर्वी) भी कदाचित् आती थी।

हिन्दी नाम का भारत म प्रथम प्रयोग कब किसन किया यह अभी तक अनुसन्धान का विषय है। प्राय यही कहा जाता है कि अमीर खुसरो की रचना म सबसे पहल हिन्दी शब्द हिन्दी भाषा क लिए मिलता है। मैं समझता हूँ कि भाषा के अथ म खुसरो म हिन्दी शब्द का प्रयोग सन्दिग्ध है। उन्होंने हिन्दी शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानो या भारतीय (इलियट ३ प ५३६) के लिए ही किया है। यहाँ बहुत विस्तार से इस विषय को लेना सम्भव नही है किन्तु सक्षेप म कुछ बातें कही जा सकती हैं। इस सम्बन्ध म सबसे बडा तक तो यह दिया जाता है कि खुसरो लिखित खालिकबारी म हिन्दी' शब्द कई बार आया है। दस्तुत खालिकबारी खुसरो की रचना नही है वह खुसरो के बहुत बाद के किसी खुसरो शाह की रचना है। इसके लिए कई तक दिये जा सकते हैं जिनम स प्रमुख ये हैं। (क) अमीर खुसरो जस विद्वान की रचना यदि खालिकबारी होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि खालिकबारी बहुत ही अव्यवस्थित है। कभी फ़ारसी शब्द के समानार्थी हिन्दी शब्दादि दिय गए हैं तो कभी वाक्यो के समानार्थी वाक्य।

भाषा सीखने की दृष्टि से भी इन वाक्यो या शब्दो मे कोई एकरूपता नहीं है। जो शब्द लिये गये है, उनमे सब ऐसे नही है जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय। साथ ही, प्रारम्भिक ज्ञान के लिए बहुत से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द छूट भी गए हैं। जो वाक्य दिये गये है, वे भी तुक या छन्द बैठाने की दृष्टि से लिये गये ज्ञात होते है। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नही है। कारक, काल-रचना आदि की दृष्टि से भी वे महत्त्व नही रखते। (ख) छन्दो का बिना किसी योजना के परिवर्तन और कही-कही उनमे अप्रवाह या दोष भी 'खालिकबारी' को कविवर खुसरो की रचना मानने मे व्याघात उपस्थित करते है। (ग) बीच मे आता है—'तुर्की जानी ना'। तुर्की का विद्वान् खुसरो यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की नही आती, यह बात कल्पनातीत है। यो सभी शब्दो के लिए तुर्की शब्द दिये भी नही गये हैं। अत ऐसा कथन बडा निरर्थक-सा लगता है। यह बात भी 'खालिकबारी' को अमीर खुसरो से सम्बद्ध करने मे अडचन डालती है। (घ) शब्दो की गलतियाँ भी है। हिन्दी 'काना' के लिए फारसी शब्द 'कोर' दिया गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है। 'तिदर्व' 'कुबक' और 'हस' को एक माना है, जबकि तीनो अलग-अलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुर्राज' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। 'खालिकबारी' से इस तरह की अशुद्धियो के अनेक उदाहरण दिये जा सकते है। ऐसी भद्दी गलतियाँ खुसरो नही कर सकते और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि 'खालिकबारी' का लेखक लगता है, गयासुद्दीन तुगलक अपने लडको को हिन्दी पढाने के लिए पुस्तक लिखने का आदेश ही दे सकते है। (कहा जाता है कि गयासुद्दीन तुगलक के कहने से अमीर खुसरो ने उनके लडको को हिन्दी पढाने के लिए इसे लिखा था।) उपर्युक्त बातो को देखते हुए यह कहना उचित नहीं लगता कि 'खालिकबारी' खुसरो की रचना है। ऐसी स्थिति मे 'हिन्दी' शब्द का खुसरो द्वारा प्रयोग 'खालिकबारी' के आधार पर नही माना जा सकता। दूसरे प्रमाण के रूप मे खुसरो का एक वाक्य उद्धृत किया जाता है जिसमे उन्होने कहा है कि मैने फारसी के साथ-साथ हिन्दी मे भी चन्द नज्मेक ही है ('जुज्वे चन्द नज्मे हिन्दी नीज़ नज्रे दोस्ता करदा शुदा अस्त') वस्तुत यह वाक्य उनके किसी भी प्रामाणिक सस्करण मे मुझे नही मिला। 'देवल देवी खिज्र खाँ' मसनवी से कुछ लोगो ने उद्धरण दिये है, किन्तु वहाँ भी मूलत. 'हिन्दुवी' का प्रयोग है न कि 'हिन्दी' का। इसके अतिरिक्त खुसरो द्वारा भाषा के अर्थ मे 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का कोई अन्य प्रमाण देखने मे नही आया। यो भाषा के अर्थ

में 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग खुसरो में कई स्थलों पर मिलता है। एक स्थान पर वे कहते हैं—तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब अर्थात् 'मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ हिन्दवी में जवाब देता हूँ।' उनकी मसनवियों में भी यह शब्द अनेकाधिक स्थलों पर आया है। इस प्रकार खुसरो के द्वारा हिन्दी नाम के प्रयोग की बात बहुत प्रामाणिक नहीं ज्ञात होती। हाँ यह सम्भव है कि उनके कुछ ही बाद इस शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग हो गया था।

यह प्रायः कहा जाता है कि हिन्दी और हिन्दवी शब्द एक ही अर्थ रखते थे और एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे। किन्तु मुझे यह बात ठीक नहीं ज्ञात होती। एक ही भाषा के लिए बिना किसी विशेष कारण के दो नामों का साथ साथ उत्पन्न होना और बिल्कुल एक ही अर्थ में चलना कुछ जँचता नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में ये दोनों शब्द भिन्नार्थी थे। ऊपर कहा गया है कि खुसरो ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है और 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग मध्यदेशीय भाषा के लिए। यह हिन्दवी शब्द वस्तुतः 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' है। हिन्दू+ई=अर्थात् हिन्दुओं की भाषा। हिन्दवी शब्द के प्रयोग के कुछ दिन बाद 'हिन्दी' (अर्थात् भारतीय मुसलमानों) की भाषा के लिए कदाचित् 'हिन्दी' शब्द चल पड़ा। हिन्दुवी या हिन्दवी तो वह भाषा थी जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित हुई थी और मध्यप्रदेश में सहज रूप से प्रयुक्त हो रही थी। हिन्दी अर्थात् भारत के मुसलमानों ने भी इसे अपनाया, किन्तु स्वभावतः धार्मिक तथा सांस्कृतिक (खान पान, रहन सहन, कपड़ा लत्ता) कारणों से उनकी भाषा में अरबी, फ़ारसी, तुर्की के शब्द अधिक थे। इसी भाषा के लिए आरम्भ में कदाचित् 'हिन्दी' शब्द चला। इस प्रकार 'हिन्दवी' शब्द पुराना है और 'हिन्दी' अपेक्षाकृत बाद का। साथ ही मूलतः दोनों में कुछ अन्तर भी है। शुद्ध हिन्दी में लिखने वाले पुराने कवियों तथा लेखकों ने सम्भवतः इसी कारण अपनी भाषा को प्रायः 'हिन्दवी' ही कहा है—

तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेती आहि। जामें मारग प्रेम का सबै सराहैं ताहि॥ (जायसी)। श्रीपरकासदास (१६६६ ई०) के आमेर के दीवान को लिखे गए पत्र, तुलसी के फ़ारसी पञ्चनामे, जटमल की 'गोरा बादल की कथा' तथा इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में भी 'हिन्दवी' शब्द ही मिलता है 'हिन्दी' नहीं।

किन्तु ऐसा लगता है कि यह भेद अधिक दिनों तक चला नहीं। अरबी फ़ारसी-तुर्की के बहुत से आम फ़हम शब्द 'हिन्दवी' में आ गये, और दूसरी ओर हिन्दुओं एवं भारतीय वातावरण के प्रभाव से पर्याप्त भारतीय शब्द मुस

लमानों की भाषा मे भी गृहीत हो गये तथा हिन्दी-हिन्दवी दोनो ही शब्द प्राय (किन्तु पूर्णत नही) समानार्थी हो गये। यो कुछ विशेष प्रयोगो मे इन शब्दो के मूल अर्थ भी लगभग १८वी सदी उत्तरार्द्ध तक या उसके भी बाद तक चलते रहे। हातिम (१८ वी सदी उत्तरार्द्ध) ने 'दीवानेज़ादे' के दीबाचे मे लिखा है—'जबान हर दयार ता बहिन्दवी, कि ऑरा भाका गोयन्द···।' इसमे स्पष्ट है कि 'हिन्दवी' और भाषा प्राय एक थी। उसी के कुछ दिन बाद 'तजकिर' मख-जन उल्गरायब' मे लिखा मिलता है—'दर ज़बाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त' अर्थात् हिन्दी मे जिससे मतलब उर्दू है। किन्तु जैसा कि सकेत किया गया है तथा आगे भी कुछ उदाहरणो से स्पष्ट होगा, इस प्रकार का अन्तर सर्वत्र नही किया गया है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने यह दिखाने का (उर्दू का रहस्य, पृष्ठ ४०-४८) प्रयास किया है कि 'हिन्दवी' हिन्दुओ की भाषा नही थी। इसी आधार पर डॉ० उदयनारायण तिवारी (हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, प्रथम सस्करण, पृष्ठ १८४) ने भी कदाचित् इसे स्वीकार कर लिया है, किन्तु पाण्डे जी के तर्क वस्तुत उनके मत को प्रमाणित करने मे समर्थ नही दीखते।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग, जब भी और जिसके भी द्वारा हुआ हो, इसके अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परम्परा 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियो एवं गद्य-कारो मे ही मिलती है उदाहरणार्थं (१) शाही मीराजी (१४७५ ई०)—'यो देखत हिन्दी बोल', (२) शाह बुर्हानुद्दीन (१५८२ ई०)—'ऐब न राखे हिन्दी बोल' ('इर्शादनामा') मे', (३) मुल्ला वजही (१६३५ई०)—'हिन्दोस्तान मे हिन्दी ज़बान सो' ('सबरस' की भूमिका मे), (४) जुनूनी (१६९० ई०)—'मै इसको दर हिन्दी ज़बाँ इस वास्ते कहने लगा' (मौलाना रूम के 'मोजज़ा' के अनुवाद मे)। इसके साथ-साथ 'हिन्दवी' शब्द भी प्रयुक्त हो रहा था। १७ वी सदी मे 'हिन्दी' शब्द उत्तर भारत मे भी अविच्छिन्न रूप से मिलने लगता है। उदाहरणार्थ खाफी खाँ के 'मुन्तखबुल्लबाब' (१७ वी सदी उत्तरार्द्ध), मिर्ज़ा खाँ के 'तुहफतुल हिन्द' (१६७६ ई०), बरकतुल्ला पेमी के 'अवारफे हिन्दी' (लगभग १७०० ई०) तथा 'मआसिरुल उमरा' (१७४२-१७४७) आदि मे। हिन्दी कवियो मे १७७३ ई० मे सूफी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है—'हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौ। का जौ बहुतै हिन्दी भाख्यौ ॥' इससे संकेत यह मिलता है कि इस काल तक आते-आते 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओ की भाषा की ओर झुक गया था और इसमे से हिन्दुओ की शब्दावली निकालकर, फारसी शब्दो के आधार पर उर्दू की नीव पड़ रही थी। १८०० ई० के लगभग मुरादशाह लिखते हैं —

निभाहा फारसी व उस्तादों को
किया पुर मग्ज तर हिन्दी जबाँ का
गुमा न फारसी से जय निराली
सराहा दर म हिन्दी के हासा।

इस प्रकार जैसा कि हम आगे देखेंगे हिन्दी शब्द का प्रयोग इसके विरुद्ध सामान्य अर्थों में लगभग १६ वीं सदी के मध्य तक मिलता है।

यह ध्यातव्य है कि हिन्दवी या हिन्दी का प्रयोग यद्यपि मध्यदेश की जन भाषा के लिए चल रहा था और वह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी जा पहुँचा था किन्तु उसका स्वीकृत भाषाओं में अकबर के काल तक नाम नहीं मिलता। अमीर खुसरो ने अपने ग्रन्थ 'नुहसिपहर' में उस काल की प्रसिद्ध ग्यारह भाषाओं (सिन्धी लाहौरी काश्मीरी बंगाली गौड़ी गुजराती तिलंगी मावरी (कारणी) धुर समुंदरी, अवधी देहलवी) का उल्लेख किया है किन्तु इनमें हिन्दवी या हिन्दी नहीं है। अबुलफ़ज़्ल की 'आइने अकबरी' में दी गई बारह भाषाओं (देहलवी बंगाली मुलतानी मारवाड़ी गुजराती तिलंगी मरहठी कर्नाटकी, सिन्धी, अफ़गानी, बलूचिस्तानी काश्मीरी) में भी इसका नाम नहीं आता। हाँ एक बात अवश्य विचार्य है। खुसरो और अबुलफ़ज़्ल दोनों ही ने देहलवी का उल्लेख किया है और मध्यप्रदेश की कोई भाषा नहीं ली है। इसका आशय यह हुआ कि खुसरो से लेकर अबुलफ़ज़्ल के काल तक इस भाषा का प्रचलित नाम शायद देहलवी ही था। हिन्दवी हिन्दी नाम कदाचित् केवल साहित्य तक ही सीमित थे।

ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि 'हिन्दी' शब्द मूलतः मुसलमानों की हिन्दी के लिए प्रयुक्त होकर, फिर हिन्दुओं की भाषा की ओर आ रहा था। किन्तु १६ वीं सदी के मध्य से पूर्व तक उर्दू के लेखकों में प्रायः इसका प्रयोग उर्दू या रेख्ता के समानार्थी रूप में चल रहा था। हातिम (१८वीं सदी उत्तरार्द्ध) नासिख, सौदा (१७१३ १७८० ई०) मीर (१७१६ १७५८ ई०) आदि ने एकाधिक बार अपने शेरों को हिन्दी शेर कहा है। गालिब ने अपने खतों में उर्दू 'हिन्दी' रेख्ता को कई स्थलों पर समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त किया है। १८०३ ई० में लिखित तज़किर मख़ज़न उलग़रायब में आता है— दरज़बाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त। फोर्ट विलियम कालेज के हिन्दी अध्यापक गिलक्रिस्ट के लेखों से पता चलता है कि वे हिन्दी, हिन्दुस्तानी उर्दू तथा रेख्ता आदि को समानार्थी समझते थे किन्तु उनकी दृष्टि में इनका परिनिष्ठित रूप अरबी फारसी मिश्रित था, अर्थात् उनकी हिन्दी आज की दृष्टि से उर्दू थी। १८२० में उनकी एक किताब निकली, जिसका नाम

था—'कवानीने-सर्फ व-नह्व हिन्दी'। पुस्तक पर अंग्रेजी मे लिखा था—Rules of Hindee Grammar। पुस्तक के भीतर सर्वत्र ही 'हिन्दी या रेख्ते' शब्द का प्रयोग है, किन्तु व्याकरण उर्दू का है। इसकी भाषा भी अरबी-फारसी शब्दो से लदी है, जैसा कि नाम (कवानीने-सर्फ) से भी स्पष्ट है। आशय यह है कि सन् १८०० के आसपास 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग 'उर्दू' तथा 'रेख्ता' के लिए हो रहा था।

'हिन्दी' के आधुनिक अर्थ मे प्रयुक्त होने का इतिहास वडा विचित्र है। पीछे के नूर मुहम्मद तथा मुरादशाह के उद्धरणो से इस वात का कुछ सकेत मिलता है कि कभी-कभी उसका प्रयोग हिन्दुओ की भापा या अरवी-फारसी के कठिन शब्दो से रहित मध्यदेशीय भाषा के लिए होता था, किन्तु ऐसे प्रयोग प्राय अपवाद स्वरूप है। प्राय 'हिन्दी' का प्रयोग उस भापा के लिए मिलता है, जो अरवी-फारसी से भरती जा रही थी, या जो वह भापा थी, जो वाद मे विकसित हो कर 'उर्दू' कहलाई। जनता मे १६ वी सदी के प्राय मध्य तक कुछ अपवादो को छोड़कर 'हिन्दी' का इसी अर्थ मे प्रयोग मिलता है।

आधुनिक अर्थ मे 'हिन्दी' शब्द के व्यापक प्रयोग का श्रेय मूलत: अंग्रेजो को है। १८०० ई० मे कलकत्ते मे फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। वहाँ गिलक्रिस्ट हिन्दी या हिन्दुस्तान के अध्यापक नियुक्त हुए। यदि गिलक्रिस्ट ने मध्यप्रदेश की वास्तविक प्रतिनिधि भापा को, जो न तो अधिक अरवी-फारसी की ओर झुकी हुई थी और न सस्कृत की ओर, अपनाया होता, तो आज हिन्दी-उर्दू नाम की दो भापाएँ न होती और हिन्दी भाषा एव उसके साहित्य का नक्शा कुछ और ही होता। किन्तु उनकी हिन्दी (जैसा कि उनके हिन्दी-व्याकरण के नाम 'कवानीने-सर्फ-व-नह्व हिन्दी' से स्पष्ट है) वहुत ही कठिन उर्दू थी। वे सन् १६०४ तक अध्यापक रहे, अत वही भापा हिन्दी कही जाती रही। किन्तु वहाँ के कर्मचारियो का ध्यान इस वात की ओर गया कि प्रतिनिधि भापा वह नही है। इसका परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द तो अरवी-फारसी शब्दो से युक्त गिलक्रिस्ट की हिन्दी (जो वस्तुत उर्दू थी) के लिए प्रयुक्त होने लगा और 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओ मे प्रचलित सस्कृत मिश्रित भापा के लिए। इस अर्थ मे 'हिन्दी' शब्द की परम्परा प्राप्त साहित्य मे कही-कही ही मिली है। सम्भव है, जनता मे उस समय 'हिन्दी' नाम का कुछ अधिक प्रचार रहा हो, जहाँ से अंग्रेजो ने उसे लिया। इस नवीन अर्थ मे 'हिन्दी का स्पष्ट रूप से लिखित प्रयोग कदाचित् सर्वप्रथम कैप्टन टेलर ने किया। १८१२ मे फोर्ट विलियम कॉलिज के वार्पिक विवरण मे वे कहते है—"मै केवल हिन्दुस्तानी या रेख्ता का जिक्र कर रहा हूँ जो फारसी लिपि मे

लिखी जाती है मैं हिन्दी का जिक्र नहीं कर रहा जिसकी अपनी लिपि है जिसमें अरबी फारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर पश्चिम प्रान्त की भाषा था (Imperial Records Vol IV पृ० २७६ ७७)। इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि उस समय तक 'हिन्दी' शब्द इस अर्थ में कम से कम कॉलिज के लोगों में कुछ समझा जाने लगा था, किन्तु बहुत अधिक नहीं क्योंकि उसे हिन्दुस्तानी या रेख्ता से अलग स्पष्ट करने की आवश्यकता अभी समाप्त नहीं हुई थी, जैसा कि टेलर के कथन से स्पष्ट है। उक्त कालिज में हिन्दी उर्दू (या हिन्दुस्तानी) का यह अलगाव बढ़ता ही गया। १८२४ में उक्त कॉलिज के हिन्दी प्रोफेसर विलियम प्राइस ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दी के लगभग सभी शब्दों के संस्कृत होने की बात कही तथा हिन्दुस्तानी के शब्दों के अरबी फारसी के होने की। १८२५ में कॉलिज के वार्षिक अधिवेशन के भाषण में लार्ड ऐमहर्स्ट ने हिन्दी भाषा को हिन्दुओं से सम्बद्ध कहा तथा उर्दू को उनके लिए उतनी ही विदेशी कहा, जितनी 'अंग्रेजी'। इस प्रकार अंग्रेजों ने जिस नीयत से भी किया हो १९ वीं सदी के प्रथम २५ वर्षों में एक ओर 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' देवनागरी संस्कृत हिन्दू शब्द को जोड़ दिया, तो दूसरी ओर हिन्दुस्तानी रेख्ता या उर्दू फारसी लिपि अरबी फारसी मुसलमान शब्दों को। सम्भवतः शासन के ही इशारे पर १८६२ में हिन्दी उर्दू का प्रश्न शिक्षा के संयोजकों के समक्ष आया और इस प्रकार १९ वीं सदी के तीसरे चरण में 'हिन्दी' आजकल के अर्थ में निश्चित रूप से स्वीकृत हो गई। उर्दू और हिन्दी भाषा को लेकर उस काल में कितनी गर्मागर्मी थी, इसके चित्र 'सितारे हिन्द' और 'भारतेन्दु' उपाधि की अन्तर्कथा में मूर्तिमान हैं।

पादटिप्पणी—१ 'गंगा' को भी संस्कृत के पण्डित संस्कृत शब्द मानते हैं तथा 'गम्यते ब्रह्मपदमनया' गच्छति या गम्+गन्+टाप, रूप में उसकी व्युत्पत्ति देते हैं। किन्तु अब यह प्रायः स्वीकृत तथ्य है कि यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है और भारत के प्राचीन निवासियों से ही आर्यों को मिला है। २ जरनल आफ ओरियण्टल रिसर्च मद्रास, अंक ११, पृष्ठ २४६। ३ प्राचीन चीनी साहित्य में 'शिन्तु' (परवर्ती साहित्य में इन्तु) को देशों का देश कहा गया है यह भी सिन्धु ही है। भारत में भारत के लिए प्राचीनतम नाम 'मातृभूमि' (अथर्ववेद) है। भारतवर्ष (महाभारत) भारत (विष्णु पुराण) भरत खण्ड जम्बुद्वीप (बौद्ध ग्रन्थ) कुमारी द्वीप (परवर्ती पुराण) बाद में

इस तरह नामो के अध्ययन मे एक तरफ तो भाषाविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, सस्कृति, भूगोल आदि की जानकारी अपेक्षित होती है, और दूसरी ओर शब्दो का अध्ययन भाषा, इतिहास, समाजशास्त्र, सस्कृति तथा प्राचीन भूगोल आदि के अध्ययन के लिए बडी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है।

(पिछले पृष्ठ की पादटिप्पटी का शेष)

मिलते है। 'हिन्द' पर आधारित नाम भारत में प्रथम बार कदाचित जैन ग्रन्थ 'निशीय चूर्णि' मे 'एहि हिन्दुगदेसं वच्चाओ' (७ वीं सदी अन्तिम चरण) में आता है। ४. यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता, ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका' लैटिन में 'इन्दिया' तथा अँग्रेज़ी आदि मे 'इण्डिया' हुआ। चीनी साहित्य मे कभी-कभार प्रयुक्त 'इन्तुको' भी यही है। ५ यही शब्द अँग्रेज़ी मे टैमरिण्ड (Tamrind=इमली) है। ६. शासन के लोगों मे इस रूप मे प्रयुक्त होने पर भी 'हिन्दी' शब्द उर्दू के अर्थ में साहित्यिको तथा जनता आदि मे १९ वीं सदी के लगभग मध्य तक चलता रहा। ग़ालिब ने अपने कई पत्रो में हिन्दी, उर्दू और रेख्ता को प्राय. समान अर्थो मे प्रयुक्त किया है।

अध्याय ७

प्रयोग विज्ञान

प्रयोग भाषा का प्राण है। बिना उसके भाषा के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं। उसी प्रयोग के विवेचन के लिए यहाँ प्रयोग विज्ञान नाम का प्रयोग किया जा रहा है। मैं नहीं कह सकता कि भाषाशास्त्र के पंडित भाषा के विश्लेषण के संदर्भ में इस नये नाम से सहमत होंगे भी या नहीं या होंगे भी तो कहाँ तक ?

यों तो प्रयोग विज्ञान में भाषिक इकाइयों के सारे प्रयोगों को समाहित करके इसकी सीमाओं को काफी विस्तार दिया जा सकता है किन्तु यहाँ भाषा या वाक्य में शब्दों के प्रयोग के अध्ययन तक इसे सीमित रखा जा रहा है। दूसरे शब्दों में प्रयोग विज्ञान शब्द का विज्ञान है।

प्राय सभी भाषाओं में दो प्रकार के शब्दों का प्रयोग होता है। एक तो किसी भाव, गुण, प्राणी, वनस्पति या वस्तु आदि का द्योतन करते हैं जैसे अच्छाई, बुरा, आदमी, गुलाब, लालटेन आदि और दूसरे केवल व्याकरणिक कार्य करते हैं जैसे न, से को में, पर आदि। कभी कभी पहले प्रकार के शब्दों को पूर्ण शब्द कहते हैं क्योंकि इनके भीतर अर्थ होता है तथा दूसरे प्रकार के शब्दों को रिक्त शब्द नाम दिया जाता है क्योंकि उस प्रकार का अर्थ इनमें नहीं होता। यों इसका यह आशय नहीं कि ये शब्द निरर्थक होते हैं। भाषा के प्रयोक्ता को दोनों प्रकार के शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है, और दोनों ही की प्रयोग संबंधी अपनी अलग अलग समस्याएं हैं।

पर्यायों में सूक्ष्म अंतर

प्रथम वर्ग के शब्दों के प्रयोग के संबंध में यों तो कई प्रकार की समस्याएं हैं किन्तु कदाचित सबसे महत्त्वपूर्ण है तथाकथित पर्याय शब्दों के आपसी

सूक्ष्म अंतर को समझने की। पीछे 'वहुत' और 'अधिक' का प्रश्न उठाया जा चुका है। वहुत से लोग 'वहुत' और 'अधिक' मे सूक्ष्म अंतर को न समझ पाने के कारण

'वहुत दिनो से तुम्हारा समाचार नही मिला।'

के स्थान पर

'अधिक दिनो से तुम्हारा समाचार नही मिला।'

जैसे प्रयोग करते है, किन्तु यह प्रयोग अशुद्ध है। पीछे इसे विस्तार से देखा जा चुका है। यहाँ कुछ और शब्दो को लेकर प्रयोग के इस पक्ष पर विचार किया जा रहा है।

क्रोधी-क्रोधित—दोनो ही शब्द 'क्रोध' के आधार पर वने हुए विशेषण हैं, किन्तु दोनो के प्रयोगो मे अंतर है। 'क्रोधी' शब्द का प्रयोग किसी की आदत वतलाने के लिए किया जाता है, जवकि 'क्रोधित' का किसी विशिष्ट समय मे किसी का 'गुस्से होने' के लिए। उदाहरणार्थ

राम वहुत क्रोधी है।

राम वहुत क्रोधित है।

पहले मे राम के स्वभाव का वर्णन है, तो दूसरे मे उसकी वर्तमान मानसिक दशा का।

आहट-टोह—दोनो ही शब्दों का प्रयोग 'लेना' क्रिया के साथ प्राय. होता है किन्तु 'टोह लेना' का प्रयोग खुद आगे वढकर जानने के लिए होता है, जवकि 'आहट लेना' के प्रयोग के लिए खुद जाना या आगे वढना आवश्यक नही है।

गीला-भीगा—अर्थ की दृष्टि से दोनो पर्याय है, किन्तु दोनो के प्रयोग मे अतर है। 'मै भीगा हूँ' तो कहा जा सकता है किन्तु 'मै गीला हूँ' नही कहा जा सकता। इसी प्रकार आप 'भीगी विल्ली' तो वन सकते है, 'गीली विल्ली' नही वन सकते। किन्तु 'मेरे कपड़े गीले है' और 'मेरे कपड़े भीगे है', दोनो ही प्रयोग चलते है। लगता है कि जानदार के लिए 'भीगा' ही आता है किन्तु वेजान के लिए दोनो आते है। यो दोनो के अर्थ मे भी कुछ अन्तर है। 'गीला' की तुलना मे 'भीगा' मे अधिक गीले या भीगे होने का भाव है। किन्तु प्रयोग मे अर्थ के इस अन्तर पर कदाचित् लोग अधिक ध्यान नही दे रहे है, हाँ ऊपर सकेतित प्रयोग पर पूरा ध्यान देते हैं।

होशियार-चालाक—'होशियार' का प्रयोग कुशलता व्यक्त करने के लिए होता है किन्तु 'चालाक' के प्रयोग मे धूर्तता की गध है। कुछ लोगो क प्रयोगो

में 'होशियार' में भी कुछ धूर्तता का भाव मिलता है किन्तु उनके प्रयोगों में भी 'चालाक' अपेक्षाकृत अधिक धूर्त है। सामान्यतः किसी का होशियार होना अच्छा माना जाता है किन्तु चालाक होना बुरा। रोगी होशियार डॉक्टर के यहाँ जाना और चालाक डॉक्टर से बचना चाहता है।

सरल-सुगम—पहला 'आसान' है और दूसरा 'सरलता से जाने योग्य'। इसीलिए कार्य को सरल तथा मार्ग को 'सुगम' कहना अच्छा प्रयोग है। यों सरल मार्ग भी चल जाता है, किन्तु 'सुगम कार्य' नहीं चल सकता।

कारण-वजह—दोनों अर्थ की दृष्टि से एकार्थी हैं, किन्तु प्रयोग में थोड़ा अंतर है। 'इसका कारण क्या है?' 'इसकी वजह क्या है?' दोनों प्रयोग ठीक हैं। किन्तु 'आप किस कारण आए' प्रयोग कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है परन्तु 'आप किस वजह आए' प्रयोग नहीं मिलता। 'वजह' के बाद ऐसी रचना में 'से' का आना अवश्यक है पर 'कारण' के बाद 'से' आता भी है और नहीं भी आता। इन दोनों में न आने का अनुपात कदाचित् अधिक है। यों 'किस कारण' के स्थान पर 'किस लिए' का प्रयोग अधिक चलता है।

घमंड गर्व—घमंड निन्दनीय है किन्तु गर्व अच्छा भी होता है 'मुझे अपने देश पर गर्व है।' घमंड प्रायः व्यक्तिगत बातों पर होता है। गर्व सामूहिक पर भी।

ठीक-सही—'ठीक' उचित या वाजिब के लिए प्रयुक्त होता है किन्तु 'सही' गलत का उल्टा है। 'सवाल गलत है या ठीक' की तुलना में 'सवाल गलत है या सही' अधिक अच्छा प्रयोग है।

अनबन खटपट—पहले का प्रयोग ऐसी स्थिति को व्यक्त करने के लिए होता है जब दो (व्यक्ति या वर्ग) में बनती न हो। जिनमें अनबन होती है वे प्रायः एक दूसरे से अलग रहते हैं बोलते चालते नहीं या संपर्क नहीं रखते। इसके विपरीत खटपट का प्रयोग यह व्यक्त करने के लिए होता है कि दोनों में संपर्क या बोलचाल है किन्तु थोड़ा बहुत झगड़ा है, पटती नहीं। इस तरह झगड़ा खटपट से आगे की चीज है।

व्याकरणिक शब्दों का ठीक प्रयोग

ऊपर अर्थ का द्योतन करने वाले शब्दों की बात की गई। अब बात व्याकरणिक कार्य करने वाले शब्दों की की जा रही है। यहाँ सारे व्याकरणिक शब्द नहीं लिए जा सकते। उदाहरण के लिए केवल कुछ कारक चिह्न लिए जा रहे हैं।

हमारे यहाँ व्याकरण की परयरागत शिक्षा मे इतना वतला कर छुट्टी पा ली जाती है कि 'ने', कर्त्ता कारक का चिह्न है, 'को' कर्म-सम्प्रदान का, तथा 'से' करण-अपादान का, इत्यादि। वस्तुत भाषा का इससे विशेष सम्वन्ध नही कि कौन किस कारक का चिह्न है, विशेष सम्वन्ध इससे है कि किसका कहाँ-कहाँ प्रयोग होता है। या कहाँ प्रयोग ठीक है और कहाँ गलत। इस प्रसग मे यह भी उल्लेख्य है कि ऐसे प्रयोग भी सामान्य हैं जहाँ कारक-चिह्न का प्रयोग अपने कारक से इतर कारक के लिए होता है। उदाहरण के लिए 'को' कर्म-सम्प्रदान का चिह्न माना जाता है। किन्तु

'राम आज रात को घर जा रहा है।'

मे यह अधिकरण कारक मे आया है।

इसी तरह 'से' का भी प्रयोग करण-अपादान से अलग मिलता है

तुम वडे ठीक समय से आ गये।

'ने' सामान्यत सकर्मक धातुओ के भूतकालिक कृदंत से वनने वाले सामान्य भूत (उसने खाया), आसन्न भूत (उसने खाया है) सदिग्धभूत (उसने खाया होगा, उसने खा लिया होगा) तथा पूर्णभूत (उसने खा लिया है) क्रिया के कर्त्ता के साथ आता है। भूलना, लाना, वोलना, वकना यद्यपि सकर्मक हैं किन्तु इनके साथ 'ने' नही आता, किन्तु दूसरी ओर छीकना, हँसना (मैंने हँस दिया) मुस्कराना (उन्होने मुस्करा दिया), नाचना (मोहन ने उसके साथ नाचा) जैसी अकर्मक क्रियाओ के साथ भी इसका प्रयोग चलता है। 'समझना' के साथ कुछ लोग 'ने' का प्रयोग करते हैं तथा कुछ नही करते। कुछ लोग 'को' के स्थान पर 'ने' का प्रयोग करते है (मैंने जाना है, राम ने दो) जो अशुद्ध है।

'को' सामान्य प्रयोगो के अतिरिक्त निम्नाकित रूपो मे आता है·

(क) कहने को वह भी आदमी है।
(ख) नौकर को जाना पडा।
(ग) वर्षा होने को है।
(घ) मैं शनिवार को चला जाऊँगा।

कुछ लोग 'राम को चार वच्चे हैं' जैसे प्रयोग करते हैं, जव कि वस्तुत. 'राम के चार वच्चे है' प्रयोग ठीक है।

'मैंने शेर देखा' और 'मैंने शेर को देखा' दोनो प्रयोग चलते हैं तथा ठीक हैं, किन्तु दोनो मे अन्तर है। पहले मे 'शेर' सामान्य है, दूसरे मे विशेष। इसी

तरह 'डाकुओं ने उसका गला घोट कर मार डाला' तथा 'डाकुओं ने उसका गला घोटकर मार डाला' दोनों प्रयोग चलते हैं। यों दोनों में थोड़ा अन्तर है तथा दूसरा ही अधिक संगत है।

'से' के भी विशेष प्रयोग हैं।

इसी से (लिए) वह जल्द आ गया।
चिड़िया जान से गई पर खाने वाले को स्वाद ही नहीं मिला।
मोहन जान से मारा गया।

'उसकी योग्यता हर काम से प्रकट होती है' तथा 'उसकी योग्यता हर काम में प्रकट होती है' दोनों प्रयोग में आते हैं और दोनों का भाव एक है। अंतर रचना में ही है।

'पर', 'में' और 'इनका न होना' प्रयोग की दृष्टि से ध्यातव्य हैं

मोहन घर है।
मोहन घर में है।
मोहन घर पर है।

'पर' के भी विशेष प्रयोग हैं

लड़का बाप पर है।
वह तुम पर मरता है।

'में' के विशेष प्रयोग

मैं चार दिन में (बाद के बाद) लौट आऊँगा।
आज घर में (वाली) कहाँ गई हैं।
यह पुस्तक दो रुपए में (का) है।
क्रोध में (के कारण) शरीर क्षीण है।

इस श्रेणी के अधिकांश शब्दों के सामान्य के अतिरिक्त विशेष प्रयोग भी चलते हैं। कुछ क्षेत्रीय होते हैं तो कुछ वैयक्तिक।

हर भाषा में ऐसे सारे (सामान्य और विशेष) प्रयोगों का विश्लेषण करके भाषा के सहज प्रवाह एवं भावों में सूक्ष्म अन्तर, दोनों ही दृष्टियों से उनका विवेचन होना चाहिए। तभी उनके सटीक प्रयोग की सार्थकता स्पष्ट हो सकेगी और भाषा की अभिव्यंजना शक्ति का ठीक उपयोग किया जा सकेगा।

भाषा के विभिन्न रूप

भाषा मे शब्दो का प्रयोग भाषा के विभिन्न रूपो पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा की ही तीन शैलियाँ या रूप प्रचलित है : हिन्दी—जिसमे संस्कृत शब्दो का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। उर्दू—जिसमे अरबी-फारसी-तुर्की शब्दो का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। हिन्दुस्तानी—जिसमे संस्कृत या अरबी-फारसी-तुर्की के दुरूह शब्द नही होते और जो बोलचाल के अपेक्षाकृत अधिक निकट है। सभी लेखक एव वक्ता सभी स्तरो पर हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी के इस भेद का निर्वाह नही करते, और शायद कर भी नही सकते, किन्तु अनेक प्रयोगो मे यह अन्तर स्पष्ट हुए बिना नही रहता।

इस प्रकार का शैलीय या रूपीय अन्तर स्वय हिन्दी मे भी है। हरिऔध के 'प्रिय-प्रवास', प्रसाद की 'कामायनी', और निराला के 'तुलसीदास' की हिन्दी, शब्द-प्रयोगो के स्तर पर बच्चन की 'मधुशाला' या नीरज के गीतो से भिन्न है। हरिऔध का ही 'प्रिय-प्रवास' उनकी अन्य रचनाओ से इस दृष्टि से अलग है। इस प्रकार के कुछ शैलीय पर्याय हैं : नगर-शहर, स्वय-खुद, ग्राम-गाँव, आश्चर्य-अचरज, प्रतिष्ठित-इज्जतदार, कलम-लेखनी, पत्र-चिट्ठी-खत, द्वार-दरवाज़ा, सुन्दर-खूबसूरत, बढिया-उम्दा, आशा-उम्मीद, अनाज-गल्ला, खेती-काश्त, दफ़्तर-कार्यालय, कड़ा-सख्त, वाटिका-बाग, नदी-दरिया, बुद्धि-अक्ल, वायु-हवा, सूर्य-सूरज आदि। स्पष्ट ही हिन्दी मे यह अन्तर तत्सम-तद्भव (सूर्य-सूरज), तत्सम-विदेशी (वाटिका-बाग), तद्भव-विदेशी (अनाज-ग़ल्ला, खेती-काश्त) शब्दो मे है। भाषा के प्रयोक्ता को इस प्रकार के अन्तर का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

जिससे या जिसके बारे में बात की जाए

भाषा मे शब्दो के प्रयोग मे इस बात का ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है कि बात किससे कही जा रही है या किसके बारे मे कही जा रही है। जापानी भाषा मे इस प्रकार का अंतर ससार की भाषाओ मे सर्वाधिक है। वहाँ अनेक संज्ञाओ, सर्वनामो तथा क्रियाविशेषणो के लिए एक से अधिक शब्दो का वर्ग है, जिनमे एक का प्रयोग आदरार्थी माना जाता है तो दूसरे का सामान्य। उदाहरण के लिए दारे(dare) सामान्य 'कौन' है तो दोनता (donata) आदरार्थी। हिन्दी-उर्दू मे तू-तुम-आप (जनाब, जनाब आली), आना-पधारना (तशरीफ लाना), बैठना-विराजना (तशरीफ रखना) मे इसी प्रकार का अंतर है। हिन्दी-उर्दू मे

[illegible] व्याकरण के स्तर पर [illegible]
[illegible] स्पष्ट करता है

आप [illegible] ।
[illegible] ।

यह [illegible] तीनों ही रूपों की क्रियाओं में है [illegible] । [illegible] । [illegible] ।
[illegible] में भी [illegible] मिलती है

तू [illegible] ।
तुम [illegible] ।
आप [illegible] ।
[illegible]
तुम [illegible] ।
आप [illegible] ।

अँग्रेज़ी में Thou You Yeu Your Honour Your Highness Your Holyness His Highness आदि में यही बात है।

सहप्रयोग

प्राय सभी भाषाओं में यह बात प्रतीत [illegible] पड़ती है कि कुछ शब्द कुछ विशेष शब्दों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं [illegible] शब्दों का सहप्रयोग कह सकते हैं। इसके कई भेद विभिन्न भाषाओं में प्रयोग के आधार पर किये जा सकते हैं।

उदाहरण के लिए हिन्दी में सहप्रयोग के निम्नांकित भेद किए जा सकते हैं। कुछ शब्द हिन्दी में ऐसे हैं जो केवल किसी एक या बहुत सीमित शब्दों के साथ आते हैं और केवल प्रारम्भ में ही आते हैं अजायब (अजायबघर अजायबखाना), [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])। दूसरी ओर कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक या बहुत सीमित शब्दों के साथ आते हैं और केवल अन्त में ही आते हैं [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) मुबाहिसा (बहस मुबाहिसा) धुप्प (अँधेरा धुप्प) [illegible] ([illegible]) गलौज (गाली गलौज)। भोजपुरी में इसी प्रकार [illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible]) पीठो (गहना पीठो), पहिता (सगपहिता) आदि हैं।

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे हैं जो केवल कुछ ही क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं [illegible] ([illegible] होना), [illegible] ([illegible] होना) [illegible] ([illegible]), [illegible] (बँधना)। इसके विपरीत कुछ क्रियाओं का प्रयोग सीमित

होता है। 'मोहन के पिता जी आज गुजर गये' प्रयोग करते है किन्तु 'चूहा आज गुजर गया' नही।

कुछ विशेषण भी कुछ सीमित सज्ञाओ के साथ ही प्रयुक्त होते है : गँदला (पानी), झीना (कपड़ा, परदा, आवरण), दर्शनी (हुण्डी)।

उपर्युक्त सकेतो को और भी विस्तार दिया जा सकता है तथा इस प्रकार की नई दिशाएँ भी खोजी जा सकती है।

लिग

व्याकरणिक लिग सभी भाषाओ मे नही होते। फारसी, उजवेक, इस्तोनियन आदि विश्व मे कई भाषाएँ है जिनमे लिंग का प्रयोग नही होता। उनमे क्रिया, विशेषण, सर्वनाम या सज्ञा के रूपो मे लैगिक परिवर्तन बिल्कुल नही होते। जिन भाषाओ मे लिंग होते भी है, उनमे भी आपस मे एकरूपता नही मिलती। चॉद (moon) अग्रेजी मे स्त्रीलिंग है तो हिन्दी मे पुल्लिग। यही नही, भाषाओ के लिंग का प्राकृतिक लिंग से बहुत अधिक सम्बन्ध नही होता। मेज निर्लिंग है किन्तु हिन्दी मे स्त्रीलिंग है, दीवान भी निर्लिंग है किन्तु हिन्दी मे पुल्लिग है। जर्मन मे महिला (frau) स्त्रीलिंग है तो कुमारी (fraulein) नपुसक लिंग है। सस्कृत मे 'दारा' 'स्त्री' और 'कलत्र' तीनो शब्द स्त्री के वाचक है किन्तु प्रयोग मे पहला शब्द पुल्लिग, दूसरा स्त्रीलिंग और तीसरा नपुसकलिंग है। स्त्री-पुरुष से सम्बन्ध का भी लिंग पर प्रभाव नही है। 'दाढी-मूँछ' पुरुष को होते है किन्तु स्त्रीलिग हैं, जबकि 'कुच' पुल्लिग है। वस्तुत. भाषिक लिंग प्रयोगाश्रित हैं।

लिगप्रयोगी भाषाओ मे शब्दो के प्रयोग मे लिग की दृष्टि से भी ध्यान रखना पडता है। ध्यान से आशय है उक्त भाषा में प्रयोग किये जाने वाले शब्द के लिंग का ध्यान। इस दृष्टि से भाषाओ मे अनेकानेक गड़बडियाँ मिलती है। हिन्दी मे गिद्ध, कौआ, चीटा आदि यद्यपि नर भी होते है और मादा भी, किन्तु इनका प्रयोग पुल्लिग मे ही होता है, इसी प्रकार चील, चींटी, मैना नर भी होते हे किन्तु इनका प्रयोग केवल स्त्रीलिंग मे होता है। हिन्दी मे पद तथा व्यवसायबोधक काफी शब्द ऐसे भी हे जो उभयलिंगी हैं। अभी कल तक 'भारत के प्रधानमन्त्री' प्रयोग मे आता था, अब 'भारत की प्रधान मन्त्री' आता है। डॉक्टर, कम्पाउण्डर, इन्जीनियर, मिनिस्टर या मन्त्री, राज्यपाल या गवर्नर, रीडर, व्याख्याता या लेक्चरर, मैनेजर आदि पचास से ऊपर शब्द हिन्दी मे उभयलिंगी है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी मे प्रयोग के स्तर पर दो लिंग है, किन्तु शब्द-वर्ग के स्तर पर तीन।

कुछ भाषाओं के कुछ उदाहरणों में बड़ी अजीब बात मिलती है। मादा के लिए पुल्लिंग शब्द का प्रयोग होता है और नर के लिए स्त्रीलिंग का। उदाहरणार्थ हिन्दी में पपीहा पपीही। इसी प्रकार कुछ भाषाओं के कुछ उदाहरणों में स्त्रीलिंग के रूप का प्रयोग एक प्राणी (कीड़ा) के लिए मिलता है तो पुल्लिंग का दूसरे के लिए। जैसे हिन्दी में ही चींटा चींटी।

कुछ स्थितियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें पुल्लिंग रूप पति के लिए आता है तो स्त्रीलिंग रूप उसकी पत्नी के लिए—चाचा चाची मामा मामी जीजा जीजी नाना-नानी किन्तु कुछ उदाहरणों में पुल्लिंग रूप भाई के लिए तो स्त्रीलिंग बहन के लिए साला साली। कभी कभी ऐसा भी होता है एक पुल्लिंग शब्द के दो अर्थ होते हैं और दोनों अर्थों में उसके स्त्रीलिंग के रूप अलग अलग होते हैं दादा (बड़ा भाई)—दीदी (बड़ी बहन) दादा (पितामह) दादी—(बाप की माँ)।

कुछ उदाहरणों में लिंग परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन भी हो जाता है गदेला—(लड़का गद्दा) गदेली (गद्दी, हथेली)।

यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं कि विभिन्न भाषाओं में प्राप्त स्त्रीलिंग रूप प्रायः पुल्लिंग रूपों से बने माने तथा दिखाए जाते हैं। समाज में पुरुष की महत्ता या प्रधानता के कारण, सामाजिक व्यवस्था की प्रतीक भाषा में ऐसा होना तथा इस रूप में उसका विश्लेषण असहज नहीं है। उदाहरणार्थ अंग्रेजी में author authoress host hostess lion lioness actor actress master mistress hero-heroine संस्कृत में ब्राह्मण-ब्राह्मणी नद नदी सुत-सुता प्रिय प्रिया भव भवानी अरबी में साहब साहबा वालिद वालिदा तुर्की में खान खानम बेग-बेगम हिन्दी में लड़का लड़की, दादा-दादी बेटा बिटिया हिरन हिरनी, सुनार सुनारिन ऊँट ऊँटनी ठाकुर-ठकुराइन।

यों इधर गहराई से विश्लेषण करने पर पुल्लिंग के प्रति यह पक्षपात कुछ शब्दों में समाप्त हो गया है। उदाहरण के लिए पहले लड़का से लड़की को बना माना जाता था। अब मूल शब्द न तो पुल्लिंग माना जाता है और न स्त्रीलिंग। वह निर्लिंग शब्द लड़क है जिसमें पुल्लिंग प्रत्यय आ जोड़कर लड़का बनता है तथा स्त्रीलिंग प्रत्यय ई जोड़कर लड़की। इसी प्रकार घोड़ बच्च गध माम आदि भी।

यों पुल्लिंग से स्त्रीलिंग बनने के विपरीत कुछ उदाहरण ऐसे भी मिल जाते हैं जहाँ स्त्रीलिंग रूप मूल है तथा पुल्लिंग इसके आधार पर बना है भेड़ भेड़ा भैंस भैंसा राँड रँडुआ।

हिन्दी के सम्बन्धवाचक शब्दो मे एक अजीब बात यह है कि परपरागत भारतीय परिवार मे जिन सम्बन्धियो के लिए स्थान था उनके लिए तो पुराने नाम हैं, किन्तु जिनके लिए स्थान नही था उनके लिए नाम न थे। अब जब उनका स्थान परिवार मे हो गया है तो स्त्रीलिग शब्दो के आधार पर उनके लिए नये शब्द बना लिये गये है। उदाहरण के लिए ननद, मौसी, बहिन के लिए परिवार मे स्थान पहले था, अत. सस्कृत मे उनके लिए क्रमश· ननंद, मातृस्वसृ, भगिनी शब्द थे जिससे ननद, मौसी तथा बहन का विकास हुआ। किन्तु इसके विपरीत ननदोई, मौसा, बहनोई के लिए परिवार मे विशेप स्थान न था, अत· उनके लिए विशेप नाम का प्रयोग नही हुआ। अब जब उनका परिवार मे स्थान हो गया तो इन स्त्रीलिंग शब्दो के आधार पर पुल्लिग शब्द बना लिये गये हैं ननद-ननदोई, मौसी-मौसा (अब उनमे मूल निर्लिग मौस् मानकर आ, ई जोडे जा सकते है) बहन, बहनोई। ऐसे ही जीजी से जीजा शब्द बना लिया गया है। इसका विकास बडा लम्बा है—संस्कृत तात+क>दादा (बडा भाई)>दीदी (बडी बहन)>जीजी>जीजा (ई का आ करके)।

वचन

वचन का प्रयोग विश्व की सभी भापाओ मे होता है। कुछ मे दो का, कुछ मे तीन का और अपवादत कुछ मे चार का। यो यदि एक वचन, बहुवचन आदि के रूपो का सीधे इन्ही वचनो मे प्रयोग होता और सामान्यत सभी शब्दो के विभिन्न वचनो के रूप होते तो प्रयोग मे कोई खास परेशानी न होती। किन्तु वास्तविकता यह है कि कभी तो एक वचन के रूप दूसरे वचन मे प्रयुक्त होते है, और कभी कुछ शब्दो का प्रयोग प्राय. एकवचन मे होता है तो दूसरो का प्राय बहुवचन मे। प्रयोग की दृष्टि से इन बातो का ध्यान रखना आवश्यक है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं। सस्कृत अग्रेजी आदि मे क्रिया, एकवचन के कर्त्ता के साथ एक वचन मे होती है किन्तु फारसी, हिन्दी, आदि मे आदरार्थ मे एकवचन कर्त्ता के साथ बहुवचन की क्रिया आती है . शेख सादी मी गूयन्द=शेख सादी कहते है। शुद्ध व्याकरणिक दृष्टि से फारसी मे 'गोयद' तथा हिन्दी मे 'कहता है' होना चाहिए किन्तु होता है 'मी गूयन्द' और 'कहते हैं'। इसी तरह हिन्दी मे प्रश्नवाचक तथा उत्तम पुरुप को छोडकर अन्य अधिकांश सर्वनामो के एक वचन रूपो के स्थान पर आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। तू-तुम, वह-वे, यह-ये, जिसे-जिन्हे। उत्तम पुरुप मे अब 'मैं' के स्थान पर 'हम' का ही प्रयोग अधिक हो रहा है।

विश्व की अनेक भापाओ मे ऐसी बहुत सी सज्ञाएँ हैं जिनके बहुवचन के रूप प्राय नही प्रयुक्त होते। अंग्रेजी मे अगणनीय (noncountable) सज्ञाएँ इसी

प्रकार की हैं। जैसे copper, tin wood, (लकड़ी) iron kindness, air, good, force इनके प्रयोग एकवचन में ही होते हैं। यदि उनके बहुवचन के रूप बनाए जाएं तो अर्थ बदल जाते हैं coppers=तांबे के सिक्के, tins=टिन के डिब्बे, woods=जंगल, irons=बेड़ियां kindnesses=कृपापूर्ण कार्य (बहु व०) airs=अकड़, goods=सामान, forces=सेनाएं।

कुछ शब्दों के एकवचन में दो अर्थ होते हैं। किन्तु बहुवचन केवल एक अर्थ में ही होता है। उदाहरण के लिए people (१ राष्ट्र, २ लोग)—peoples (कई राष्ट्र), Practice (१ आदत २ अभ्यास)—practices (आदतें)।

कुछ शब्दों के दो बहुवचन होते हैं किन्तु दोनों के दो अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ अंग्रेजी में cloth-cloths=बिना सिले कपड़े, clothes=पोशाक, brother brothers=एक मां-बाप के लड़के bretheren=एक समाज या सम्प्रदाय के सदस्य die dies=सिक्के की मुहर, dice खेल की गोटियां।

कुछ भाषाओं में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो सर्वदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में 'दर्शन' ऐसा ही शब्द है। उनके दर्शन हुए, आपके दर्शनों के लिए आया हूं। 'घुघराला' की भी यही स्थिति है। यह घुघराले रूप में ही प्रयुक्त होता है। घुघराले बाल। अंग्रेजी में भी ऐसे शब्द हैं cattle, people, poultry।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो अपनी रूपरचना की दृष्टि से बहुवचन लगते हैं किन्तु वे एकवचन के होते हैं और उनका प्रयोग एकवचन में ही होता है physics news mechanics innings politics। हिन्दी में लड़के घोड़े, बच्चे गदहे आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। उदाहरणार्थ

उस लड़के का क्या नाम है?
राम घोड़े पर है।

अनुवादकों के सामने वचन संबंधी एक अजीब समस्या कभी-कभी आ जाती है। एक भाषा में जहां एकवचन का प्रयोग होता है वहां दूसरी भाषा में बहुवचन का होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी अंग्रेजी में

तुम्हारा चश्मा कहां है?
Where are your spectacles?

इसी प्रकार कैंची=scissors चिमटा=tongs संड़सी=pincers दराज=drawers पाजामा=trousers खसरा=measles ग्लास्टा=

mumps, बिलियर्ड=billiards, कहानी, इतिहास=annals, धन्यवाद= thanks।

अनेक भाषाओ मे बहुत से शब्दो के एकवचन तथा बहुवचन दोनो मे एक ही रूप होते है। हिन्दी मे आकारात पुल्लिग शब्दो को छोडकर अन्य सारे पुल्लिग शब्द इसी प्रकार के है। उनके मूलरूप बहुवचन अपरिवर्तित रहते है .

(१) उसका एक हाथ कट गया।
उसके दो हाथ है।
(२) वह अच्छा कवि है।
वहाँ बहुत से कवि आये हैं।
(३) मेरा साथी कहाँ है ?
मेरे साथी कहाँ है ?
(४) वह साधु आ गया।
वे साधु आ गये।
(५) भागो, भालू आया।
भागो, भालू आये।

अग्रेजी मे sheep, deer, gross, hundred (सख्या के बाद four hundred), thousand (सख्या के बाद three thousand)।

प्रयोग मे इन अनियमिताओ के प्रति असावधान होने से प्राय· गलतियाँ हो जाती है।

काल

कुछ अपवादो को छोडकर ससार की अधिकाश भाषाओ मे रूपरचना या रूपरचना और वाक्यरचना के आधार पर क्रिया रूप तीन कालो के होते है। अग्रेज़ी मे रूपरचना के स्तर पर दो ही काल है वर्तमान तथा भूत। भविष्य वाक्यरचना के आधार पर बनाया जाता है। हिन्दी मे भी यही स्थिति है। वहाँ भी रूप के स्तर पर दो ही काल है। वर्तमान और भूत। भविष्य वाक्य के स्तर पर है। यो क्रिया और काल सम्बन्धी प्रयोग प्राय अधिकाश भाषाओ मे बडे जटिल है, और प्रयोक्ता को उनका ध्यान रखना चाहिए। यहाँ उदाहरण स्वरूप काल को लेकर एक दो बातो की ओर सकेत किया जा रहा है। रूपो को काल का नाम देना अनेक भाषाओ मे बहुत भ्रामक है। उदाहरण के के लिए हम हिन्दी ही ले। 'राम खा रहा है' मे 'खा रहा है' ये तीन शब्द मिलकर वर्तमान काल का बोध करा रहे है, किन्तु ये ही तीन शब्द 'राम कल मोहन के यहाँ खाना खा रहा है' भविष्य काल का बोध कराते है। इसी प्रकार 'राम छत पर से गिरा और उसका सर फट गया' मे 'गिरा' भूतकाल

का द्योतक है, किन्तु जल्दी पकड़ो राम छत पर से गिरा में गिरा भविष्य का द्योतक है। वस्तुतः ऐसी भाषाएं जहाँ एक काल की क्रिया एक से अधिक के काम करती हैं, वहाँ रूप विशेष को विशेष काल का न कहकर रूप को १, २, ३ या क, ख, ग आदि कुछ भी काल निरपेक्ष नाम देकर उसके विभिन्न प्रयोग बता देना अधिक वैज्ञानिक है। संस्कृत में इसीलिए रूपों को वर्तमान भूत, भविष्य आदि न कहकर लट, लङ, लिट, लुङ, लुट, लृट आदि कहा गया और उनके प्रयोग समझा दिये गये। हिन्दी तथा अंग्रेजी आदि के लिए भी ऐसा करना प्रयोग और विवेचन दोनों ही दृष्टियों से कदाचित अधिक वैज्ञानिक है।

क्रम

शब्दों के प्रयोग में क्रम जिसे वाक्य में शब्दक्रम या पदक्रम कहते हैं काफी महत्त्व रखता है। क्रम में परिवर्तन से अर्थ कुछ-का-कुछ हो जाता है :

राम मोहन कहता है।

मोहन राम कहता है।

Ram killed Mohan

Mohan killed Ram

किन्तु यह बात अयोगात्मक या विश्लेषणात्मक या क्रमप्रधान भाषाओं में ही विशेष महत्त्व रखती है। पुरानी अरबी, ग्रीक, संस्कृत जैसी योगात्मक भाषाओं में शब्दों के क्रम में परिवर्तन से अर्थ में अन्तर नहीं आता।

राम मोहन अहनत।

मोहन राम अहनत्।

संस्कृत के उपर्युक्त दोनों वाक्यों में शब्द-क्रम एक नहीं है किन्तु अर्थ दोनों ही वाक्यों का एक है।

हिन्दी, अंग्रेजी, चीनी जैसी भाषाओं में शब्द-क्रम का महत्त्व है किन्तु इन भाषाओं की पुस्तकों में प्रायः कर्त्ता कर्म, क्रिया, क्रियाविशेषण आदि के क्रम का ही सामान्य उल्लेख रहता है। उदाहरण के लिए हिन्दी के बारे में कहा जाएगा कि कर्त्ता प्रारम्भ में आता है, क्रिया अन्त में और कर्म या क्रियाविशेषण बीच में। या फिर बल देने के लिए इस क्रम में परिवर्तन करके बलयुक्त को पहले रख देते हैं। वस्तुतः क्रम की ये बड़ी मोटी बातें हैं। भाषा में शब्दों के प्रयोग में क्रम और भी कई स्तरों पर काम करता है जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए वाक्य में केवल कर्त्ता, क्रिया, कर्म, क्रियाविशेषण ही नहीं उपवाक्य और सम्बन्ध भी विशेष क्रम से आते हैं। वस्तुतः क्रम की पूरी

व्यवस्था कुछ इस प्रकार है शब्द विशेष क्रम से समस्त पदो (ग्राममल्ल, मल्ल-ग्राम) तथा पदो (राम ने) मे आते है, तथा इसी प्रकार पद विशेष क्रम से पदबध (मकान की ऊपरी मजिल पर मोहन रहता है) एव उपवाक्यो मे, पदबंध विशेष क्रम से उपवाक्यो या वाक्यो मे और उपवाक्य विशेष क्रम से वाक्यो मे आते है। इन क्रमो का ध्यान न रखने पर कभी तो कुछ अर्थ ही नही निकलता और कही भाषा की सहज गति प्रभावित होती है और वाक्य अजीब-सा लगने लगता है।

यहाँ हिन्दी को लेकर क्रम-सम्बन्धी कुछ बाते ली जा रही हैं। हिन्दी मे विशेषण का प्रयोग कभी तो सज्ञा के पूर्व होता है ·

अच्छा लडका

और कभी सज्ञा के बाद होता है

लडका अच्छा है ·

पहले को विशेष्य विशेषण और दूसरे को विधेय विशेषण कहते हैं। प्राय यह समझा जाता है कि सभी विशेषण शब्द इन दोनो क्रमो मे आ सकते है। किन्तु वास्तविक स्थिति यह नही है। हिन्दी मे ऐसे विशेषण भी है जो संज्ञा के पूर्व नही या नहीं के बराबर आते है। उनका प्रयोग विधेय विशेषण के रूप मे ही प्राय होता है। उदाहरण के लिए 'वे अग्रसर हुए,' 'मैं इस बात से अवगत हूँ' 'वह देश पर कुर्बान हो गया' 'मुझे यह स्थिति गवारा नहीं' आदि मे अवगत, कुर्बान, गवारा ऐसे ही है। इस दृष्टि से अभी तक कार्य नही हुआ है। मुझे विश्वास है कि ऐसे शब्द काफी मिल सकते है, जिनका प्रयोग विशेष्य के पूर्व या तो बिल्कुल नही होता या बहुत हा कम होता है और वह भी विशेष प्रकार की रचनाओ मे। हिन्दी विशेषणो के प्रयोग को पूरी तरह समझने के लिए इनका सकलन एवं विश्लेषण आवश्यक है।

इसी प्रकार 'कलाँ' और 'खुर्द' ऐसे शब्द है जो केवल स्थानवाचक-नामो के बाद ही ('बडे' और 'छोटे' के अर्थ मे) आते है, शेरपुर कलाँ, शेरपुर खुर्द। कभी-कभी विशेषणो की भी विशेषता बताने वाले विशेषणो का प्रयोग हिन्दी मे होता है जिन्हे प्रविशेषण कहा जा सकता है। इनके भी क्रम की एक सामान्य व्यवस्था है। उदाहरण के लिए 'वह बहुत अधिक सुन्दर है' तो प्रयोग होता, हैं किन्तु 'वह अधिक बहुत सुन्दर है' नही होता। ऐसे ही 'वह बड़ा धूर्त है', 'वह बहुत धूर्त है' तो प्रयुक्त होते हैं किन्तु 'वह बडा बहुत धूर्त है' नही होता, इसी तरह 'बडा भारी' या 'निहायत घटिया' तो प्रयोग मे आते हैं किन्तु 'भारी बडा' या 'ज्यादा बहुत' आदि नही। इस दिशा मे कार्य अपेक्षित है। ऐसे

प्रयोगो के भीतर एक व्यवस्था है जिसकी जानकारी ठीक प्रयोगो के लिए आवश्यक है।

कभी-कभी एक से अधिक विशेषण एक साथ आते है और उनमे भी एक सामान्य क्रम होता है। उदाहरण के लिए यदि सार्वनामिक और गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अपेक्षित हो तो सामान्यत सार्वनामिक पहले आयगा तथा गुणवाचक बाद मे इतनी अच्छी पुस्तक यह बड़ा घोड़ा यह सुन्दर चित्र वह काला आदमी। सख्यावाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हो तो सख्यावाचक पहले आयेगा दो काले कुत्ते, सात खूखार शेर। सम्बन्धवाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हो तो पहले सम्बन्धवाचक आयगा उसका सफेद रूमाल, मेरी काली पेंसिल। सम्बन्धवाचक सख्यावाचक तथा गुणवाचक हो तो इसी क्रम से आयेंगे मोहन की एक नई पुस्तक माता की दो सुनहरी चूडियाँ। सख्यावाचक, प्रविशेषण गुणवाचक हो तो वे भी इसी क्रम से प्रयुक्त होगे एक बड़ी अच्छी पुस्तक, दो बड़े अच्छे घर।

यह तो विभिन्न प्रकार के विशेषण थे। कभी-कभी एक विशेष्य के साथ एक से अधिक गुणवाचक विशेषण भी आते है और उनका भी एक विशेष क्रम ही प्राय प्रयुक्त होता है। पुराना लाल कोट, उसकी काली बडी आँखें सफेद ऊँची इमारत, अच्छा भला आदमी। कभी कभी क्रम बदला भी जा सकता है किन्तु तब अर्थ बदल जाता है अच्छा-खासा आदमी — खासा अच्छा आदमी, काली बडी आँखें — बड़ी काली आँखें बडा भारी पुस्तक — भारी बडी पुस्तक।

लगभग या निश्चय का भाव व्यक्त करने के लिए कभी-कभी एक से अधिक सख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग होता है। उनका भी एक निश्चित क्रम होता है कम पहले अधिक बाद मे एक दो दो-तीन, दो चार दस बीस पचास साठ सत्तर अस्सी सौ-दो सौ चार सौ दस बीस पचास। किन्तु इनमे भी कुछ प्रयोग अपवाद स्वरूप ऐसे भी हैं जिनमे दोनो प्रकार के प्रयोग चलते है पचास-सौ, सौ पचास पाँच सौ-हजार, हजार-पाँचसौ पाँच दस दस पाँच पच्चीस पचास पचास पच्चीस।

यहा हिन्दी से कुछ थोडे से उदाहरण थे। वास्तविक स्थिति यह है कि सभी भाषाओ मे विशेषणो के प्रयोग मे क्रम सबधी अनेकानेक नियम काम करते हैं। अभी तक विश्व की किसी भी भाषा मे प्रयुक्त इन नियमों पर काम नही हुआ है।

अव्यय के प्रयोग मे भी क्रम का महत्त्व कम नही है। अव्यय शब्द हिन्दी वाक्यो मे प्राय चार स्थानो पर आते हैं :

मुड़ते ही शेर ने बैल की पीठ पर अपना पंजा इतनी ज़ोर से मारा कि धराशायी हो गया। इनमे भी विशेषक्रम होता है, जिसमे कुछ सीमा तक ही परिवर्तन किये जा सकते हैं। 'कि' को उपर्युक्त वाक्य मे नही हटा सकते। पहले तीन को, तीन के स्थान पर दो (शेर ने मुडते ही बैल की पीठ पर) या एक (मुडते ही बैल की पीठ पर इतनी ज़ोर से) स्थान पर कर सकते हैं, किंतु क्रम को सामान्यत नही बदल सकते जब तक कि किसी पर बल देना अभीष्ट न हो।

जब एक से अधिक क्रिया शब्दो का एक वाक्य मे प्रयोग हो तो उनमे भी विशेष क्रम होता है सेना बढती चली आ रही है, अब दरवाज़ा खोल दिया जा सकता है। मुख्य अर्थ की द्योतिका क्रिया (खोल) पहले आती है, उसके बाद अर्थरजक सहायक क्रिया (देना), फिर वाच्यसूचक (जा) फिर सक-वर्गीय शब्द (सक, चुक आदि) और अन्त मे 'होना' के रूप।

क्रिया के साथ भर, ही, मात्र, तो, भी, मत, नही, न का प्रयोग भी अवधारण या निषेध के लिए होता है। ये भी क्रम मे स्वतत्र नही है। इनकी सीमाएँ है, उदाहरणार्थ

पुस्तक नही खरीदी जा सकती।
पुस्तक खरीदी नही जा सकती।

तो ठीक हैं किन्तु,

पुस्तक खरीदी जा नही सकती।

अल्पप्रयुक्त है और आता भी है तो विशेष अर्थ मे। दूसरा उदाहरण है

सांप को नही मारा जा सकता था। (बहुप्रयुक्त)
सांप को मारा नही जा सकता था। (प्रयुक्त)
सांप को मारा जा नही सकता था। (अल्पप्रयुक्त)
सांप को मारा जा सकता नही था। (प्राय अप्रयुक्त)
सांप को मारा जा सकता था नही। (प्राय. अप्रयुक्त)

इस तरह प्रयोग मे क्रम पर सार्थकता, अर्थ की सूक्ष्मता तथा भाषा के प्रवाह की सहजता निर्भर करती है।

द्विअर्थी प्रयोग

कोई भी भाषा सभी स्तरों पर बहुत स्पष्ट नहीं होती। अनेक प्रयोग ऐसे होते हैं, जिनके दो या अधिक अर्थ होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि व्याकरणिक रचना को शत प्रतिशत विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। हिन्दी से ही उदाहरण लें

राम को पाजामा कुर्ता अच्छा नहीं लगता।

इसके दो अर्थ हैं

(१) राम को पाजामा कुर्ता पसन्द नहीं है।
(२) राम को पाजामा-कुर्ता फबता नहीं।

इसी प्रकार

राधा गाने वाली है।

इसके भी दो अर्थ हैं

(१) राधा अब गाने जा रही है या गाना शुरू करने वाली है।
(२) गाना उसका पेशा है।

राम को भी खिलाना।

इसके भी दो अर्थ हैं

(क) राम को भी खेल में मिलाओ।
(ख) राम को भी खाना खिलाओ।

एक और उदाहरण लें

मोहन राधा के यहाँ जाता होगा।

इसके भी दो अर्थ हैं

(१) मोहन इस समय राधा के यहाँ जा रहा होगा।
(२) मोहन राधा के यहाँ जाया करता होगा।

ऐसी द्विअर्थी रचनाएँ किसी न किसी स्तर पर अधिकांश भाषाओं में मिलती हैं। हर भाषा के ऐसे सारे प्रयोगों को सूचीबद्ध कर लेना तथा कि प्रकार प्रकरण से या अतिरिक्त शब्द के प्रयोग से संदिग्धता को दूर किया जा सकता है यह खोज निकालना उस भाषा के प्रयोग में स्पष्टता लाने या इस प्रकार की अस्पष्टता यथासाध्य न लाने देने के लिए आवश्यक है। अभी तक किसी भी भाषा में इस दृष्टि से कोई संतोषजनक कार्य नहीं हुआ है।

बोलने की दृष्टि से बलाघात, सुरलहर, अक्षर-विभाजन तथा सगम या विराम के ठीक प्रयोगो की जानकारी भी बडी आवश्यक है।

ये थे सक्षेप मे प्रयोग-सबधी कुछ सकेत। स्पष्ट है कि भाषा के ठीक प्रयोग एव उन्हे ठीक समझने के लिए भाषा की प्रयोग विषयक विशिष्टताओ की जानकारी अनिवार्यत आवश्यक है।●

अर्थविज्ञान अध्याय ८

ध्वनि शब्द का शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा है। शब्द की सार्थकता इस अर्थ के ही अर्पण में है। वस्तुतः अर्थ के अर्पण के लिए ही भाषा का प्रयोग होता है। इस तरह अर्थ भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कुछ शब्दों (जैसे ध्वन्यात्मक आदि) को छोड़ कर यादृच्छिक है। घ ओ ड आ के मिले रूप से घोडा (ध्वनि) का घोड़े के अर्थ से सहजात सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध केवल समाज का माना हुआ है। यदि समाज यह तय कर ले कि कल से क का 'घोड़ा' के लिए प्रयोग होगा तो कल से क का अर्थ घोड़ा होने लगेगा। इसी प्रकार यदि सब लोग स्वीकार कर लें तो कल से घोड़ा शब्द का अर्थ फूल आदमी घर या कुछ भी हो सकता है। प्राचीन भाषाशास्त्रियों ने शब्द और अर्थ को एक माना है एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ (वाक्यपदीय २ ३१)। तुलसी ने भी कहा है गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। कालिदास भी कहते हैं वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये (रघुवंश १ १)।

मैं इस परम्परागत मान्यता से बहुत सहमत नहीं हूँ। हम प्रायः पाते हैं कि शब्द बदल जाता है किन्तु अर्थ वही रहता है (गृह घर कृष्ण-कान्ह, सपत्नी सौत) और दूसरी ओर अर्थ बदल जाता है किन्तु शब्द ज्यों-का-त्यों रहता है (कुशल—मूल अर्थ कुश उखाड़ने में प्रवीण परवर्ती अर्थ दक्ष प्रवीण—मूल अर्थ वीणा बजाने में प्रवीण परवर्ती अर्थ दक्ष)। दोनों एक होते तो एक के परिवर्तन से कदाचित् दूसरा भी परिवर्तित हो जाता।

अर्थ है क्या और उसकी प्रतीति कैसे होती है? वस्तुतः अर्थ प्रतीकात्मकता में है। कलम शब्द कलम कहलाने वाली वस्तु का प्रतीक है और अर्थ वस्तु तथा शब्द का प्रतीकात्मक सम्बन्ध। यहाँ यह बात भी सकेत करने की है कि शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं होता अपितु उसका अर्थ कथन

प्रतीकात्मक या माना हुआ होता है। अर्थ की प्रतीति वाक्य पर निर्भर करती है।[1] इसी लिए वाक्य ही भाषा का चरम अवयव है। वाक्यो का प्रयोग करते करते हम इतने अभ्यस्त हो जाते है कि अलग शब्द सुनकर भी हममे अर्थ की प्रतीति होती है, किन्तु मूलत वह वाक्य पर ही आश्रित है। दूसरे शब्दो मे शब्द का अर्थ प्रयोगाश्रित है। कोशार्थ भी प्रयोग या प्रयोगो का ही सार होता है।

भर्तृहरि ने अर्थ-निश्चय के सम्बन्ध मे कहा है—

वाक्यात्प्रकरणादर्थादौचित्याद्देशकालतः
शब्दार्था. प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् (२-३१६)

अर्थात् केवल रूप जान लेने से अर्थ का पता नही चलता, इसके लिए वाक्य (अर्थात् वाक्य मे प्रयोग), प्रकरण (अर्थात् बात कहने का संदर्भ) अर्थ, औचित्य (अर्थात् प्रसग मे उक्त अर्थ का औचित्य), देश, (इसका अर्थ लोगो ने तरह-तरह से किया है, मेरे विचार मे देश से अर्थ यह है कि देश या स्थानभेद से अर्थ भेद हो जाता है। उदाहरण के लिए बनारस मे 'मौसा' शब्द माँ की बहन का पति मात्र है, किन्तु हरियाना मे भाई का ससुर भी मौसा है) काल, (इसका अर्थ भी लोगो ने दूसरे रूप मे किया है, किन्तु प्रस्तुत पक्तियो के लेखक के विचार मे सकेत यह है कि काल-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है) जानना अपेक्षित है।

इसी प्रकार तत्त्वचिंतामणि पर विचार करते हुए मथुरानाथ ने अर्थ जानने के लिए वृद्धव्यवहार, आप्तवाक्य, व्याकरण, कोश, वाक्यशेष, विवृति, सिद्धपदसान्निध्य और उपमान का उल्लेख किया है, जिनके अर्थ क्रमश. 'वयोवृद्धो द्वारा प्रयोग', 'प्रामाणिक व्यक्तियो द्वारा प्रयोग', 'व्याकरणिक रचना का ज्ञान', 'कोशार्थ', 'संबद्ध सदर्भ के अन्य शब्द तथा वाक्य', 'व्याख्या', 'ज्ञात शब्दो के साथ शब्द का प्रायोगिक संबंध' तथा 'उपमान द्वारा अर्थ-स्पष्टीकरण' है।

कहना न होगा कि उपर्युक्त बातो मे अर्थ का सर्वप्रमुख प्रयोग ही स्पष्टक है। अन्य जितने हैं वे भी मूलत· प्रयोग पर ही आधारित है। अपवाद केवल व्याकरण है।

अर्थविज्ञान इसी अर्थ के अध्ययन का विज्ञान है। जैसा अन्यत्र सकेत किया जा चुका है, यह अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक और तुलनात्मक तीनो प्रकार का हो सकता है।

---

१. वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थकस्याववोधत.
मपद्यते शाब्दवोधो न तन्मात्रस्य वोधत. (शब्दशक्ति प्रकाशिका १२)

अर्थ के वर्णनात्मक अध्ययन का अर्थ है किसी एक समय में किसी शब्द के अर्थ का विवेचन। ध्वनि, रूप या वाक्य की तुलना में अर्थ अधिक सूक्ष्म होता है इसी कारण इसका अध्ययन भी अधिक कठिन है, जिसका परिणाम यह हुआ है, कि अर्थ क्षेत्र में वर्णनात्मक या संरचनात्मक दृष्टि से जितना काम हुआ है, उतना अर्थ को लेकर नहीं हुआ है।

किसी एक काल में किसी शब्द के कौन कौन से अर्थ हैं इसका पता—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—प्रयोग से चलता है। इसका आशय यह हुआ कि भाषा के सारे प्रयोगों को एकत्र करके ही इस बात का पता लगाया जा सकता है। इस दृष्टि से अच्छे से अच्छे कोश भी हमारी बहुत सहायता नहीं कर पाते।

शब्दों के अर्थ के वर्णनात्मक अध्ययन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि किसी भी भाषा में किसी एक समय में शब्द का अर्थ तीन प्रकार का होता है —

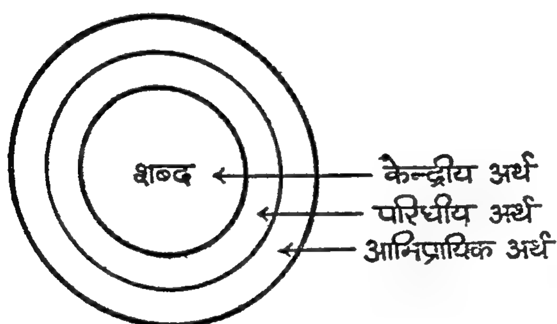
(क) केन्द्रीय अर्थ—यह उस शब्द का उस काल में मूल, प्रकृत या सामान्य अर्थ होता है। इसी अर्थ में यह शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। बच्चा घर शाकाहारी के केन्द्रीय अर्थ में प्रयोग हैं उसका बच्चा मर गया उस। मे सौ घर हैं, मैं शाकाहारी हूँ, मांस और अंडे नहीं खाता।

(ख) परिधीय अर्थ—परिधीय अर्थ केन्द्रीय अर्थ से ही विकसित होता है। यह किसी एक काल में एक से अधिक भी हो सकता है। 'राम २५ का है तो क्या, अभी तो बच्चा है, ये बातें नहीं समझ सकता।' में बच्चा का अ 'नासमझ' है। इसी प्रकार 'भोला भाला' अपरिपक्व आदि भी इस परिधीय अर्थ हैं। परिधीय अर्थ में शब्द का प्रयोग प्रायः केन्द्रीय अर्थ की तुलना में कम होता है। परिधीय अर्थ के कुछ और उदाहरण हैं यह बा उसके मन में घर कर गई है, 'वह तो पूरा बनिया है, एक पैसा नहीं दे सकता 'क्या मुहर्रमी सूरत बना रखी है, 'भारत में जाने कितने लोग हैं जिनको दो जून रोटी नहीं मिलती।

(ग) आभिप्रायिक अर्थ—केन्द्रीय अर्थ तो सुनिश्चित अर्थ होता है औ परिधीय अर्थ केन्द्रीय से ही विकसित होता है। वह भी प्रायः निश्चि रहता है। किसी शब्द का आभिप्रायिक अर्थ वहाँ मिलता है जहाँ को

व्यक्ति किसी ऐसे विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करने के अभिप्राय से उस शब्द का प्रयोग करता है, जिस अर्थ मे सामान्यतया वह शब्द प्रयुक्त नही होता। शैलीकार साहित्यिको के लेखन मे ऐसे प्रयोग कभी-कभार मिल जाते है : 'वह आदमी तो बिल्कुल ही शाकाहारी है, उसके साथ लडकी भेजने मे भला क्या परेशानी हो सकती है', 'अरे भला राम क्या खाकर थानेदार बनेगा, बिल्कुल ही शाकाहारी है, थानेदार का पद पा जाने से थोडे कोई थानेदार बनता है', 'आज पत्नी का पत्र मिला मगर बिल्कुल ही शाकाहारी, कही भी कोई प्रेम-मुहब्बत की बात नही' 'कोयला कोयला ही रहेगा चाहे सौ मन साबुन खा जाय'।

इस तरह पहले अर्थ मे शब्द का प्रयोग सर्वाधिक होता है, दूसरे मे कम और तीसरे मे बहुत कम। बहुप्रयुक्त होने पर कोई आभिप्रायिक अर्थ परिधीय बन सकता है तथा परिधीय अर्थ (यद्यपि बहुत कम) केन्द्रीय। तीनो अर्थो को चित्र रूप मे यो दिखा सकते है।



ध्वनि (स्वन) विज्ञान और रूपविज्ञान आदि के क्षेत्र मे ध्वनिग्राम (phoneme)—सध्वनि (allophone) तथा रूप ग्राम (morpheme)—सरूप (allomorph)की बात बहुत प्रचलित है। अर्थविज्ञान मे भी ऐसे विश्लेषण की पूरी गुंजाइश है।

अर्थग्राम (sememe) किसी शब्द के सारे अर्थों का योग है और सअर्थ (alloseme) विभिन्न अर्थ हैं जो अलग-अलग संदर्भो मे आते हैं। ये अलग-अलग संदर्भ ही वितरण हैं। इस दृष्टि से किसी भी भाषा का कोई व्यवस्थित विवेचन अभी तक मेरे देखने मे नही आया। यहाँ एक हिन्दी शब्द 'पानी'

द्वारा इस बात को उदाहृत किया जा सकता है। मान लीजिए पानी के चार प्रयोग हमने लिए

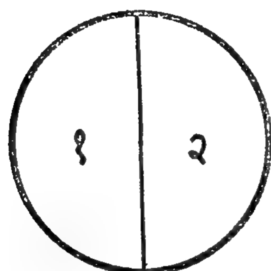
(१) आसाम का पानी अच्छा नहीं है। (जलवायु)
(२) सबके सामने उसका पानी उतार लिया। (इज्जत)
(३) पानी आया छतरी तान लो। (वर्षा)
(४) यह पेड़ पाव पानी का है। (वय)

इसमें किसी में भी पानी का सामान्य अर्थ नहीं है। पानी का सामान्य अर्थ इन अर्थों की तुलना में अधिक प्रयुक्त होता है तथा आर्थिक संरचना की दृष्टि से वही केन्द्र में है। अन्य अर्थ विशेष प्रसंग या संदर्भ के हैं। यदि हम थोड़ी देर के लिए मान लें कि पानी शब्द के सामान्य अर्थ को छोड़कर केवल ये ही चार अर्थ हिन्दी में चलते हैं तो कहा जा सकता है कि पानी के अर्थ या अर्थग्राम के पाँच सदस्य हैं। जलवायु अर्थ में यह एक प्रसंग में आता है 'इज्जत' अर्थ में दूसरे में 'वर्षा' अर्थ में तीसरे में, 'वय' अर्थ में चौथे में, और सामान्य, मूल, प्रकृत या केन्द्रीय अर्थ में अन्यत्र। इसी प्रकार भाषा के अधिकांश शब्दों के सदस्यों तथा उनके वितरणों का पता लगाया जा सकता है।

वर्णनात्मक स्तर पर शब्द के अध्ययन की यह एक पद्धति थी। दूसरी पद्धति हो सकती है उसी अर्थ क्षेत्र के अन्य शब्दों के अर्थ के संदर्भ में शब्द के अर्थ को देखना। अर्थ इतना सूक्ष्म होता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर उसे प्रायः दूसरे समानार्थी शब्दों के साथ अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। पीछे प्रयोगविचार में कुछ जोड़ों को लेकर देखा गया था। वहाँ हमने देखा कि कुछ जोड़ों में अर्थ का अन्तर था। वैसे शब्दों में एक का अर्थ दूसरे की पृष्ठभूमि में अधिक स्पष्ट होता है एक उदाहरण लें— कष्ट का अर्थ यों तो कोशों में दुःख दे दिया जाता है तथा दुःख का कष्ट किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि इन दोनों में किसी का भी ठीक अर्थ दूसरे के संदर्भ या दूसरे की तुलना में अधिक अच्छी तरह समझा या समझाया जा सकता है। दुःख या कष्ट दोनों समानार्थी-जैसे हैं किन्तु दुःख मानसिक है तो कष्ट शारीरिक।

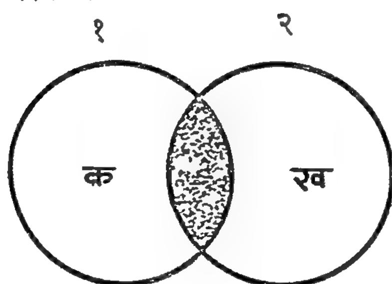
वस्तुतः होता यह है कि किसी भाव या अर्थ का एक क्षेत्र होता है और यदि उसके लिए एक से अधिक शब्दों—मान लें दो—का प्रयोग होता है तो कभी तो दोनों शब्द एक दूसरे के पूरक होते हैं अर्थात् उस अर्थ क्षेत्र के कुछ

भाग को एक व्यक्त करता है तथा शेष को दूसरा—



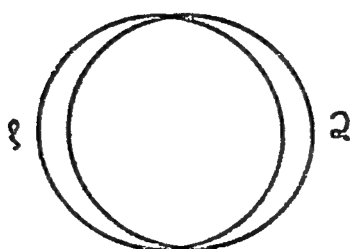
चित्र अ

और कभी कुछ प्रयोगो मे दोनो समानार्थी होते है और कुछ मे भिन्न। उदाहरण के लिए इस चित्र में काले भाग मे—



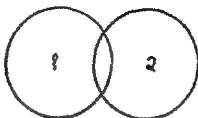
चित्र आ

दोनो का प्रयोग हो सकता है किन्तु खाली क भाग मे एक का तथा ख मे दूसरे का। प्रयोग या अर्थ का यह अन्तर कभी तो बहुत कम



चित्र इ

होता है और कभी बहुत अधिक



चित्र ई

उदाहरण के लिए आधार के लिए अंग्रेज़ी के दो शब्द—'बेस' (base) तथा 'बेसिस' (basis)—लें। इन दोनों के प्रामाणिक अर्थ या प्रयोग में चित्र 'अ' वाली स्थिति है। 'बेस' का प्रयोग ठोस वस्तुओं के लिए (पहाड़) होता है, जबकि 'बेसिस' आलंकारिक रूप से तर्क, आरोप, विश्वास जैसे सूक्ष्म के लिए। इसी प्रकार 'चाइल्डलाइक' और 'चाइल्डिश' भी हैं। पहला अच्छे अर्थ में आता है, दूसरा बुरे में। कुछ लोग कभी-कभी दोनों को कुछ संदर्भों में समानार्थी जैसा प्रयोग करते हैं तो चित्र ई वाली स्थिति होती है। चित्र इ वाली स्थिति कभी नहीं होती।

उद्देश्य ध्येय की स्थिति चित्र इ जैसी है। अधिकांश प्रयोगों में ये प्रायः एकार्थी जैसे आते हैं किन्तु अनेक प्रयोगों में उद्देश्य वह होता है जिसे पाने के लिए व्यक्ति प्रयत्नशील होता है, ध्येय वह है जिसपर प्रयत्न के समय हमारा ध्यान रहता है। इस तरह उद्देश्य में प्रयत्न का भाव प्रमुख है तो ध्येय में प्राप्य पर ध्यान का।

चित्र अ वाली स्थिति के कुछ और उदाहरण भी लिए जा सकते हैं। रोग के लिए हिन्दी में आधि और व्याधि दोनों शब्द चलते हैं किन्तु दोनों के अर्थ में भेद है। भेद यह है कि आधि मानसिक बीमारी के लिए है तो व्याधि शारीरिक के लिए। इसी प्रकार हथियार के लिए अस्त्र और शस्त्र दो शब्द हैं। प्रथम में वे अस्त्र आते हैं जिन्हें फेंक कर मारते हैं जैसे तीर, दूसरे में वे आते हैं जिन्हें हाथ में पकड़े कर मारते हैं जैसे तलवार। आविष्कार और अन्वेषण भी इसी प्रकार के हैं। आविष्कार जिसका करते हैं उसका पहले से अस्तित्व नहीं रहता। अन्वेषण जिसका करते हैं उसका अस्तित्व पहले से रहता है, अन्वेषक उसे केवल सामने ला देता है।

इस प्रकार के शब्द-वर्गों के अर्थ या अर्थ पर आधारित प्रयोग के स्पष्ट अतर का अध्ययन तुलना के आधार पर ही अच्छी तरह किया जा सकता है।

एक शब्द के एकाधिक अर्थो के आपसी सबंध का अध्ययन भी इस वर्णना-त्मक अर्थ-विज्ञान के अतर्गत ही आएगा। यों इसका ऐतिहासिक अध्ययन भी अपेक्षित है कि कैसे पानी का अर्थ इज्ज़त, दर्प आदि हो गया।

कभी-कभी कुछ भाषाओ मे दुहरे प्रयोग चलते है। हिन्दी मे भला-बुरा, खरा-खोटा, ऊँच-नीच इसी वर्ग के है। ऐसे प्रयोगो मे प्राय हम पाते है कि बुरा या नकारात्मक या कोई भी एक भाव ही प्रमुख रहता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कुछ शब्दो के साथ आकर कुछ शब्द अपना अर्थ प्राय खो-सा देते है। 'उसने खूब खरी-खोटी सुनाई' मे 'खरी' का भाव तो बहुत नही दबा है क्योकि वह स्वय कम तीक्ष्ण नही है, किन्तु 'उसने बहुत बुरा-भला कहा' मे 'भला' का अर्थ बिल्कुल नही है। 'अगर फिर कुछ कहा-सुना तो ठीक न होगा' मे 'सुना' की स्थिति भी ऐसी ही है। 'खडन-मडन' के अनेक प्रयोगो मे 'खडन' का ही अर्थ रहता है।

कुछ उपसर्ग भी अर्थ की दृष्टि से इसी प्रकार के है। 'बे' उपसर्ग बेकार, बेरहम, बेजान मे तो पूरी तहर सार्थक है किन्तु भोजपुरी, मे अवधी, व्रज आदि मे 'फजूल' के अर्थ मे प्रयुक्त शब्द 'बेफजूल' मे 'बे' निरर्थक है।

इसी प्रकार 'अनगढ़' 'अनपढ' 'अनजान' मे 'अन' सार्थक है किन्तु व्रज भाषा-क्षेत्र के कुछ भागो (जैसे आगरा की बाह् तहसील) मे 'गैर' के अर्थ मे प्रयुक्त शब्द 'अनगैरी' मे निरर्थक है। 'दुहरे नकारात्मक सकारात्मक' बना देते है' (double negative makes positive) का सिद्दात यहाँ नही चलता। मूलत' ऐसे प्रयोगो मे, प्रयोक्ता के मन मे कदाचित 'बहुत अधिक' का भाव रहा हो। अर्थात् 'बेफजूल'=बहुत अधिक फजूल या 'अनगैरी'=बहुत अधिक गैर। किन्तु अब तो दोनो ही 'फजूल' और 'गैर' का ही अर्थ देते है। अवधी मे 'वृथा' के अर्थ मे 'अबिरथा' का प्रयोग मिलता है। यह प्रवृत्ति काफ़ी पुरानी है। वैदिक साहित्य मे 'पिहित' (छिपा हुआ) के स्थान पर 'अपिहित' एकाधिक स्थलो पर आया है।

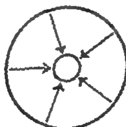
सस्कृत के स्वार्थे प्रत्यय भी इसी वर्ग के है। मूलत. वे भी कदाचित् सार्थक रहे होगे किन्तु बाद मे वे अपना अर्थ खोकर निरर्थक बन बैठे. घोट-घोटक, बाल-बालक। हिन्दी मे 'ड़' भी ऐसा ही है :—मुख-मुखड़ा, आँख-आँखडी, लग-लँगडा।

विलोमार्थ भी वर्णनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत आता है। पहला प्रश्न तो यह उठता है कि विलोमार्थ है क्या? 'भाई' का विलोम 'भाभी' है या 'बहन' या दोनों में कोई भी नहीं। विलोमार्थों का विवेचक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि सभी शब्दों के विलोमार्थी शब्द हों ही यह आवश्यक नहीं। धागा, धोती, कागज, पत्थर, गेहूँ जैसे अनकानेक शब्दों के विलोम नहीं होते। कुछ शब्दों के अलग अलग संदर्भों में अलग अलग विलोम होते हैं, पानी मिट्टी, पानी आग, काला-सफेद, काला-गोरा। जमीन का विलोम क्या है 'आसमान' या 'समुद्र'। भूरा-गोला, बड़ा छोटा, दूर-नजदीक, हलका भारी आदि थोड़े ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ सुविधापूर्वक विलोम निर्धारण हो सकता है।

शब्दों के अर्थ का ऐतिहासिक अध्ययन उपयुक्त अध्ययन की तुलना में अधिक मनोरंजक तथा सरल है। कदाचित् इसी कारण इस दिशा में कार्य भी काफी हुआ है। शब्दों के अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन का आशय यह है कि उनके अर्थ में क्या कुछ परिवर्तन हुआ है।

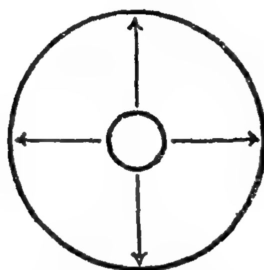
शब्दों के अर्थ में परिवर्तन तीन प्रकार का माना जाता है —

(क) अर्थ संकोच—इसमें पहले की तुलना में अर्थ संकुचित हो जाता है। उदाहरण के लिए 'मृग' का अर्थ पहले 'पशु' था, इसीलिए सिंह को 'मृगराज' (पशुओं का राजा) कहा गया। अब मृग का अर्थ 'हिरन', अर्थात केवल एक पशु है। अर्थात इसके अर्थ का विस्तार संकुचित हो गया है। इसे चित्र रूप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है—



यहाँ बड़ा वृत्त पूत्रवर्ती अर्थ है तथा छोटा वृत्त परवर्ती। इसी तरह 'मुर्ग' का पुराना अर्थ पक्षी है। इसीलिए जलपक्षी को 'मुर्गाबी' (मुग+आब+ई) कहते हैं। अब मुर्ग केवल एक पक्षी है। 'वेदना' का संस्कृत में पुराना प्रयोग दुःख और सुख दोनों के लिए मिलता है, अब वह केवल दुःख तक सीमित है।

(ख) **अर्थ-विस्तार**—यह अर्थ संकोच का उलटा है। इसमे अर्थ विस्तृत हो जाता है। प्रारभ मे 'स्याही' नाम इसलिए पडा था कि वह 'स्याह' या काली



होती थी। अब स्याही का प्रयोग काली के अतिरिक्त हरी, नीली, लाल आदि स्याहियो के लिए भी होता है। इस तरह 'स्याही' शब्द का अर्थ-क्षेत्र पहले की तुलना मे विस्तृत हो गया है। 'सब्जी' भी इसी प्रकार का शब्द है। हरी होने के कारण 'सब्जी' नाम पडा था, अब तो बैंगनी (बैंगन), सफेद (मूली) प्याजू (प्याज), पीली (सीताफल) आदि सभी रग की तरकारियाँ सब्जी हो गई है। सस्कृत मे 'परश्व' का प्रयोग आनेवाले परसो के लिए तथा 'कल्य' का प्रयोग आनेवाली कल के लिए होता था, अब उन्ही से विकसित 'परसो' और 'कल' आनेवाले और बीते हुए दोनो के लिए आते है। इस प्रकार अनेक शब्दो के अर्थ मे विस्तार हो जाता है।

अर्थादेश—कभी-कभी अर्थ मे न तो विस्तार होता है, और न संकोच, बल्कि अर्थ कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसे अर्थादेश कहते है। जैसे 'गँवार' का मूल अर्थ है 'गाँव का रहने वाला' पर अब इसका अर्थ उजड्ड, असस्कृत आदि हो गया है। इसी प्रकार बौद्ध (बुद्ध के अनुयायी) का बुद्धू (मूर्ख), या 'दुर्लभ' (जिसका मिलना कठिन हो) का दुलहा (वर, पति), भी अर्थादेश के उदाहरण है। अर्थादेश किसी न किसी प्रकार के साहचर्य की भावना से होता है। नए अर्थ का सबध किसी न किसी स्तर पर पुराने अर्थ से होता है।

इन तीनो के ही उदाहरण कभी-कभी अर्थापकर्ष एव अर्थोत्कर्ष के उदाहरण स्वरूप भी रखे जाते है। अर्थापकर्ष मे अर्थ अच्छे से बुरा हो जाता है। 'हरिजन' का मूल अर्थ 'भक्त' था, अब 'अछूत' है। संस्कृत का वज्र वटुक (पक्का ब्रह्मचारी) हिन्दी मे 'वजरबट्टू' (मूर्ख) बन गया। 'हजरत ईसा' का 'हजरत' 'आप तो पूरे हजरत निकले' मे कहाँ से कहाँ चला गया है। इसके उलटे कभी-कभी अर्थ बुरे से अच्छा भी हो जाता है। संस्कृत मे 'कर्पट' का अर्थ फटा-पुराना कपड़ा है पर हिन्दी 'कपड़ा' मे ऐसा कोई भाव नही है। 'साहस'

संस्कृत में व्यभिचार शब्द जाति कुछ काम के लिए आता है किन्तु हिन्दी में यह प्रायः बुरे अर्थ में आता है। वस्तुतः अर्थापकर्ष और अर्थोत्कर्ष अर्थ परिवर्तन के स्वतन्त्र रूप नहीं हैं। उपर्युक्त तीन परिवर्तनों में ही अन्तर्भूत उनके आधार पर कुछ को एक में तथा कुछ को दूसरे में रख सकते हैं।

अब तक अर्थ परिवर्तन के रूप या दिशा के सम्बन्ध में इस नाम पर प्रायः दी जाने वाली सामग्री की चर्चा की गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषाओं में अधिकांश अर्थ परिवर्तन इसी प्रकार के होते हैं। किन्तु कुछ थोड़े अर्थ परिवर्तन ऐसे भी होते हैं जो उनसे कुछ भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए ऊपर अर्थ संकोच में इस बात का उल्लेख किया गया कि किसी विशेष अर्थ में शब्द का अर्थ क्षेत्र संकुचित हो जाता है किन्तु इसके अतिरिक्त ऐसा भी प्रायः होता है कि किसी शब्द के कई अर्थों में कालान्तर में केवल एक ही या कुछ ही अर्थ रह जाते हैं, शेष समाप्त हो जाते हैं। जैसे अंग्रेजी भाषा से भोजपुरी में आये शब्दों में एक सल्यूशन (solution) है। अंग्रेजी में सल्यूशन के कई अर्थ हैं किन्तु भोजपुरी में इसका प्रयोग केवल एक अर्थ में—और वह भी बड़े संकुचित अर्थ में—होता है। यहाँ इस शब्द का प्रयोग केवल साइकिल के ट्यूब में हुए पंचर को ठीक करने में काम आने वाले चिपचिप पदार्थ के लिए होता है। हिन्दी में 'पंचर' की भी यही स्थिति है। यह केवल रबर की चीजों में हुए छेद के लिए आता है। रबड़, पेन, मैच, बैंक, बूट, सडन आदि शब्द भी इसी श्रेणी के हैं। ऐसे बहुत अधिक शब्द हिन्दी में संस्कृत से भी आए हैं। उदाहरणार्थ अंग, अतर, अनेरा, अभार अन, अभय, आसन, जात शिष्य, पवित्र, पतन पथ, परम आदि शब्दों के प्रयोग हिन्दी में जितने अर्थों में होते हैं उतने ही अर्थों में संस्कृत में नहीं होते थे। संस्कृत में बड़े अधिक अर्थ (सबद्ध) थे। वस्तुतः किसी भी अन्य भाषा से किसी दूसरी भाषा में कोई शब्द जाता है तो प्रायः अपने सीमित अर्थ में ही जाता है। इसके कई कारण हैं। कभी तो विशेष संदर्भ में शब्द के जाने के कारण उसके साथ वही अर्थ जाता है, और शेष में नहीं जाते। कभी कभी ऐसा भी होता है, अन्य अर्थों की दूसरी भाषा में आवश्यकता नहीं रहती या रहती भी है तो उसके लिए उसका अपना शब्द प्रयोग में आता है।

कभी-कभी कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें किसी आर्थिक इकाई में अर्थ परिवर्तन नहीं होता, अपितु वह पूर्णतः समाप्त हो जाता है। पीछे इसके उदाहरण—क (बालक, घोटक), व (वफ़ज़ल) अन (अनगरी)—दिए जा चुके हैं। इन आधारों के साथ कहीं वह भी कुछ भला-बुरा कर अग

......।' तथा 'उन आवारो के साथ कही वह भी कुछ बुराकर बैठा ......' मे विशेप अन्तर नही लगता। तो क्या ऐसे प्रयोगो मे 'भला' की तरह आने वाले शब्द भी अपना अर्थ खो बैठे है या खो बैठने की ओर उन्मुख हैं ?

अर्थ-परिवर्तनो के पीछे अनेकानेक कारण काम करते है, जिनके लिए प्रस्तुत पक्तियो के लेखक की पुस्तक 'भापा-विज्ञान' का 'अर्थ-विज्ञान' शीर्षक अध्याय देखा जा सकता है।

विभिन्न शब्दो को अलग-अलग लेकर उनमे घटित अर्थ परिवर्तनो का सकारण विवेचन भी ऐतिहासिक ध्वनि-विज्ञान मे अध्ययन की एक अच्छी दिशा है। उदाहरणार्थ 'तात' से विकसित शब्द 'दादा' पितामह, बडा भाई तथा गुंडा तीनो अर्थो मे आता है। यह अध्ययनीय है कि किन कारणो से और कैसे 'तात' का अर्थ इन अर्थो मे परिवर्तित हो गया। इसी तरह किसी भी भापा के सभी या अधिकाश शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है।

तुलनात्मक अर्थ विज्ञान की एक-दो बातो की ओर ऊपर सकेत किया जा चुका है। तुलना, वर्णन और इतिहास दोनो की हो सकती है। तुलनात्मक अर्थ-विज्ञान एक भापाभापी के लिए दूसरी भापा सीखने या एक भापा से दूसरी भापा मे अनुवाद करने मे बडा सहायक होता है। ऐसा प्राय. होता है कि एक

	वेल्श	डैनिश	
१	GWYRDD	GRØN	१
२	GLAS	BLA	२
		GRA	३
३	LLWYD	BRUN	४

भापा के किसी शब्द के लिए दूसरी भापा मे प्राप्त प्रतिशब्द उस शब्द का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नही करता। उदाहरण के लिए अग्रेजी शब्द प्ले (play) के लिए हिन्दी 'खेलना' है, किन्तु बाजो के सदर्भ मे 'खेलना' से काम नहीं चलता, 'प्ले' के लिए 'बजाना' का प्रयोग करना पड़ता है। कभी-कभी इस प्रकार की

समस्याएँ और गहरी हो जाती हैं। रगा को लेकर कुछ भापाम्रा की तुलना की गई है। यहाँ एक उदाहरण लिया जा सकता है। वेल्श और डनिश भापाम्रो म रगा के लिए प्रयुक्त शब्दो के अर्थ पूरी तरह समानातर नहीं है।

पिछले पष्ठ के चित्र से स्पष्ट है कि वेल्श म इन रगो के तीन वग हैं तो उनके स्यान पर डनिश म चार हैं। वेल्श के १ स डनिश के १ का विस्तार बडा है। वह वेल्श के २ के कुछ भाग को भी अपने म समाहित कर लेता है। वेल्श का २ डनिश के १ के कुछ भाग, पूरा २ तया ३ के कुछ भाग को अपने म ले लता है। अर्थ की यह असमानता तरता अलग अलग सस्कृतिया की भापाम्रा मबहुत अधिक मिलती है। विभिन्न भापाम्रा के विभिन्न शब्दो की अर्थ सीमाए समान नही होती। अनुवादक के लिए ऐसे स्थलो पर बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। हिन्दी अग्रजी म इस श्रेणी के दर्शन फ़िलासफी या धर्म रैलिजन जसे अनेक शब्द खोजे जा सकते है। कभी-कभी सबद्ध और भौगोलिक दृष्टि से पास पास की भापाम्रो म भी यह अतर दिखाई पडता है। इस दृष्टि स एक भापा की किन्ही भी दो बोलिया का अध्ययन महत्त्वपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी म ससुर और मौसा दो शब्द हैं। भोजपुरी भापी अपने भाई के ससुर को भी ससुर कहेगा किन्तु हरियानी भापी भाई के ससुर को मौसा कहेगा। अर्थात भोजपुरी और हरियानी म ससुर और मौसा की अर्थ सीमाएँ समान नहीं हैं। भोजपुरी और ब्रज के चाचा चाची या समधी म भी इसी प्रकार का अतर है।

मूल भापा स उसस निकली भापाम्रो म अनुवाद करन म अर्थ विपयक एक दूसरी पहेली कभी कभी सामने आती है। मूल भापा के अनेक शब्द उससे निकली भापाम्रा म मूल या परिवर्तित रूप म प्रयुक्त होत हैं किन्तु अर्थ की दृष्टि स उन शब्दो म अतर रहता है। अनुवादक कभी-कभी उन्ही शब्दों को रख देन की गलती कर बठता है। लटिन म कूल्हे के लिए कोक्सा (coxa) शब्द है। किन्तु यही शब्द लटिन से निकली भापाम्रो म जाँघ (फ्रासीसी cuisse या इतालवी coscia) के अर्थ म प्रयुक्त होता है। इसी तरह सस्कृत म जघा घुटने और टखने के बीच का भाग है किन्तु हिन्दी म वह घुटन और कमर के बीच का। कटि हिन्दी म कमर है किन्तु सस्कृत म नितम्ब या कूल्हा। हिन्दी थाली और सस्कृत स्याली मूलत एक होने पर भी एकार्थी नहा हैं। सस्कृत वाटिका बगाली म घर का वाचक (बाडी) है और हिन्दी म 'बाग़बाना (बाड़ी) का।

एक ही स्रोत भाषा से दो शब्दो मे जाने पर भी शब्द का अर्थ कभी-कभी वदल जाता है। संस्कृत स्थाली हिन्दी मे थाली है। यही शब्द तामिल मे स्ताली है और वहाँ उसका अर्थ 'मिट्टी की तश्तरी' 'खाना पकाने का वर्तन' तथा 'पानी पीने का वर्तन' है। उडिया मे अंगार का अर्थ कोयला है जबकि हिन्दी मे कुछ और है। 'वही' हिन्दी मे हिसाव-किताब की होती है, उडिया मे 'वही' पुस्तक को कहते है। हिन्दी में 'जरूर' आवश्यक है, तमिल मे उसका प्रयोग 'तेजी' और 'त्वरितता' के लिए भी होता है। इसी प्रकार 'अवसर' 'आलस्य' 'उचित' 'प्रसग' तथा 'लेख' हिन्दी मे क्रमश. मौका, सुस्ती, वाजिव, सदर्भ तथा निवन्ध है तो तेलुगु मे आवश्यक, देर, मुफ्त, व्याख्यान, चिट्ठी। तुलनात्मक मे इस प्रकार के अध्ययन भी आते है।

अध्याय ९

स्वनविज्ञान (ध्वनिविज्ञान)

अपने पूरे विस्तार में भाषा के विश्लेषण की यह शाखा ध्वनि (स्वन) की दृष्टि से केवल शब्दों का ही अध्ययन नहीं करती, अपितु वाक्य स्तर की रचनाओं का भी अध्ययन करती है, किन्तु यहाँ हम इसे प्रायः शब्द-स्तर तक ही सीमित रखेंगे। वस्तुतः आज ध्वनिविज्ञान एवं ध्वनिग्रामविज्ञान के अन्तर्गत जो काम हो रहा है वह सुरलहर (intonation) वाक्य बलाघात तथा संगम (junction) आदि बातों को छोड़ कर प्रायः शब्दों के अध्ययन तक ही सीमित है। किसी भी ऐसे ग्रन्थ को उठा लिया जाय अधिकांश सामग्री शब्द तक ही सीमित मिलती है। और इसलिए उस पर आधारित निष्कर्ष भाषा के पूरे स्वरूप पर लागू नहीं हो सकते।

शब्दों का ध्वनि की दृष्टि से अध्ययन कई प्रकार से किया जा सकता है। इसका प्रारम्भिक स्वरूप तो यह हो सकता है कि किसी भाषा में प्रयुक्त शब्दों को एकत्र करके उनका ध्वनिवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय और यह पता लगाया जाय कि उस भाषा में मुख्यतः कुल कितनी ध्वनियों का प्रयोग होता है। भाषा में प्रयुक्त ये विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ ही ध्वनिग्रामविज्ञान (phonemics) में सध्वनि (allophone) कहलाती हैं। इन सध्वनियों के वितरण का अध्ययन करके उस भाषा के ध्वनिग्रामों का निर्धारण किया जाता है। ध्वनिग्राम किसी भाषा में प्रयुक्त ऐसी सध्वनियों के समूह का प्रतिनिधि होता है जो आपस में परिपूरक वितरण (complementary distribution) में होती हैं। इस तरह भाषा में सध्वनियों की संख्या काफ़ी बड़ी होती है किन्तु ध्वनिग्रामों की संख्या अपेक्षाकृत छोटी होती है। यहाँ इस विषय का और विस्तार से लेना वाञ्छनीय न होगा। लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के ध्वनिविज्ञान नामक अध्याय के ध्वनिग्रामविज्ञान शीर्षक अंश को इस संबंध में कुछ विस्तार से

लिए देखा जा सकता है। और विस्तार के लिए देखिये पाइक की पुस्तक 'फोनेमिक्स'

शब्दो मे ध्वनियाँ आसपास की ध्वनियो से प्रभावित होती हैं। होता यह है कि प्राय आगे आनेवाली ध्वनि के उच्चारण की तैयारी मे उच्चारण-अवयव पूर्ववर्ती ध्वनि का उच्चारण परवर्ती ध्वनि के अनुरूप कर देते हैं। उदाहरण के लिए जब हम 'डाकघर' शब्द बोलते हैं तो वस्तुत. 'डाकघर' नही कहते। 'घ' का उच्चारण करने के लिए स्वरतन्त्रिया पहले से एक दूसरे के समीप आ जाती है। अत' पूर्ववर्ती ध्वनि 'क' 'ग' हो जाती है। 'घ' के घोष होने के कारण 'क' का घोष रूप 'ग' हो जाता है अर्थात् घोष हो जाने की क्रिया काम करती है। इसका आशय यह हुआ कि जिस रूप मे कोई भी भाषा लिखी जाती है उसी रूप मे यदि कोई पढने का यत्न करे तो उस भाषा का स्वाभाविक उच्चारण वह नही कर सकता। इस तरह इस दृष्टि से शब्दो का अध्ययन शब्दो का ठीक उच्चारण जानने के लिए आवश्यक है। उच्चारण मे यदि कोई व्यक्ति इन बातो का ध्यान न रखे तो वह शब्दो का ठीक उच्चारण नही कर सकता। हिन्दी शब्दों का इस दृष्टि से विश्लेषण किया गया है, जिसके कुछ प्रमुख निष्कर्ष निम्नांकित हैं।

(१) शब्द के मध्य या अन्त मे, आने वाला कोई ऐसा सयुक्त व्यंजन जिसका दूसरा सदस्य य, व, र, या ल, हो, उच्चारण मे तीन व्यजनो का युक्तरूप हो जाता है, क्योकि प्रथम व्यजन द्वित्त या दीर्घीकृत हो जाता है :

वर्तनी	वास्तविक उच्चारण
उपन्यास	उपन्न्यास
अन्य	अन्न्य
कन्या	कन्न्या
शक्य	शक्क्य
अन्वय	अन्न्वय
परिपक्व	परिपक्क्व
तत्व	तत्त्व
चक्र	चक्क्र
अजस्र	अजस्स्र
अक्ल	अक्क्ल

(२) उपर्युक्त परिस्थितियो मे यदि प्रथम व्यजन महाप्राण हों तो उसके

पूर्व एक अल्पप्राण व्यंजन आ जाता है

अभ्यास	अब्भ्यास
सभ्य	सब्भ्य
मुख्य	मुक्ख्य
मध्य	मद्ध्य
मच्छ	मच्छ

(३) यदि पूर्ववर्ती अक्षर (syllable) की अन्तिम ध्वनि क, च ट त, प हो और परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि घोष व्यंजन हो तो क, च ट, त प, क्रमशः ग, ज, ड द, ब हो जाते हैं

डाकघर	डागघर
नाचघर	नाज्घर
ठाटबाट	ठाड्बाट
मतदाता	मद्दाता
धूपबत्ती	धूब्बत्ती

(४) इसके विपरीत यदि परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि अघोष व्यंजन हो तो पूर्ववर्ती अक्षर के अन्त में आने वाले ग, ज, ड, द ब क्रमशः क च, ट, त प हो जाते हैं

नागपुर	नाक्पुर
आजकल	आच्कल
बदतमीज़	बतमीज़
किताबफरोश	किताप्फरोश

(५) उपर्युक्त परिस्थितियों में पहले ख छ ठ, थ, फ हों तो क्रमशः क, च ट, त, प हो जाते हैं

लेखपाल	लेक्पाल
पूछताछ	पूच्ताछ
अठपहला	अट्पहला
हाथ पाँव	हात्पाँव
हाँफकर	हाँप्कर

संस्कृत संधियों के नियम भी इसी प्रकार थे। एक बड़ी अजीब बात है कि यद्यपि विश्व के सभी लोगों के उच्चारण-अवयव प्रायः समान होते हैं

किन्तु इस प्रकार के नियम विभिन्न भाषाओं मे अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिए ऊपर हमने देखा कि पूर्ववर्ती ध्वनि, परवर्ती से प्रभावित हो रही थी। अंग्रेज़ी मे बात ठीक उलटी है। परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती से प्रभावित होती है। इसी कारण dogs, clubs, buds के उच्चारण डॉग्ज़, क्लब्ज, बड्ज होते हैं। यदि ये शब्द हिन्दी मे होते तो इनके उच्चारण डॉक्स, क्लप्स, बट्स हो जाते। इस तरह वर्तनी उच्चारण की दृष्टि से भ्रामक होती है।

ऊपर पार्श्ववर्ती ध्वनियो के प्रभाव के कारण परिवर्तन से वर्तनी और उच्चारण मे अन्तर की बात की जा रही थी। शब्दो की वर्तनी और उच्चारण मे एक अन्य प्रकार भी अन्तर मिलता है, और उसका भी अध्ययन ध्वनिविज्ञान मे अपेक्षित है। होता यह है कि प्रारंभ मे जब कोई भी भाषा लिखी जाती है, तो शब्दो की वर्तनी उच्चारण के अनुकूल होती है, किन्तु वर्तनी तो वही रहती है और उच्चारण परिवर्तित होता चला जाता है। उच्चारण मे जितना ही अधिक परिवर्तन होता है वर्तनी और उच्चारण के बीच की खाई उतनी ही ज्यादा बढती चली जाती है। अंग्रेजी मे डौटर-डाउघ्टर (daughter), टॉक-टॉल्क (talk), नो क्नोव (Know), साइकॉलजि-प्साइकॉलजी (psychology) नौ-ग्नाव (gnaw), हैच-हैट्च (hatch) मे यह अन्तर स्पष्ट है।

हिन्दी मे प्राय. लोग समझते है कि उच्चारण और वर्तनी मे कोई अन्तर नही है, किन्तु वास्तव मे यह बात नही है। कुछ प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं :—

(१) हिन्दी शब्दो के लेखन मे अक्षरांत अ वर्तनी मे तो है, किन्तु उच्चारण मे नही है राम्—राम, आवश्यक्ता—आवश्यकता, अप्ना—अपना, बोल्चाल्—बोलचाल, फार्सी—फारसी, चल्ना—चलना।

(२) अनेक तत्सम शब्दो मे हम ष का प्रयोग करते है, किन्तु वास्तविक उच्चारण मे श बोलते हैं शेश—शेष, वर्श—वर्ष, विशम—विषम।

(३) इसी प्रकार कुछ तत्सम शब्दो मे हम ऋ लिखते है किन्तु बोलने मे हम 'रि' बोलते है क्रिश्ड̐—कृष्ण, रितु—ऋतु, क्रिपा—कृपा, कर्त्रि—कर्तृ।

(४) जिसे हम ण लिखते है उसका भी अधिकाश-भाषियो मे उच्चारण ड̐ हो गया है · क्रिष्ड̐—क्रिष्ण, प्रड̐—प्रण, मड़ि—मणि, विशड्ड̐—विपण्ण।

(५) विसर्ग को हम 'ह' उच्चरित करते है प्रायह—प्राय, विशेशतह—विशेषत:, क्रमशह—क्रमश।

(६) ज्ञ का मूल उच्चारण ज्+ञ था। आज लिखते तो ज्ञ ही हैं किन्तु आर्यसमाजी लोग इसका उच्चारण ज्य या ज्यँ करते हैं तथा अन्य लोग इसे ग्य या ग्यँ बोलते हैं। मराठी आदि अन्य भाषाओं में इसका उच्चारण तो और भी भिन्न है। ज्यान ज्याँन ग्यान ग्याँन—ज्ञान।

(७) क्ष का मूल उच्चारण क्+ष है किन्तु अब इसे क्+श् बोलते हैं। दक्श—दक्ष रक्शा—रक्षा।

(८) कुछ पुष्कल शब्द ऐसे हैं जो लिखे तो और तरह से जाते हैं किन्तु बोले और तरह से जाते हैं

लिखित रूप	उच्चरित रूप
साहित्यिक	साहित्तिक
स्थायी	स्थाई
गयी	गई (ऐसे भी लिखित)
गये	गए (")
लिये	लिए (")
रखा	रक्खा
दो	दो (कुछ लोगों द्वारा उच्चरित)
नब्बे	नन्बे नव्वे नम्भे
उत्तरदायी	उत्तरदाई
द्विवेदी	दुबेदी

शब्दों की ध्वनियों का सांख्यिक अध्ययन भी किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि विभिन्न स्वरों और व्यंजनों का अनुपात क्या है। इसके आधार पर टाइपराइटर, आशुलिपि प्रेस में तो सहायता मिलती ही है किसी व्यक्ति की शैली का अध्ययन भी किया जा सकता है।[1] विश्व की अनेक भाषाओं में ध्वनियों की गणना के प्रयोग विभिन्न दृष्टियों से हुए हैं। १८७४ में ह्विटनी ने अंग्रेज़ी ध्वनियों पर काम किया। १९१३ में मार्कोव ने पुश्किन की एक रचना के आधार पर रूसी भाषा में स्वरों और व्यंजनों के साथ-साथ

1 Vowels and Consonants as features of style some poems of Goethe and Klopstock—F G Ryder, Linguistics ३७ पृ० ८६—११०

आने के नियम निकाले। हिन्दी ध्वनियो की गणना पर भी देश और विदेश मे कार्य हुए हैं। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी मे लगभग २१-२२ प्रतिशत अघोष ध्वनियो का, तथा ७८-७९ प्रतिशत घोष ध्वनियो का प्रयोग होता है। 'हिन्दी के स्वर और व्यजनो मे कौन अधिक प्रयुक्त होते है और कौन कम', इस बात का अध्ययन कई लोगो ने किया है। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी स्वरो का प्रयोग-क्रम (अधिक प्रयुक्त स्वर पहले है, और कम प्रयुक्त बाद मे) अ, आ, ए, इ, ई, ओ, उ, ऐ, औ, ऊ है। व्यजनो का क्रम है : क, र, न, त, स, म, प, ह, य, ल, व, द, ज, श, ग, ब, च, थ, भ, घ, ख, ट, ड, ण, छ, ड, फ, ठ, ध, झ, ढ, ञ। इसी प्रकार की गणना हिन्दी को लेकर रूस मे भी हुई है तथा पूना मे भी। उन लोगो के परिणाम आपस मे भी थोड़े भिन्न है, तथा मेरे परिणाम से भी कुछ भिन्न है। स्वर-व्यजनो दोनो को साथ रखे तो क्रम अ, आ, क, र, ए, न, त, इ, ई, स, म, प, ह, य, ल, ओ, उ, व, द, ज, श, ग, ऐ, ब, च, थ, भ, औ, ध, ऊ, ख, ट, ड, ण, छ, ड, फ, ठ, घ, झ, ट, ञ आता है।

हर भाषा मे ध्वनिक्रम एक समान नही होते। हिन्दी स्वर एव व्यंजनो की सम्मिलित क्रम-सूची ऊपर दी गई है। नीचे दी जा रही गुजराती की सूची तुलनीय है · अ, आ, न, ए, र, ई, ओ, म, क, व, य, स, प, उ, त, ल, ज, ह, द, ग, थ, ण, छ, थ, ब, घ, श, इ, ट, ड, च, ख, ळ, भ, ऊ, फ ष, ठ, ध, झ, ऐ, ढ, औ। इसमे ड, ञ नही है। उल्लेख्य है कि इसीलिए यदि हिन्दी और गुजराती के नागराक्षर के टाइपराइटर बने तो दोनो के की-बोर्ड एक-जैसे नही होगे।

ध्वनियो का ऐतिहासिक अध्ययन, ध्वनि-परिवर्तन और उसके कारणो से सम्बद्ध है। ध्वनियो मे परिवर्तन लोप (ध्वनि का लुप्त हो जाना—स्थाली—थाली, एकादश-ग्यारह, द्वादश-बारह, कोकिल-कोयल), आगम (किसी नई ध्वनि का आ जाना —अस्थि-हड्डी, भक्त-भगत, दजन-दर्जन, समुद्र-समुन्दर), विपर्यय (दो ध्वनियो का एक-दूसरे के स्थान पर चला जाना— वाराणसी-बनारस, चिह्न-चिन्ह, ब्राह्मण-ब्राम्हण, बफ़-ब्रर्फ), समी-करण-(दो असमान ध्वनियो का समान हो जाना—चक्र-चक्की, पत्र-पत्ता धर्म-(प्राकृत मे) धम्म), विषमीकरण-(दो समान ध्वनियो का असमान हो जाना। यह प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है, तथा जिन शब्दो मे मिलती भी है, उन्हे और रूपो मे भी देखा जा सकता है। लागूली-लगूर), महाप्राणीकरण (अल्पप्राण का महाप्राण हो जाना—सर्व-सभ (भोजपुरी मे) नब्बे-नब्भे, (कुछ लोगो के उच्चारण मे), वेष-भेष), अल्पप्राणीकरण (महाप्राण का अल्प-प्राण हो जाना—आज बोलने मे प्राय. हम भूख के स्थान पर भूक् तथा हाथ के

स्थान पर हाल कहते हैं। उर्दू में तो भूक लिखते भी हैं) घोषीकरण (अघोष ध्वनि का घोष हो जाना—मकर मगर, कंकण-कंगन, कुंचिका-कुंजी), अकारण अनुनासिकता (श्वास-साँस, अश्रु आँसू, भू भौं, सर्प-साँप) आदि रूपों में होता है तथा इसके कारण मुख सुख या उच्चारण-सुविधा, अज्ञान, भ्रामक व्युत्पत्ति, बोलने में शीघ्रता, लेखन आदि हैं। (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'भाषा विज्ञान' के ध्वनिविज्ञान शीर्षक अध्याय का ध्वनि-परिवर्तन शीर्षक अंश)।

ऐतिहासिक स्वनविज्ञान में शब्दों में हुए ध्वनि-परिवर्तनों के अध्ययन विश्लेषण और वर्गीकरण के आधार पर ध्वनि परिवर्तन संबंधी नियमों का भी निर्धारण होता है। ग्रिम, ग्रासमान और वर्नर के प्रसिद्ध ध्वनि नियम (देखिए लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के ध्वनिविज्ञान अध्याय का 'ध्वनि नियम' शीर्षक अंश) इसी प्रकार के हैं। हिन्दी में भी इस प्रकार के कुछ नियमों का निर्धारण (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' के प्रथम अध्याय 'ध्वनि' में 'हिन्दी शब्दों में ध्वनि परिवर्तन संबंधी नियम' शीर्षक अंश) किया गया है। हिन्दी के प्रमुख ध्वनि नियम निम्नांकित हैं

(१) क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम—संस्कृत शब्दों में संयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यंजनों के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो तो हिन्दी में उस ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर हो जाता है कर्म-काम, मग्न मगन, पष्ठ-पाठ, सर्प-साँप, भिक्षा भीख, जिह्वा जीभ, दुग्ध-दूध, अंगुष्ठ अंगूठा।

(२) तुर्की-फारसी अरबी के शब्दांत के विसर्ग ह् (हा इ-मुख्तफी) के आ हो जाने का नियम—बस्तह्-बस्ता, खज़ानह्-खज़ाना, किनारह् किनारा, कुर्तह्-कुर्ता, गुस्सह्-गुस्सा, तमाशह्-तमाशा।

(३) महाप्राणों के 'ह' हो जाने का नियम—संस्कृत शब्दों के हिन्दी में तद्भव होने पर स्वरमध्यग महाप्राण ध्वनियाँ ह में परिवर्तित हो जाती हैं मुख मुँह, प्राघूर्ण पाहुन, मेघ मेह, यूथी-जूही, गोधूम-गेहूँ, दधि-दही, कथानक कहानी, आभीर अहीर, गभीर-गहरा। अपवाद-स्वरूप कुछ शब्दों में अन्य स्थितियों में होने पर भी महाप्राण का ह हो जाता है। जैसे भू (धातु) का हो'।

(४) संस्कृत शब्दों के स्वर-मध्यग 'म का 'वँ' हो जाने का नियम—श्यामल-साँवला, श्यामक साँवला, ग्राम-गाँव, कमल-कँवल, कुमार-कुँवर, धूम धुआँ। ऐसे शब्दों में प्राय पूर्ववर्ती स्वर अनुनासिक हो जाता है।

उपर्युक्त नियम स्वरों तथा मूल व्यंजनों के संबंध में थे। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजनों के संबंध में भी नियमों का निर्धारण किया जा चुका है।

ऐसा प्राय होता है कि किसी एक भाषा से शब्द एक से अधिक भाषाओ मे जाते है, और उन अलग-अलग भाषाओ मे उसका रूप (ध्वनि की दृष्टि से) अलग-अलग हो जाता है। उदाहरण के लिए सस्कृत मे 'सपत्नी' शब्द था हिन्दी मे उसका रूप 'सौत' बना किन्तु पजाबी मे 'सौकन' हो गया। (व्युत्पत्तिविज्ञान मे इस शब्द पर विस्तार से विचार किया जा चुका है) ऐसे परिवर्तनो का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। कैसे एक ही शब्द कई भाषाओ मे जाकर अनेक रूप धारण कर लेता है? होता यह है कि हर भाषा की अपनी विशेष ध्वनि-व्यवस्था होती है। इसी कारण एक ही शब्द विभिन्न ध्वनि-व्यवस्थाओ मे जाकर विभिन्न रूप धारण कर लेता है। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि उसे पहचानना भी कठिन (सस्कृत अध्यापक>मैथिली झा) हो जाता है। नीचे इस प्रकार के कुछ बहुरूपी शब्द दिए जा रहे हैं।

(१) सस्कृत कुठारक>पजाबी कुल्हाडा, गुजराती कुहाडो, मराठी कुर्हाड
(२) सस्कृत अक्षयतृतीया>मराठी अखजा, हिन्दी आखातीज
(३) सस्कृत कच्छप>हिन्दी कछुआ, उडिया केछु, मराठी कासव
(४) सस्कृत उपाध्याय>सिधी वाझो, हिन्दी ओझा, मराठी वाजा
(५) सस्कृत कपित्थ>भोजपुरी कइँत, सिधी कविटु, हिन्दी कैथ
(६) सस्कृत अक्षोट>गुजराती अखोड, हिन्दी अखरोट
(७) संस्कृत अग्निष्ठिका>हिन्दी अगीठी, मराठी आँक्टि
(८) सस्कृत कुष्माड>हिन्दी कुम्हडा, बगाली कुमड़ा, भोजपुरी कोहडा, आसामी कोमोरा
(९) सस्कृत गुड>हिन्दी गुड, भोजपुरी गुर, गुजराती गोळ
(१०) सस्कृत कृत्तिका>सिंधी कत्यूं, मराठी कात्या, सिंहली कति, भोजपुरी कच
(११) सस्कृत कैवर्त>हिन्दी केवट, भोजपुरी खेवट, सिंहली केवुळा
(१२) सस्कृत कोकिल>सिंहली कोवुला, भोजपुरी कोइलर, हिन्दी कोयल
(१३) सस्कृत केदारिका>भोजपुरी कियारी, हिन्दी क्यारी
(१४) सस्कृत गर्भ>पजाबी गब्भ, बगाली गाब, हिन्दी गाभा, भोजपुरी गोभा
(१५) सस्कृत कपर्द, कर्पादिका>हिन्दी कौडी, मराठी कवडा, सिंहली कवडिय, भोजपुरी कउडी
(१६) सस्कृत बदर>मराठी भेर, हिन्दी बेर, भोजपुरी बइर
(१७) सस्कृत मुकुल>बगाली बोल, हिन्दी बौर, भोजपुरी मउर, गुजराती मोहोर

(१८) संस्कृत चत्वारिंशत्>पंजाबी चाली हिन्दी चालीस गुजराती चाळीस

(१९) संस्कृत छाया>उड़िया छाइ हिन्दी छाँव छाँह सिंहली सया

(२०) संस्कृत घृत>सिंहला गिय भोजपुरी घीउ घाव हिन्दी घी पंजाबी घ्यो

(२१) संस्कृत सम्बन्धी>भोजपुरी समधी उड़िया समुन्धी

(२२) अरबी शोरबा>भोजपुरी सुरुवा उड़िया सुरुआ हिन्दी शोरबा

(२३) पुर्तगाली Papaia>हिन्दी पपीता, तमिल पप्पइ नेपाली पपिता मराठी पपया

(२४) पुर्तगाली Ananas>हिन्दी अनन्नास उड़िया अनारस सिंधी अनानासु गुजराती अनेनस अन्नस मराठी अननस

(२५) अंग्रेजी Platoon>हिन्दी पलटन, मराठी पलटण

(२६) अंग्रेजी Pencil>हिन्दी पेंसिल भोजपुरी पिनसिन बोलचाल की पंजाबी पिलसन, पिलसण बंगाली पेन्सिल

(२७) अंग्रेजी School>हिन्दी स्कूल भोजपुरी इस्कूल कुछ अवधी क्षेत्रों में अस्कूल, पंजाबी सकूल, गुजराती स्कूल उड़िया इस्कूल बंगाली इस्कूल

(२८) अंग्रेजी Station>हिन्दी स्टेशन, पंजाबी असटेशन सटेशन भोजपुरी इस्टेसन टेसन, टीसन

(२९) अंग्रेजी Private>हिन्दी प्राइवेट, भोजपुरी पराइवेट, मराठी प्रायव्हेट, उड़िया प्राइभट, तमिल पिरवेट

(३०) अंग्रेजी Doctor>हिन्दी डॉक्टर भोजपुरी डगडर, उड़िया डाक्तर

(३१) अंग्रेजी Hospital>अस्पताल, पंजाबी हस्पताल गुजराती इस्पिताल मराठी इस्पितल तमिल ओस्पित्रि

(३२) अंग्रेजी Jail<हिन्दी जेल, भोजपुरी जेहल, तमिल चजिल जेजिल

अध्याय १०

रचनाविज्ञान

भाषा मे रचना तीन स्तरो पर होती है शब्द के स्तर पर (जैसे सुन्दर+ता=सुन्दरता, अ+लोक+इक=अलौकिक), पद या रूप के स्तर पर (उस+ने=उसने, तुम+को=तुमको, आ+आ=आया) तथा वाक्य के स्तर पर (पदबंध, उपवाक्य, वाक्य, वाक्यबंध)। शब्दो के अध्ययन के प्रसग मे यहाँ शब्दो की रचना ही हमारे विवेचन का विषय है। यो हिन्दी मे 'शब्द' शब्द का प्रयोग अपने विस्तृत रूप मे पद या रूप के लिए भी होता है। उदाहरण के लिए शब्दानुक्रमणी वस्तुत पदानुक्रमणी होती है। ऐसे ही 'राम घर गया' वाक्य मे तत्वत तीन पद या रूप है किन्तु कहे जाते है तीन शब्द। इस तरह सामान्य प्रयोग मे शब्द मे पद या रूप को भी लोग समाहित कर लेते है। किन्तु इस अध्याय मे हम अपना ध्यान मात्र शब्द पर ही केन्द्रित रखेगे और रूप-रचना इसमे नही लेगे।

जैसा कि पहले सकेत किया जा चुका है शब्द, रचनाकी दृष्टि से दो प्रकार के होते है। एक को 'मूल' कहते है तथा दूसरे को 'यौगिक'। कहना न होगा कि रचना की दृष्टि से यौगिक शब्द ही विचारणीय है। मूल शब्द, शब्द या अर्थ के स्तर पर न्यूनतम भाषिक इकाई होते है अत उनकी रचना का प्रश्न नही उठता। यौगिक शब्दों की रचना मुख्यतः निम्नाकित ढग से की जाती है।

(क) उपसर्ग के योग से .

उपसर्ग शब्द के पहले जोड़े जाते हैं · क (कपूत), स (सपूत), प्र (प्रयत्न), ला (लावारिस), दुर् (दुराग्रह)।

(ख) मध्यसर्ग या मध्य प्रत्यय के योग से

हिन्दी मे इसका प्रयोग नही मिलता। मु डा भाषा मे दल=मारना, दपल=परस्पर या एक दूसरे को मारना। यहाँ 'प' को दल के मध्य रख दिया गया

है, अतः इसे मध्यगम या मध्य प्रत्यय कहते हैं। इसका प्रयोग बहुत अधिक भाषाओं में नहीं मिलता।

(ग) प्रत्यय के योग से

भाषा में प्रत्यय के योग से सर्वाधिक शब्दों का निर्माण होता है। ता (सुन्दरता), आई (बड़ाई), त्व (घनत्व) ई (कोधी) औती (कटौती) आदि।

(घ) एक से अधिक शब्दों के योग से

इसे हिन्दी आदि में समस्त शब्द कहते हैं। इसमें दो या तीन शब्दों को मिलाकर रखते हैं घोड़ागाड़ी डाकखाना रामकहानी रामानुजागमन (राम+अनुज+आगमन), सुखदुःखानुभूति (सुख+दुःख+अनुभूति), टॉय टॉय फ़िस। संस्कृत में ऐसे शब्द बहुत बड़े बड़े भी बना करते थे। भारतीय भाषाओं की व्याकरण की पुस्तकों में समास प्रकरण में इसका विस्तृत विवरण दिया रहता है। विश्व की सभी भाषाओं में इस प्रकार शब्द नहीं बनते।

सामान्यतः दो शब्दों के ही समस्त शब्द बनते हैं। एक या दूसरे या दोनों शब्दों की प्रधानता के आधार पर समस्त शब्दों के चार भेद किये जाते हैं अव्ययीभाव (पहला शब्द प्रमुख हो, जैसे हरघड़ी), तत्पुरुष (दूसरा प्रधान जैसे देशनिकाला) द्वन्द्व (दोनों प्रधान जैसे गाय-बैल), बहुव्रीहि (कोई प्रधान न हो, जैसे नीलकण्ठ)।

दोनों शब्दों को जोड़ने में कभी तो किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता घोड़ागाड़ी हाथीखाना करोड़पति, और कभी बीच में कोई नई ध्वनि आ जाती है आवाहवा मनोकामना। अधिकतर ऐसा होता है कि न दोनों शब्द ज्यों के त्यों रहते हैं और न बीच में कोई नई ध्वनि आ जाती है बल्कि संधि स्थान पर ध्वनियाँ एक दूसरे से प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती हैं। पीछे ध्वनिविज्ञान (स्वनविज्ञान) के अन्तर्गत इन पर संक्षेप में विचार किया गया है।

समस्त शब्दों के दोनों ही सदस्य कभी तो सार्थक होते हैं घुड़दौड़ कथाकार, पुस्तकालय, संवाददाता, ऐसा-वैसा जहाँ-तहाँ। कभी एक सार्थक होता है और एक निरर्थक। निरर्थक शब्द प्रायः सार्थक का सानुप्रासिक पुनरुक्ति होता है ठीक-ठाक, भोला भाला, पूछना-ताछना, बातचीत, औने पौने, होना हवाना, चाल-ढाल, आमने सामने आस पास। निरर्थक शब्द कभी तो पहले आता है (औने पौने, आमने-सामने) और कभी बाद में (भोला भाला ठीक-ठाक, बातचीत पूछताछ)। कभी कभी दोनों ही शब्द निरर्थक होते हैं किन्तु आश्चर्य

है कि दोनो मिलकर सार्थक हो जाते हैं · हट्टा-कट्टा, टीम-टाम, अलम-गलम, अट-सट, अटर-सटर, गिट-पिट, सिट्टी-पिट्टी। कभी-कभी तीन भी—आँय-बाँय-शाँय, टाँय-टाँय-फिस।

पुनरुक्ति पूर्ण भी हो सकती है अच्छे-अच्छे, कौडी-कौड़ी, दाना-दाना, अपूर्ण भी चौडा-चकरा, वीच-वचाव।

कभी-कभी एक ही अर्थ के दो शब्द साथ आ जाते है · मान-सम्मान, लाज-शर्म, हाट-बाजार, सौदा-सुलफ, समझना-बूझना, भरा-पूरा, बनिया-बक्काल। कभी एक अर्थ न होने पर भी काफी समीपता रहती है घर-द्वार, खेलना-कूदना, लूला-लँगडा, टूटा-फूटा, जोर-शोर। कभी-कभी शब्द भिन्नार्थी या विरोधी भी होते है · रात-दिन, साँझ-सवेरे, सोना-जागना, खाना-पीना, नाचना-गाना, पढना-लिखना।

कभी कभी प्रति-ध्वनि शब्द भी साथ आते है घोड़ा-वोड़ा, पानी-वानी, सोना-वोना।

(ङ) कई शब्दो की प्रारम्भिक ध्वनि (यों) से

तत्वत यह भी पहले मे ही आ सकता है क्योकि इसमे भी किसी-न-किसी रूप मे कई शब्दो का प्रयोग होता है, किन्तु योग की पद्धति भिन्न होने के कारण इसे अलग स्थान दिया जा रहा है। भाषाओ मे इस प्रकार की प्रवृत्ति उपर्युक्त अन्यो की भाँति बहुत पुरानी नही है। एक दो उदाहरणों को छोड़ शेष उदाहरण प्राय अत्याधुनिक काल के है। इस नवीन प्रवृत्ति का कारण यह है कि आजकल कभी-कभी काफी शब्दो को एक साथ रखकर नाम (संस्था, व्यक्ति आदि के) के रूप मे प्रयुक्त करना पडता है, और बहुत बडा नाम बार-बार लेना बडा असुविधाजनक होता है। इसमे समय और शक्ति दोनो का अपव्यय होता है। इसी लिए 'मोहनदास करमचन्द गाँधी' के स्थान पर मो० क० गाँधी या एम० के० गाँधी कहा जाता है। एच० जी० वेल्ज, जे० बी० कृपलानी, जी० बी० शाँ आदि भी ऐसे ही उदाहरण। ऐसे उदाहरणो मे तो केवल प्रारम्भिक शब्द या शब्दो की आदि ध्वनि (या अक्षर) ली जाती है, अन्तिम शब्द प्राय ज्यो-का-त्यो रहता है। साथ ही ये सब मिलकर एक शब्द नही बनाते। इसके विपरीत ऐसे नाम भी मिलते है, जिनमे सभी शब्दो की प्रथम ध्वनि लेकर उन्हे मिलाकर एक शब्द बना लेते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी मे एक नया शब्द है 'सविद' जिसकी उम्र अभी मुश्किल से दो वर्ष है। यह शब्द 'सयुक्त विधायक दल' के स वि द के योग मे बना है। इसी प्रकार नाटो=

(३) स्थान के नाम के आधार पर

सुरती—तबाकू (पुर्तगाली पहले पहल भारत में तबाकू ले आए और इसका केंद्र सूरत नगर बनाया। वहीं से यह चारों ओर फैला। अतः भोजपुरी आदि कई बोलियों में तबाकू के स्थान पर इसे 'सुरती' कहते हैं। बनारसी (ठग, धूर्त) लखनौवा (छैला, शौकीन) बलियाटिक (मूर्ख) शिकारपुरी (मूर्ख) चीनी (मूलतः पक्की चीनी कदाचित चीन से आई थी) मिश्री (मिस्री। मिस्र से आने के कारण) जापानी (सस्ता तथा कम टिकाऊ), सतना (दिल्ली में ईंट चुनने के काम आने वाले चूने को सतना कहते हैं क्योंकि वह सतना नामक स्थान से आती है), बदरपुर (दिल्ली में विशेष प्रकार की रोड़ी को कहते हैं जो बदरपुर से आती है), कैकेयी (केकय से) आदि अन्य उदाहरण हैं। कठस्थानीय आभूषण कंठा है तो अंगुष्ठ (मूलतः उँगली) स्थानीय अंगूठी।

(४) ध्वनि के आधार पर

इसके आधार पर शब्द का बनना अपवाद है। अब तक मुझे एक ही शब्द ऐसा मिला। भौंरे को संस्कृत में 'भ्रमर' कहते हैं। इसमें 'दो र' के आधार पर संस्कृत में इसके लिए 'द्विरेफ' (जिसमें दो र हों) शब्द का प्रयोग मिलता है।

(५) प्रयोग के आधार पर

कुछ शब्द जिस वस्तु को अभिहित करते हैं उसके प्रयोग के आधार पर बन जाते हैं। रबर (अंग्रेजी rub=रगड़ना, rubber जिसे रगड़ा जाय मिटाने के लिए) खड़ला (भोजपुरी में सुर्ती, जो खाई जाय), सुमिरनी (जिसका प्रयोग सुमिरन में किया जाय) कतरी (जिससे कतरन किया जाय) आदि।

(६) स्वरूप के आधार पर

हाथी (जिसे हाथ (सूँड) हो, हस्ती) करी (जिसके कर हो) द्विरद (=हाथी जिसके दो दाँत हों, हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और) केसरी (जिसके केश हों विशेषतः गर्दन पर) बदगोभी (जो बन्द हो फूलगोभी की तरह खुली नहीं), गाँठ गोभी (जो गाँठ जमी हो)। हिन्दी में बन्दगोभी को 'करमकल्ला' भी कहते हैं। यह फ़ारसी शब्द है। इसमें करम अर्थ है गोभी और कल्ला का अर्थ है सिर अर्थात् बदगोभी सर-जैसी सब्जी है। अंग्रेजी 'कबेज' शब्द मूलतः फ्रांसीसी भाषा का है (caboche) है और इसका अर्थ भी 'सर' है। रूसी में इसे 'कपूस्ता' कहते हैं, उसके मूल में भी 'सर' का भाव है।

चार पैर के कारण 'चौपाया' 'चौपाई' और 'चारपाई' नाम पडे है। 'तिपाई' भी ऐसा ही शब्द है। हाथ जैसा होने से 'हत्था' नाम है।

(७) रंग के आधार पर

स्याही (जो 'स्याह' अर्थात काली हो। पहले स्याही केवल काली हुआ करती थी); सब्जी (जो 'सब्ज' अर्थात् हरी हो, जैसे पालक, चौलाई, बदगोभी आदि)। पीलिया (रोग, जिसमे शरीर पीला पड जाता है)।

(८) ध्वनि के आधार पर ·

इस श्रेणी के शब्दो की सख्या अच्छी-खासी है। हिन्दी मे भूँकना, खेखर (लोमडी के लिये शब्द, खे-खे करने के कारण), भोपू, फटफटिया, धड़धड, भडभड, गडगड, हडहड, चटचट। सस्कृत कोकिल, अंग्रेजी ककू आदि भी इसी प्रकार के शब्द है।

(९) दृश्य के आधार पर :

जगमग, वगमग, दकदक। इस श्रेणी के शब्द वहुत ही कम होते है।

(१०) कोई वस्तु जिससे वनी हो उसके नाम पर ·

इस श्रेणी के शब्द भी वहुत अधिक नही होते गिलास (प्रारम्भ मे यह glass (=शीशा) की वनी, अत यह नाम पडा), शीशा (=आईना; शीशे से वनने के कारण), अंग्रेज़ी आइरन (=प्रेस; लोहे से वने होने से)।

(११) सादृश्य के आधार पर

दूसरे शब्दो या वस्तुओ के सादृश्य के आधार पर भी कभी-कभी शब्द वन जाते है। 'अधूरा' शब्द 'आधा' से 'पूरा' के सादृश्य पर वना है। 'छठा' शब्द के स्थान पर कुछ लोग 'छठवाँ' का प्रयोग करने लगे है, जो स्पष्ट ही छ से पाँचवाँ, सातवाँ के सादृश्य पर बना है। इसी प्रकार वस्तुओ का सादृश्य भी कभी-कभी नए शब्द वनाने के लिए आधार का काम करता है। 'पानी की रवानी', जैसा होने के कारण एक कपडा 'आव-ए-रवाँ' कहलाता है। फूल जैसा होने के कारण कान के आभूषण को कर्णफूल कहते है। 'आकाशगगा' दृश्यात्मक सादृश्य के आधार पर वना है।

(१२) कार्य के आधार पर

इस आधार पर सभी भाषाओ मे काफ़ी शब्द वने होते हैं। नेतृत्व करने के कारण आँख सस्कृत मे 'नेत्र' कहलाई। 'प्रभा' करने के कारण सूर्य 'प्रभाकर'

या 'विभाकर' है। 'दिनकर' भी ऐसा ही नाम है। 'क्षपाकर' का अर्थ है चन्द्रमा। 'क्षपा' रात है जिसे करने वाला क्षपाकर। 'कलछी' या 'करछी' मूलतः 'कररक्षिणी' है। हाथ की रक्षा करने के कारण उसे यह नाम दिया गया। 'तृ' अर्थात् चुभन के कारण घास को संस्कृत में 'तृण' कहा गया। अंगरखा (अंग की रक्षा करने वाला), अजगर (बकरी को निगलने वाला) कठफोड़वा (काठ फोड़ने से), नग (गमन न करने वाला=पहाड़) खग (आकाश में जाने वाला) भी ऐसे ही हैं।

(१३) प्रतिध्वनि के आधार पर

कुछ भाषाओं में किसी शब्द की प्रतिध्वनि के आधार पर भी शब्द बन जाते हैं : घोड़ा (घोड़ा), गाय (चाय), कूप (काय) काम (काम) कूट (काट)। लगभग सभी भारतीय भाषाओं तथा उजबेक आदि अन्य भाषाओं में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मिलती है।

(१४) स्थिति के आधार पर

नदियों के किनारे स्थित होने से तीर्थों को 'तीरस्थ' कहा गया। 'तीर्थ' उसी का विकास है। 'तटस्थ' भी ऐसा ही शब्द है। जो धार में न पड़कर तट पर हो। ओवरकोट तथा वेस्टकोट भी इसी श्रेणी के हैं।

(१५) जन्म से

पंकज, जलज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज, कानिजय, अग्निज, मत्यज, द्विज (जो दो बार जन्म—पक्षी एक बार अंडा फिर बच्चा, चन्द्रमा, प्रथम तीन वर्ण या ब्राह्मण। ये एक बार जन्मते हैं फिर यज्ञोपवीत के समय दूसरा जन्म माना जाता है)।

अध्याय ११

ाब्दसमूह-विज्ञान

'शब्दसमूह' या 'शब्दभंडार' का अर्थ है शब्दों का भंडार या समूह। यहाँ इसका
ोग किसी व्यक्ति, पुस्तक या भाषा द्वारा प्रयुक्त कुल शब्दो के लिए किया
रहा है। कोई व्यक्ति कुल कितने शब्दो का प्रयोग करता है या किसी पुस्तक
कुल कितने शब्द आए है या किसी भाषा में कुल कितने शब्द प्रयुक्त किए
ते हैं, और वह कैसे है आदि का अध्ययन शब्दो के अध्ययन की एक महत्व-
f कडी है। शब्दसमूह-विज्ञान इस प्रकार के अध्ययन के लिए एक अच्छा
न हो सकता है।

व्यक्ति, पुस्तक या भाषा के शब्दसमूह को हम क्रम से लें तो सबसे पहले
क्ति के शब्द समूह की समस्या आती है। दिवगत व्यक्तियो मे केवल उन्ही के
दसमूह का अध्ययन सम्भव है जिन्होने कुछ कहा (जैसे कबीर) या लिखा (जैसे
ासी) है, और जिनकी वह कथित या लिखित सामग्री आज प्राप्त है। जिन्होने
छ लिखा या साहित्यिक रचना के रूप मे कहा नही, या जिन्होने लिखा और
ा किन्तु वह सामग्री आज उपलब्ध नही है, उनके शब्दसमूह का अध्ययन
भव नही है। जीवित व्यक्तियो मे सभी के शब्दसमूह का अध्ययनसम्भव है।
ऐसे व्यक्तियो के शब्दसमूह के अध्ययन के लिए, जिनकी रचनाएँ प्राप्त
उन रचनाओ की शब्दानुक्रमणी बनानी पडती है। इसके बारे मे सामग्री-
कलन शीर्षक अध्याय मे विस्तार से कहा जा चुका है। इस प्रकार प्राप्त
द-सूची उनका शब्दसमूह मानी जा सकती है। हालाँ कि यह मानने की
बात है। वास्तविक रूप मे किसी व्यक्ति के साहित्य मे उसके पूरे
दसमूह का प्रयोग नही मिलता। होमर के ग्रन्थो मे लगभग ९०००,
ल्टन मे लगभग ८०००, शेक्सपियर मे लगभग १५००० तथा तुलसीदास मे
ाभग १६००० शब्दो का प्रयोग हुआ है, किन्तु इसका यह आशय नही कि
साहित्यकारो का पूरा शब्दभडार केवल यही था। इसका अर्थ यह हुआ
किसी के साहित्य के द्वारा केवल उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दसमूह का ही

पता चल सकता है उसके पूरे शब्द-भंडार का नहीं।

व्यक्ति का शब्दसमूह मोटे रूप से दो प्रकार का होता है। एक तो वह जिसे हम उसका सक्रिय शब्द समूह (active vocabulary) कह सकते हैं। व्यक्ति अपनी सामान्य अभिव्यक्ति में इन्हीं शब्दों का प्रयोग करता है। इन सक्रिय शब्दों के अतिरिक्त, उसके शब्द-भंडार में काफी निष्क्रिय शब्द होते हैं जिन्हें वह जानता-समझता है किन्तु जिनका वह प्रायः प्रयोग नहीं करता। पढ़ने में तथा दूसरों को सुनने में ही ये शब्द प्रायः काम आते हैं। ऐसे शब्दों के भंडार को निष्क्रिय शब्दसमूह (passive vocabulary) कहा जा सकता है। इस सक्रियता निष्क्रियता का मूल आधार व्यक्ति द्वारा अपनी अभिव्यक्ति में शब्दों का प्रयोग करना और न करना है। इन सक्रिय निष्क्रिय शब्दभंडारों के आगे भी भेद उपभेद किये जा सकते हैं। क्योंकि सक्रिय में भी कुछ तो बहुसक्रिय होते हैं कुछ सक्रिय होते हैं और कुछ अल्पसक्रिय। इसी प्रकार निष्क्रिय के भी बहुनिष्क्रिय निष्क्रिय तथा अल्पनिष्क्रिय तीन भेद हो सकते हैं। अभी तक इस दृष्टि से किसी व्यक्ति के शब्दभंडार का अध्ययन हुआ है या नहीं मैं नहीं कह सकता। कम से कम मेरे देखने में ऐसा अध्ययन नहीं आया। मैंने स्वयं अपने शब्दसमूह का इस दृष्टि से विश्लेषण करने का प्रयास किया है। मोटे रूप से मेरे शब्दभंडार के विभिन्न वर्गों का प्रतिशत इस प्रकार है

बहुसक्रिय	१०%	३५%
सक्रिय	१४%	
अल्प सक्रिय	११%	
अल्प निष्क्रिय	१५%	६५%
निष्क्रिय	३०%	
बहुनिष्क्रिय	२०%	

उपर्युक्त प्रतिशत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपने शब्दभंडार के बहुत कम भाग का प्रयोग अभिव्यक्ति के लिए करता है, उसका अधिक भाग दूसरो के समझने मे ही प्रयुक्त होता है या वह चुपचाप उसके मस्तिष्क मे पड़ा रहता है।

इस प्रसंग मे यह बात भी सकेत्य है कि हर व्यक्ति के उपर्युक्त प्रतिशत अलग-अलग होगे। विभिन्न विषयो के लेखको के शब्दभडार-विश्लेषण के आधार पर प्रस्तुत पक्तियो का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि सामान्य व्यक्ति (जो लेखक, वकील, इजीनियर, विज्ञानवेत्ता आदि नही है) के शब्दभडार मे सक्रिय शब्दो का प्रतिशत काफी कम होता है। इसके विपरीत तकनीकी व्यक्तियो की सक्रिय शब्दावली का प्रतिशत सामान्य लोगो की तुलना मे अधिक होता है, क्योकि वे उन शब्दो का प्रयोग तो करते ही है जिनका प्रयोग सामान्य लोग करते है, इसके अतिरिक्त अपने विषय से सम्बद्ध अनेक तकनीकी शब्दो का भी वे प्रयोग करते हैं।

लेखको के साहित्य मे जो शब्दावली होती है, वह सारी की सारी सक्रिय शब्दावली ही नही होती। उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्र एव संस्मरण-लेखक तथा नाटककार अपने साहित्य मे कुछ अपवादो को छोडकर प्राय. अपने सक्रिय शब्दभडार का प्रयोग करते हैं, किन्तु इन्ही क्षेत्रो मे इतिहास या वैज्ञानिक विषयो को लेकर लिखने वालों को निष्क्रिय का भी प्रयोग कभी-कभी करना पडता है। कवि प्राय. अपनी बात केवल सक्रिय शब्दावली से नही कह पाते। छंद की आवश्यकताओ के कारण उन्हें निष्क्रिय शब्दावली भी कभी-कभी काम मे लानी पड़ती है। इसीलिए पुराने कवियो या साहित्यकारो की सक्रिय शब्दावली का पता उनके साहित्य से लगाना काफ़ी कठिन है।

किसी व्यक्ति के पूरे शब्दभडार का पता लगाना भी कम कठिन नही है। इसका एक ही तरीका हो सकता है कि उससे शब्दकोश के सारे शब्दो को एक-एक करके पूछा जाय। यो यह पद्धति भी बहुत कारगर नही हो सकती, क्योकि किसी भी जीवित भाषा का कोश पूर्ण नही होता।

किसी व्यक्ति का अधिकतम और लघुतम शब्दसमूह क्या हो सकता है, यह अभी खुला प्रश्न है। लोगो का अनुमान है कि अच्छे विज्ञानवेत्ता का शब्द-समूह प्राय. ८०,००० शब्दो का होता है। अच्छे वकीलो का शब्द-समूह ५०,००० से ऊपर होता है। सामान्य अनपढ किसान ५०० से ८०० के बीच शब्दो का, या कुछ उदाहरणो मे तो इससे भी कम का प्रयोग करता है। यह उसका सक्रिय शब्द-भडार होता है। चर्चिल का शब्द-भडार ६०,००० कहा

गया है जिसम से ३०,००० का तो वे प्रयोग करते थे। कोशकारो का शब्द भडार सहज ही काफी बड़ा होता है, किन्तु उसका बहुत बड़ा भाग सच्चे अर्थों मे निष्क्रिय रहता है।

व्यक्ति के शब्दभडार म परिवतन होता रहता है। बचपन म उसक शब्दभडार बहुत सीमित होता है। उम्र के साथ-साथ उसम विकास होता रहता है। यही नही उसके सक्रिय और निष्क्रिय शब्दभडार मे तथा दोनों के प्रति दान म भी परिवतन होता रहता है। शब्दभडार म परिवतन का कारण पुराने शब्दों का लुप्त होना तथा नए शब्दो का भडार म आना है। व्यक्ति की भाषा म ऐसा भी होता है कि बचपन म कोई शब्द (उदाहरण के लिए खल-सम्बन्धी तकनीकी शब्द) उसके सक्रिय भडार म है बड़ होने पर वह निष्क्रिय म चला गया और बुढ़ापे तक जाते जाते वह उसे प्राय पूणत भूल गया।

किसी पुस्तक म प्रयुक्त शब्दावली उस पुस्तक का शब्दभडार है। अभी तक कम ही पुस्तको के शब्दभडार की गणना हुई है। बाइबिल की पुरानी पोथी मे ५६४२ शब्द हैं तथा नई म लगभग ४८००। मैंने कामायनी की शब्दावली पर काफी विस्तार से काम किया है। मेरी गणना के अनुसार कामायनी म प्रयुक्त कुल पद-सख्या २५४४१ है जिनमे मूल शब्द केवल ३५०५ हैं। विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक रूपो के प्रतिशत इस प्रकार हैं

सज्ञा	५१%	क्रिया	२४%
विशेषण	२०%	सवनाम	२ ५%
क्रियाविशेषण	१ २५%	सख्यावाचक	० ०५%
परसग	० ०४%	अन्य अव्यय	० १८%

लिंगीय प्रयोगो का प्रतिशत है

पुल्लिग	७३%	स्त्रीलिंग	२७%

वचनीय प्रयोगो का प्रतिशत है

एकवचन	८५%	बहुवचन	१५%

व्यक्ति की तुलना मे सहज ही भाषा का शब्दभडार काफी बड़ा होता है किन्तु कई दृष्टियो से व्यक्ति शब्दभडार और भाषा शब्दभडार मे समानताएं हैं जिस प्रकार किसी जीवित व्यक्ति के पूरे शब्दभडार का पता लगाना काफ़ी

कठिन है, उसी प्रकार किसी भाषा के भी पूरे शब्दभंडार का पता प्राय नही लगाया जा सकता। इसी तरह मृत व्यक्ति के साहित्य मे केवल उन शब्दो के भडार का ही पता चल सकता है, जो उसके साहित्य मे प्रयुक्त हुए है, व्यक्ति के पूरे शब्दभडार का पता नही चल सकता। वैसे ही मृत भाषा (सस्कृत, लैटिन) के केवल उसी शब्दभडार का पता चल सकता है, जो उसके प्राप्त साहित्य मे प्रयुक्त है, किन्तु वह उस भाषा का पूरा शब्दभडार नही होता। ऐसे भी काफी शब्द हो सकते हैं जो उस भाषा मे प्रयुक्त होते रहे होगे, किन्तु साहित्य मे नही आए, या आए भी तो वह साहित्य आज उपलब्ध नही है। हिन्दी के 'वृहद् हिन्दी कोश' (३रा सस्करण) मे शब्द-सख्या लगभग १३८००० है, किन्तु वस्तुत इसके आधार पर सख्या का ठीक पता लगाना कठिन है। इसका कारण यह है कि इसमे एक ओर तो ऐसे काफी शब्द है जो हिन्दी मे प्रयुक्त होते हैं या हुए है किन्तु उसमे नही आए है, और दूसरी ओर उस कोश मे सस्कृत तथा अरबी-फारसी के काफी शब्द ऐसे भी रख दिए गए है, जो हिन्दी मे न तो कभी प्रयुक्त हुए और न हो रहे है, और न भविष्य मे जिनके प्रयोग की सभावना है। इधर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, डॉ० रघुवीर जैसे अनेक व्यक्तियो तथा कुछ प्रदेशीय सरकारो और नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओ ने काफी पारिभाषिक शब्दो का निर्माण किया है। उनमे ऐसे शब्द कम नही है जो हिन्दी वाङमय मे प्रयुक्त होने लगे है। काफी शब्द अन्य भाषाओ एव बोलियो से लिए गए है तथा लिए जा रहे है। सम्भवत' इस समय हिन्दी भाषा के शब्दभडार की सख्या पौने दो लाख के आस-पास आँकी जा सकती है। शब्दभडार की दृष्टि से इस समय अंग्रेजी भाषा विश्व मे कदाचित् सम्पन्नतम है। उसमे लगभग पौने छ लाख शब्द होने का अनुमान लगाना अन्यथा न होगा।

किसी भाषा का किसी एक काल का शब्दसमूह सर्वदा एक नही रहता। इस दृष्टि से भी वह व्यक्ति-भाषा के समान है। किसी भाषा के शब्दसमूह मे परिवर्तन दो कारणो से होता है

(क) पुराने शब्दो का लोप

(ख) नए शब्दो का आगमन

होता यह है कि समय के साथ-साथ भाषा की आवश्यकताएँ बदलती है, अत अनावश्यक पुराने शब्द शब्द-भडार मे निकलते रहते है, और नए आते रहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी की आदिकालीन शब्दावली वह नही थी जो मध्ययुग मे थी, और आज की शब्दावली मध्ययुग से काफी परिवर्तित है। वस्तुत भाषा

सामाजिक संस्था है अतः समाज का परिवर्तन उसमें भी प्रतिफलित होता रहता है। समाज से जो परंपराएँ, वस्तुएँ या कार्य निकल जाते हैं भाषा भी उनसे संबद्ध शब्दों को निकाल फेंकती है। उदाहरण के लिए वैदिक काल में यज्ञों का प्रचलन था अतः उनसे संबद्ध पुरोडाश, यज्ञ, अहीन, सुत्या जैसे अनेक शब्द प्रचलित थे किंतु बाद में जब यज्ञ हमारे जीवन के अंग न रहे तो ये शब्द भी भाषा से निकल गए। पुराने खान पान, वस्त्र आभूषण, धार्मिक कर्मकांड से संबद्ध शब्दों की भी धीरे धीरे यही गति हुई और आज उनका शव प्राचीन कोशों या प्राचीन साहित्य में ही मिल सकता है। वे हमारी भाषा के अंग नहीं रहे। दूसरी ओर सभ्यता के विकास के साथ या नए वातावरण के संपर्क के साथ नई आवश्यकताएँ हमें नए शब्दों को ग्रहण करने को बाध्य करती हैं। मुसलमानों के आगमन ने हिन्दी को लगभग छः हजार शब्द दिए। इन शब्दों का संबंध धर्म (रोजा, हज), शासन (सरकार, तहसीलदार, चपरासी), न्याय (वकील, अदालत), सेना (फौज, जमादार, संगीन), पोशाक (कुर्ता, पाजामा, शलवार), फल (अंगूर, अनार, सेब), मिठाई (बरफी, जलेबी, शकरपारा), शृंगार (सुर्मा, साबुन, हजामत), बीमारी (दमा, नब्ज, बुखार) आदि से है।

यह ध्यान देने की बात है कि कुछ शब्द तो नई आवश्यकताओं (नई चीज, नई संकल्पना, नई परंपरा) के कारण आते हैं जिनके लिए अपने यहाँ शब्द पहले से होते हैं किन्तु सांस्कृतिक प्रभाव (या सांस्कृतिक दासता) हमें उन्हें अपनाने को बाध्य करता है। बुखार (ज्वर), नब्ज (नाड़ी), हजार (सहस्र, दशशत), आईना (दर्पण), अंगूर (दाख, द्राक्ष) ऐसे ही शब्द हैं। यूरोपीय संपर्क ने भी हमें काफी शब्द दिए जिनमें सर्वाधिक अंग्रेजी के हैं। ये मुख्यतः यंत्र, सवारी, चिकित्सा, शिक्षा, पोशाक, शासन, प्रेस, खेल, खानपान, सेना, कला एवं शृंगार सम्बन्धी हैं: मोटर, इंजन, कमरा, रेडियो, ग्रामोफोन, लारी, बस, साइकिल, कार, आपरेशन, अस्पताल, डाक्टर, ड्रेसिंग, स्कूल, कॉलिज, मास्टर, रीडर, प्रोफेसर, फीस, पैंट, कोट, सूट, टाई, वारंट, डिप्टी, कलक्टर, कलक्टर, कमिश्नर, टाइप, प्रूफ, हाकी, क्रिकेट, बैडमिन्टन, बिस्कुट, काफी, टोस्ट, आइसक्रीम, रेजर, टैंक, बम, गन, फाउंटेन, स्केच, क्रीम, पाउडर, स्नो आदि। कुछ पुर्तगाली, फ्रांसीसी, स्पेनी तथा रूसी शब्द भी आए हैं।

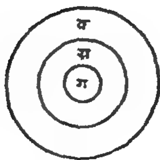
किसी भाषा में इस प्रकार के विदेशी शब्द तीन रूपों में आते हैं। कुछ तो प्रायः ज्यों-के-त्यों आ जाते हैं, पैन, कोट, ट्रक, स्कूटर, वकील, मुख्तार। यहाँ प्रायः इसलिए कहा गया कि सूक्ष्म दृष्टि से उच्चारण में अंतर तो आ ही जाता है किंतु सामान्यतः इस श्रेणी के शब्द मूल जैसे ही लगते हैं। दूसरे प्रकार के शब्द वे हैं जो ग्रहण करने वाली भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुकूल परि

वर्तित या अनुकूलित होकर आते है। तिजोरी (ट्रेजरी), रपट (रिपोर्ट), अगस्त (ऑगस्ट), अर्दली (ऑर्डरली), कुर्ता (कुर्तह्) आदि। तीसरे प्रकार के शब्द अनूदित होकर आते है कटिबद्ध (कमरवस्ता), लालफीताशाही (redtapism), स्वर्णजयती (golden jubilee) हरीक जयती (diamond jubilee) दृष्टिकोण (angle of vision), प्रधानाध्यापक (headmaster), मालगाडी (goods train), धनादेश (money order)।

किसी भाषा मे अन्य भाषाओ से, सर्वाधिक शब्द सज्ञावर्ग के आते है, और सबसे कम सर्वनाम। विशेषणो की सख्या सज्ञा से कम किंतु अन्यो से अधिक होती है। धातु और अव्यय सर्वनाम और विशेषण के बीच मे आते है। हिन्दी मे फारसी से आने वाले शब्दो का सख्या की दृष्टि से क्रम है सज्ञा (सर्वाधिक) विशेषण, धातु, अव्यय, सर्वनाम (सबसे कम)। सज्ञा के उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। अन्यो के उदाहरण हैं : आसान, बेइमान, खुश, तेज, बदनाम, बारीक, तराशना, वसूलना, शर्माना, खरीदना, अगर, कि, वर्ना, लेकिन, खुद, फलाँ। यूरोपीय भाषाओ से केवल सज्ञा शब्द ही आए है। विशेषण (फाइन, रफ, सुपरफाइन, मर्सराइज्ड, डबल, गोल्डन, हेड, हाफ) इने-गिने है तथा क्रिया (फिलमाना) तो इक्की-दुक्की।

भाषाओ के शब्दभंडार से कभी-कभी कुछ शब्द अश्लील हो जाने से निकल जाते है। स्त्री-पुरुष के विशेष अगो या उनसे सबद्ध क्रियाओं के लिए प्रयुक्त शब्द एसे ही है। कभी-कभी कुछ शब्द उच्च स्तर के लोगो के शब्द-समूह से ही 'निकल' या 'प्राय निकल' जाते है। यहाँ हिन्दी की तुलना मे अग्रेजी का उदाहरण सुविधाजनक हो गया। पहले लैट्रिन और यूरिनल शब्द चलते थे। अत्यन्त प्रचलित हो जाने पर इनमे अश्लीलता की गध आ गई अत 'बाथरूम' शब्द इनमे दोनो या दूसरे के लिए प्रयुक्त होने लगा, हालाकि इसका अर्थ 'स्नानागार' है। धीरे-धीरे यह भी अश्लीलता की गध से युक्त हो गया तो 'ट्वायलेट' (जिसका मूल अर्थ बालो का शृगार करते समय कधो पर डाला जाने वाला कपडा, शृगार की मेज, सिगारदान, या शृगारघर आदि था) का प्रयोग होने लगा, और अब इस शृखला मे आने वाला नवीनतम शब्द 'क्लोक-रूम' (मूल अर्थ ओवरकोट तथा हेट रखने का बाहरी कमरा या स्टेशन पर सामान रखने का कमरा) है। पता नही अभी और कितने श्लील शब्दो को इस परपरा मे आ-आकर अश्लील बनना है।

शब्दसमूह के अध्ययन के अतर्गत आधारभूत शब्दसमूह (Basic Vocabulary) भी विचारणीय है।


व
ख
ग

ध्यान देने योग्य है कि 'ग' अर्थात् आधारभूत शब्द समूह केन्द्र मे है तथा सबसे छोटा है। ख अर्थात् मध्यवर्ती शब्दसमूह उसकी तुलना मे बाहरी है तथा उससे बडा है। क अर्थात् उच्च या बाह्य शब्दसमूह पूर्ववर्ती दोनों की तुलना से बाहरी या ऊपरी है तथा दोनो से बड़ा है।

आधारभूत शब्दसमूह किसी भाषा के पूरे शब्दसमूह का वह केंद्रांश (core) होता है जो उस भाषा की मूलभूत अभिव्यक्तियो का आधार होता है। उसे हम पूरे शब्दभडार का मर्म या प्राण कह सकते है। उस भाषा की प्राथमिक जानकारी के लिए आधारभूत शब्दभडार अनिवार्यत आवश्यक होता है, इसीलिए उस भाषा के सभी बोलने वाले (चाहे वे शिक्षित हो या अशिक्षित) उससे अवश्य परिचित होते है और इसीलिए यदि कोई अन्य भाषा-भाषी उस भाषा को सीखना चाहे तो कम-से-कम उन शब्दों की जानकारी उसके लिए बहुत आवश्यक होती है। आधारभूत शब्दसमूह पूरे शब्दसमूह की तुलना मे बहुत छोटा होता है तथा उसमे उन सभी सामान्य एव सार्वजनिक वस्तुओ एव सकल्पनाओ (concepts) की अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय शब्द होते है जो किसी भाषा-समाज के दैनिक जीवन मे आपसी सम्पर्क के आधार होते है। हर भाषा अन्य शब्दो की तुलना मे आधारभूत शब्द-भडार का ही प्रयोग अधिक होता है। किसी भाषा मे अधिक बोलियो मे ये शब्द प्राय समान होते है। एक बोली-भाषी व्यक्ति दूसरी बोली-भाषी को इन्ही के आधार पर समझ लेता है।

आधारभूत शब्दसमूह की एक यह विशेषता भी उल्लेख्य है कि उच्च या मध्यवर्ती शब्दभडार की तुलना मे ये यह अन्य भाषाओ से बहुत कम प्रभावित होता है। बाह्य प्रभाव तकनीकी क्षेत्रो मे पहले उच्च मे आता है तथा अन्य क्षेत्रो मे प्राय मध्यवर्ती मे। अन्य भाषाओ के कम ही शब्द, आधारभूत शब्द-समूह तक पहुच पाते है, और जो पहुँचते हैं, वे भी कुछ अपवादो को छोड़कर, प्राय: बहुत देर मे।

किसी भाषा के आधारभूत शब्दसमूह का वैज्ञानिक ढग से पता लगाने का कार्य इस सदी के तीसरे दशक मे शुरू हुआ है। १९२२ मे डॉ० थार्नडाइक (Thorndike) ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अग्रेजी के सर्वाधिक प्रयुक्त बीस हजार शब्दो की सूची (Teacher's Wordbook of Twenty Thousand Words found most frequently and widely in general literature), प्रकाशित की। इस कार्य के लिए प्रयोगो के एक करोड कार्ड बनाए गए थे, जिनके आधार पर इन २० हजार शब्दो की छटाई हुई। यह सूची सच्चे अर्थों मे

आधारभूत शब्दसमूह की तो नहीं थी किन्तु काम उसी दिशा में था। ये २० हज़ार व शब्द हैं जो सर्वाधिक प्रयुक्त होते हैं। आगे चलकर इनके आधार पर शिक्षा के लिए स्तरित (graded) पाठ्य पुस्तकें बनाई गई थीं। १९२७ में कम्ब्रिज के आर्थोलाजिकल इन्स्टीच्यूट ने अंग्रेज़ी के आधारभूत शब्दभंडार पर काम शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी भाषा में आधारभूत शब्द ८५० मान गए। रूसी भाषा पर इस दृष्टि से बड़ा विस्तृत काम हुआ है। सोवियत संघ की इस्तोनिया जनतन्त्र की राजधानी तालिन की अकादमी के रूसी विभाग ने ३०० व्यक्तियों से इस दिशा में ३ वर्षों (१९५९-१९६२ तक) काम कराया और बाद में रूसी भाषा के सर्वाधिक प्रयुक्त शब्दों पर पुस्तक प्रकाशित की। भारत में इस दिशा में काम का अभी आरम्भ ही हुआ है। गुजराती (Phonemic and morphemic frequencies of the Gujrati language—P B Pandit, poona 1965) तथा मराठी (Phonemic and morphemic frequencies of the Marathi language—S V Bhagwat) के इस दिशा में महत्वपूर्ण ग्रन्थ कुछ ही वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी में इस दृष्टि से कई काम हुए हैं। १९५८ में मूलतः श्रीराम शर्मा द्वारा तैयार की गई, हिन्दी के ५०० शब्दों की सूची (Basic Hindi vocabulary) भारत सरकार ने प्रकाशित की। उसी वर्ष मूलतः उमशंकर सिंह द्वारा प्रस्तुत हिन्दी के २००० शब्दों की सूची (Basic Hindi vocabulary) भी भारत सरकार ने छापी। १९६४ में पूना से हिन्दी के सर्वाधिक प्रयुक्त १९३११ शब्दों की एक सूची (Phonemic and Morphemic frequencies in Hindi—A M Ghatge) प्रकाशित हुई। इस प्रसंग में बद्रीनाथ कपूर के ११०० हिन्दी शब्दों की सूची (Basic Hindi), वाराणसी १९६२), प्रभाकर राव की ११०० शब्दों की सूची (नवभारत टाइम्स (१८-१०-६२) में लेख 'बुनियादी हिन्दी का नया प्रयोग') तथा जगदीशप्रसाद अग्रवाल की ८०० शब्दों की सूची (बेसिक हिन्दी शब्द-सूची मुरादाबाद) भी उल्लेख्य हैं। १९६७ में केंद्रीय हिन्दी संस्थान आगरा की ओर से ५ हज़ार हिन्दी शब्दों की एक सूची (हिन्दी की आधारभूत शब्दावली) प्रकाश में आई। उसके एक वर्ष बाद डा० कैलाशचन्द्र भाटिया की २००५ शब्दों की सूची (हिन्दी की बेसिक शब्दावली) अलीगढ़ विश्वविद्यालय से छपी जो हिन्दी में इस दिशा में अब तक के हुए सारे कार्यों में निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रसंग में यह प्रश्न सहज ही उठता है कि किसी भाषा का आधारभूत शब्दसमूह खोजने का उद्देश्य क्या है। इसका उद्देश्य है भाषा विशेष के शब्द भंडार के सबसे आवश्यक एवं मूल अंश की जानकारी। यह जानकारी कई

क्षेत्रो मे हमारे बड़े काम की होती है। उदाहरणार्थ उस भाषा को मातृभाषा या अन्यभाषा के रूप मे पढने के लिए, बिना किसी क्रम से शब्द सिखाने की तुलना मे, सबसे पहले इन्ही शब्दो की स्तरीकृत जानकारी देना अधिक लाभ-कर होता है। भाषा शिक्षण के क्षेत्र मे आधारभूत शब्दभंडार का प्रयोग आधुनिक युग की एक बहुत बडी देन है। इससे अपेक्षाकृत कम समय मे, भाषा सीखने वाला अध्येय भाषा मे अच्छी गति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार आशुलिपि-निर्माण, मशीनी अनुवाद, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान (विशेषत भाषा-कालक्रमविज्ञान जैसे क्षेत्रो मे), अन्य भाषाओ से तुलना के आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण तथा उस भाषा के बोलनेवालो की मूलभूत आवश्यकताओ एवं मनोविज्ञान को समझाना आदि अनेकानेक अन्य क्षेत्रो मे भी किसी भाषा का आधारभूत शब्दसमूह हमारी बड़ी सहायता करता है।

किसी भाषा का आधारभूत शब्दभडार ज्ञात करने के लिए सबसे पहले हमे सामग्री सकलित करनी पड़ती है। वस्तुत. यही सबसे टेढी खीर है। आधार सामग्री मे अन्तर के कारण परिणाम मे अन्तर पडना स्वाभाविक है। केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय हिन्दी सस्थान आगरा, डकन कालिज पूना तथा कैलाश चन्द्र भाटिया ने हिन्दी शब्दभडार के सम्बन्ध मे पुस्तिकाए प्रकाशित की हैं, किन्तु तीनो मे काफी असमानता है। यह असमानता मुख्यत आधार सामग्री मे अन्तर के कारण है। वस्तुत. अभी तक भाषाविज्ञान इस सम्बन्ध मे कोई सिद्धान्त नही दे सका है कि किसी भाषा का आधारभूत शब्दभंडार ज्ञात करने लिए आधार सामग्री कितनी और कैसी हो। अर्थात् उपन्यास, कहानी, नाटक, एकाकी, निबन्ध, आलोचना, रेखाचित्र, जीवनी, सस्मरण, पत्र-पत्रिका आदि मे क्या-क्या लिया जाय और कितना-कितना लिया जाय। किसका प्रतिशत क्या हो? सोवियत सघ मे जिस बृहत् कार्य की चर्चा ऊपर की गई है, उसमें सामग्री इस प्रकार थी—

उपन्यास कहानी	५६%
नाटक	७%
आलोचना लेख	१४%
पत्र पत्रिकाए	२०%

गुजराती पर जिस कार्य की चर्चा है, उसमे तीन प्रकार के साहित्य से शब्द लिए गए—

(१) पुस्तको से	२८५०० शब्द
(२) रेडियो प्रोग्राम से	२१५०० शब्द
(३) समाचार पत्रो से	४६६८७ शब्द
	९९६८७

पूना से प्रकाशित हिन्दी सूची मे—

(१) पत्र पत्रिकाओ से	४५२०८ शब्द
(२) सरल साहित्य से	२३१५३ शब्द
(३) वैज्ञानिक और गम्भीर साहित्य से	१५३४० शब्द
(४) अनुवाद, बाल साहित्य रेडियो वार्ता तथा स्त्री साहित्य आदि से	१४२१० शब्द
	९७९११

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि आधार सामग्री मे कोई एकरूपता नही है। इस आवश्यकता के कारण ही एक भाषा के एक ही काल को लेकर यदि चार स्थानो पर अलग अलग काम हो तो परिणामो मे अन्तर होगा। सभी के परिणाम पूर्णत एक नही हो सकते। इसीलिए गणना के आधार पर कोई भी व्यक्ति यह नही कह सकता कि अमुक भाषा के अमुक काल मे इतने ही और ये ही आधारभूत शब्द थे। वस्तुत आधार भूत शब्दसमूह के शब्द और उनकी संख्या केवल 'लगभग' ही हो सकती है।

मोटे रूप से यह अवश्य कहा जा सकता है कि आधार सामग्री जितनी ही अधिक होगी परिणाम उतने ही अच्छे होंगे। आधारभूत शब्द भंडार ज्ञान करने की पद्धति यह है कि आधार सामग्री से एक एक शब्द को अलग अलग कार्ड पर लिखते हैं। फिर सारे कार्डों को वर्णानुक्रम रख लेते हैं। ऐसा करने से हर शब्द के सारे कार्ड एक स्थान पर आ जाते हैं जिनसे यह पता चल जाता है कि कौन शब्द कितनी बार आया है। जो शब्द सबसे अधिक बार आया है उसे सबसे पहले रखते हैं उससे कम आने वाले को उसके बाद और इसी प्रकार आगे भी। इस तरह से जो सूची बनती है उसमे प्रथम ५०० ७०० १००० २००० २५०० या ३००० शब्द जैसी भी आवश्यकता हो आधारभूत शब्द समूह के रूप मे लिए जा सकते हैं। या सामान्यत यह देखा गया है कि प्रति भाषाओ के २००० से ३००० तक ऐसे शब्द माने जा सकते हैं जो विभिन्न प्रकार के साहित्यों एवं बोलचाल मे ६५ प्रतिशत से ८० प्रतिशत तक आते हैं। शेष २५ से २० प्रतिशत तक शब्द उच्च या मध्यवर्ती शब्दसमूह के होते हैं।

यहाँ स्पष्टीकरण के रूप मे कुछ बातें और कही जा सकती हैं। शब्द से यहाँ अर्थ है ऐसी भाषिक इकाई (मनन मे) जिसके रूपों आदि आना अगर

होती है। उदाहरणार्थ 'वह घर चला गया' वाक्य मे 'वह' 'घर' 'चला' 'गया' ये चार शब्द है। एक शब्द के यदि अनेक रूप (घोड़ा, घोडे, घोडो) हो तो सूची मे मूल शब्द (घोडा) ही रखा जाता है। कभी-कभी एक ही शब्द दो या अधिक पूर्णत भिन्न अर्थों मे आता है आम (सामान्य, एक फल), पर (परन्तु, पख), सोना (स्वर्ण. सोने की क्रिया)। ऐसे शब्दो के आने पर इन्हे अलग-अलग शब्द मानना चाहिए। अर्थ के साथ इनके अलग-अलग कार्ड वनने चाहिएँ। अन्तिम सूची मे भी ये अलग-अलग रखे जाएँगे साथ ही स्पष्टता के लिए हर एक के साथ अर्थ का भी सकेत रहेगा।

वहुत से लोग यह सोचते हैं कि सभी भाषाओ का अवारभूत शब्दभंडार एक होता है। इसी धारणा से कुछ लोगो ने अग्रेजी के आवारभूत शब्दभंडार के आधार पर अन्य भाषाओ (जैसे हिन्दी) के आधारभूत शब्दभंडार एकत्र करने का प्रयास किया है, किन्तु ऐसा सोचना पूर्णत भ्रामक है। हर भाषा की अपनी भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि अलग होती है, इसी कारण हर भाषा की मूलभूत आवश्यकताए भी एक नही हो सकती। भारत जैसे कृषिप्रधान देश की भाषाओ के शब्दभंडार मे 'खेती' शब्द का जितना प्रयोग होगा, कुवैत जैसे देश की भाषा मे नही हो सकता। इसी प्रकार रूसी भाषा मे 'धर्म' शब्द का उतना प्रयोग नही हो सकता जितना हिन्दी आदि धर्मप्रधान क्षेत्र की भाषाओ मे होगा। अमरीकी अग्रेजी के लिए टेलिविजन, कार, तलाक जैसे शब्द आधारभूत शब्द भडार मे होगे, किन्तु अत्यन्त पिछड़े देश की भाषाओ मे ऐसा नही हो सकता।

यही नही किसी एक भाषा के आवारभूल शब्दभडार मे भी समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। हिन्दी के आदि काल मे 'पाठशाला' का प्रयोग वहुत होता था, किन्तु अव 'स्कूल' का प्रयोग उसकी तुलना मे कही अधिक होता है। अभी कुछ वर्ष पहले तक आना, चवन्नी, दुअन्नी, सेर, छटांक हिन्दी मे वहुत प्रयुक्त होते थे, वीच मे नया पैसा भी आ गया था, किन्तु अव मात्र पैसा, कीलो, ग्राम ही प्रयोग मे आते हैं।

निष्कर्षत न तो दो भाषाओ का आवारभूत शब्दसमूह एक हो सकता है, और न किसी एक भाषा का आधारभूत शब्दसमूह सर्वदा एक रह सकता है। इस तरह किसी भाषा का आधारभूत शब्दसमूह देश, काल, सभ्यता और सस्कृति पर वहुत कुछ आधारित होता है।

इस प्रसग मे कुछ वातें मे अपनी ओर से भी कहनी चाहूँगा। मेरे विचार से केवल उपर्युक्त ढग की गणना के आवार पर किसी भी भाषा का आधारभूत

शब्दसमूह सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए आगरे की शब्दसूची में गुरुवार है किन्तु बृहस्पतिवार नहीं है हालांकि इसका प्रयोग 'गुरुवार' से कम नहीं होता। इसी तरह दोगुना है तीनगुना नहीं है चौथा है पर पांचवां, छठा नहीं है, उन्होंने है इन्होंने नहीं है। इस तरह की कमियां सांख्यिक आधार पर बनी सभी शब्द सूचियों में मिलती हैं। शिक्षा मंत्रालय की सूची में कमरा, नमस्कार, पर, फिल्म जैसे शब्द नहीं हैं। मेरे विचार में इस प्रकार के कुछ मूलभूत शब्द तो आधार शब्दसमूह में सामग्री का विश्लेषण चाहे जो भी कहे, सम्मिलित कर ही लेना चाहिए। उदाहरणार्थ सभी मुख्य सर्वनाम रूप, दिनों तथा महीनों के सभी प्रचलित नाम, १ से १०० तक की क्रमबोधक तथा अपूर्णांकबोधक संख्याएं, प्रमुख रंगों, फलों, अनाजों, खानों, अंगों, कपड़ों आदि के नाम, सर्वसामान्य विशेषण तथा क्रियाविशेषण एवं सामान्य क्रियाओं की बोधक धातुएं आदि।

इस तरह उपर्युक्त पद्धति पर तैयार किए गए आधारभूत शब्दसमूह में इस प्रकार के अतिरिक्त शब्दों को जोड़कर सूची को अधिक पूर्ण तथा सच्चे अर्थों में भाषा विशेष की आधारभूत शब्दावली बनाया जा सकता है। ●

खण्ड : तीन

परिशिष्ट

एक सौ एक शब्दों की कहानी

अफ़ीम—यह शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से बहुत ही विवादास्पद है : स्टाइनगास ने अपने फारसी कोश मे 'अफयून' शब्द दिया है और इसे फारसी माना है किन्तु साथ ही तुलना के लिए सस्कृत शब्द 'अफेन' भी दे दिया है। टर्नर ने भी इसका मूल फारसी ही माना है। सईदुल सूरी ने अपने अरबी कोश अकरबुल मवारिद मे 'अफयून' को 'दख़ील' माना है, जिसका आशय यह है कि उनके अनुसार 'अफयून' शब्द किसी और भाषा से इसी रूप मे अरबी मे ले लिया गया है। उन्होने स्पष्ट नही लिखा है, पर संभव है उनका भी सकेत इसके फारसी से लिए जाने का हो।

दूसरी ओर रिचर्डसन तथा कुछ भारतीय कोशकार हैं। रिचर्डसन ने अपने अरबी-फारसी कोश मे 'अफयून' को अरबी शब्द माना है। शब्दसागर, प्रामाणिक हिन्दी कोश, बेलसारे के गुजराती कोश तथा कुलकर्णी के मराठी कोश आदि मे भी अरबी अफयून या अफयन् दिया गया है और साथ ही यूनानी शब्द 'ओपियन' का भी उल्लेख है।

तीसरी ओर सस्कृत के कोशकार है। ऊपर स्टाइनगास के मत के संबध मे कहते समय कहा जा चुका है कि उन्होने तुलना के लिए सस्कृत शब्द 'अफेन' दिया है। सस्कृत के कोशो मे अफीम अर्थ रखने वाले इससे मिलते-जुलते दो शब्द है—अफेन तथा अहिफेन। पुरानी परपरा के पडित इन दोनो शब्दो को अफीम या अफयून आदि का मूल शब्द मानते है। उनके अनुसार 'अफेन' का शाब्दिक अर्थ है जिसका फेन अच्छा न हो अर्थात् बुरा हो और इसी कारण उनके अनुसार 'अफेन' अफीम का ही वाचक है। इसी प्रकार 'अहिफेन' का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ, उनके अनुसार 'सर्प के फेन की भाँति ज़हरीले फेन वाला' अर्थात अफीम है। संस्कृत के विदेशी कोशकारो मे मोनियर विलियम्स तथा मैकडानेल अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश मे 'अफेन' और 'अहिफेन' दोनो ही शब्दों को दिया है और इनका अर्थ

भी अफीम दिया है किंतु उनका कहना है कि अफीम के अर्थ में ये दोनो शब्द किसी संस्कृत की प्रकाशित रचना में उन्हें नहीं मिले। उन्होंने भारतीय संस्कृत कोशों से इन शब्दों को लिया है। मकडानल ने इन दोनो में अहिफेन को तो अपने कोश में स्थान ही नहीं दिया है और अफेन को दिया भी है तो उसका अर्थ अफीम नहीं दिया है।

यथार्थत ऊपर के तीनो ही मत सत्य से दूर हैं। इन सभी शब्दों का मूल यूनानी शब्द 'ओपिअन (opion) है जिसका अर्थ पोस्ते का रस है। यह यूनानी शब्द ओपास से बना है जिसका मूल अर्थ कुछ लोगों के अनुसार वनस्पति का रस और कुछ लोगों के अनुसार पोस्त के डोंड़े का रस है। यह यूनानी ओपिअन लैटिन में ओपियम हुआ और वहीं से अंग्रेजी फ्रेंच तथा जर्मन आदि यूरोपीय भाषाओं में गया। दूसरी ओर यूनानियों से ही इस शब्द को अरब वालों ने लिया और उनके यहाँ उसका प्रमुख रूप अफ्यून हुआ। अरबी में इसके अन्य रूप अफिन तथा अफेन आदि मिलते हैं। अरबी अफ्यून के आधार पर पंडितों ने अफेन या 'अहिफेन रूप में इसको संस्कृत की पोशाक पहना दी। हिन्दी में यह शब्द अफीम आफू, मराठी में अफीम अफीण अफू तथा गुजराती में अफीण तथा नेपाली में अफिम आदि रूपों में मिलता है। अफीम का स्थान में सबसे आगे चीन रहा है। वहाँ नवीं सदी के आरम्भ में अरब से अफीम ले जाई गई और वहाँ इसका पुराना नाम अ-फु-युङ (अफ्यून पर आधारित) मिलता है। अ फु-युङ स्पष्ट ही अरबी अफ्यून पर ही आधारित है।

अमेरिका—अमरिका एक महाद्वीप है जिसके दक्षिणी और उत्तरी दो भाग हैं। इसके नाम का इतिहास बड़ा ही विचित्र है। अमरिका का पता कोलम्बस ने १२ अक्तूबर १४९२ में लगाया था। उसने इसका नाम 'सैन सालवडर' रखा पर इस नाम का प्रचलन न हो सका। कोलम्बस का एक मित्र इतालवी मल्लाह अमेरिगस वेस्पुशियस (Americus Vespucius) था जो कोलम्बस के लगभग ६ वर्ष बाद १५०१ ई० में अमरिका गया। उसने १५०३ में अपना यात्रा विवरण यूरोप भेजा। यह भाग्य का ही खेल है कि अमरिका का सर्वप्रथम पता लगाने वाले कोलम्बस का नाम उसकी इस अप्रसिद्ध यात्रा के साथ संसार न जोड़ सका और उसके ६ वर्ष बाद उस देश की यात्रा करने वाले अमेरिगस वेस्पुशियस के नाम के आधार पर उसका नाम अमेरिका रख दिया। इसका भी आशय यह है जिसका अर्थ है— अमरिका का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं रखा गया।

एक भूगोलवेत्ता मार्टिन वाल्डसी मूलर ने सर्वप्रथम १५०७ ई० अपने एक निवन्ध मे अमेरिकस के नाम के आधार पर 'अमेरिकी टेरा' नाम से इस देश को पुकारा। उसके नक्शे मे यथार्थतः यह नाम पूरे अमेरिका का न होकर केवल दक्षिणी अमेरिका का था। वाद मे जव उत्तरी अमेरिका का पता चला तो दोनो ही भागों को अमेरिका कहा जाने लगा और यह नाम प्रचलित हो गया। आज दोनो अमेरिका के लिए इसका प्रयोग करने के अतिरिक्त सामान्य प्रयोग मे, 'यूनाइटेड स्टेट ऑफ अमेरिका' के लिए भी लोग अमेरिका शव्द का प्रयोग करते है। कहना न होगा कि इस महाद्वीप के अमेरिका नाम मे वेचारे कोलम्वस के प्रति ससार की अकृतज्ञता मूर्त हो उठी है। इस प्रसग मे यह भी उल्लेख्य है कि कोलम्वस स्पेन का था, अत स्पेनी लोग 'अमेरीका' रूप मे इस देश के नामकरण से प्रसन्न न थे, और उन्होने १८वी सदी तक इस नाम का प्रयोग नही किया तथा इसका विरोध करते रहे। किन्तु अन्त मे जव पूरी दुनिया कहने लगी तो उन्हे भी मानना ही पडा।

अलवम—हिन्दी मे चित्र या टिकट आदि की कापी या पुस्तिका 'अलबम' कहलाती है। मूलतः 'अलवम' शव्द लैटिन शव्द अलवस (albus) का रूप है। अलवस का अर्थ सफेद होता है, अतएव अलवम का भी मूल अर्थ 'सफेद' है। आगे चलकर पुराने रोमनो के ही समय मे 'अलवम' के अर्थ मे कुछ परिवर्तन हुआ और एक विशेप प्रकार की टेवुल (या सफेद वोर्ड) को 'अलवम' कहने लगे। इस मेज (या वोर्ड) के 'अलवम' कहलाने का कारण यह था कि इसका ऊपरी भाग सफेद रँगा ('जिप्सम सल्फेट ऑव् लाइम' से) रहता था। सभव है आरम्भ मे लैटिन के किसी टेवुल (या वोर्ड) वाची शव्द का 'अलवम' विशेपण रहा हो और वाद मे सस्कृत के 'हस्तिन् मृग' मे से 'मृग' छूट कर 'हस्तिन्' या 'हस्ती' शेप रह जाने की भांति 'अलवम' ही वच रहा हो। खैर यह 'अलवम' कहलाने वाली टेवुल (या वोर्ड) एक प्रकार का नोटिसवोर्ड था। आम जनता के लिए इस पर मजिस्ट्रेटो के फरमान, जजो की सूची या जनतोपयोगी अन्य इस प्रकार की सूचनाएँ चिपकाई (या लिखी) जाती थी और यह ऐसे स्थान पर रखी जाती थी जहाँ सामान्य लोग आकर इसे देख सके। मध्य युग मे आते-आते व्रिटेन मे 'अलवम' उस रजिस्टर को कहने लगे जिसमे आगतुको के नाम नोट किए जाते थे। इस प्रकार 'अलवम' कापी या रजिस्टर का पर्याय वन गया। अव अग्रेजी मे 'अलवम' उस सादी कापी को कहते है जिसमे चित्र, टिकट, हस्ताक्षर या कविता के चुने हुए छद आदि चिपकाए जायें। आज भी इस कापी के सादी होने मे इसका सफेद होने का मूल अर्थ सुरक्षित है, यद्यपि इसे विशेपण से हटकर सज्ञा वन जाना पडा है।

आबरू—'आबरू' का हिन्दी-उर्दू में इज्जत, प्रतिष्ठा या बड़प्पन के अर्थ में प्रयोग होता है और इससे बने 'आबरू उतरना', 'आबरू उतारना', 'आबरू में बट्टा लगना', 'आबरू पर पानी फिरना' आदि बहुत से मुहावरे खूब प्रचलित हैं। इस शब्द के मूल में इस तरह का कोई भाव नहीं है और आलंकारिक या लाक्षणिक प्रयोग के कारण ही संभवतः इसका यह अर्थ हो गया है। 'आब' का अर्थ है पानी और 'रू' का अर्थ है चेहरा और इस तरह इसका अर्थ चेहरे का पानी। इस रूप में यह शब्द इज्जत से अधिक टौर रोब चेहरे का रोब का वाचक लगता है। यों 'रोब' भी कुछ दूसरा न होकर इसी का उल्टा और बिगड़ा रूप है। रू+आब (चेहरे का पानी) ही रूआब या रोब या रौब है। हाँ प्रयोग में देखने पर आबरू की अपेक्षा यह (रूआब) अधिक रोब गाँठता दिखाई देता है।

आबदस्त—पाखाना होने के बाद पानी से धोने को आबदस्त कहते हैं। मुहावरा आबदस्त लेना चलता है। मूलतः यह फारसी का शब्द है। फारसी में आब (संस्कृत आप, अप) का अर्थ पानी तथा दस्त (सं० हस्त) का अर्थ हाथ होता है। 'आबदस्त' शब्द का फारसी में वह अर्थ नहीं है जो हिन्दी उर्दू में हो गया है। फारसी में नमाज पढ़ने के पूर्व हाथ पैर धोने या 'वजू करने' को आबदस्त करते हैं। जिस प्रकार भारत में संध्या करने के पूर्व पंडित लोग 'ओ३म् अपवित्रो पवित्रो वा   आदि मंत्र पढ़कर अपनी शुद्धि करते हैं उसी प्रकार आबदस्त के वक्त भी मुसलमानों को अरबी मंत्र (जिसका भाव है—तू मुझे उन लोगों जैसा बना दे जो पाप से विमुख रहते हैं। मुझे पवित्रता पसंद करने वालों में बना दे। मुझे अपने नेक बंदों में बना दे) पढ़ने का हुक्म है। आश्चर्य है कि भारत में आकर अर्थ की दृष्टि से आबदस्त बेचारा इतना गिर गया। कहाँ तो पूजा के लिए यह आदमी को शुद्ध करता था और अब कहाँ   ।

आमलेट (omelette)—अंडे से बना एक प्रकार का खाद्य पदार्थ। मूलतः यह लैटिन शब्द lamella है जिसका अर्थ था 'पतला पत्तर'। फ्रेंच में यह शब्द la melle हो गया। फ्रेंच में पहले से ही तलवार के पतले पत्तर या ब्लेड के लिए एक शब्द allemette था। दोनों के मिश्रण से omelette बना। आमलेट भी पतले पत्तर के समान बनता है अतः उसके लिए भी इसी नाम का प्रयोग होने लगा।

आयत—'आयत' शब्द का प्रचलित अर्थ है कुरान, तौरेत या इंजील आदि धार्मिक किताबो का वाक्य। जायसी लिखते हैं—पुनि उसमान बड़ पडित गुनी। लिखा पुरान जो आयत सुनी। 'आयत' अरबी का शब्द है और इसका मूल अर्थ धर्म-ग्रन्थ का वाक्य न होकर 'चिह्न' या 'निशान' है। बाद मे उन चिह्नो को आयत कहने लगे जो इन धर्म-ग्रन्थो मे वाक्यों के अन्त मे पूर्ण विराम या फुलस्टाप के रूप मे लगाए जाते थे (इन निशानो को अब 'आयती मुतलक' कहते है)। और आगे चलकर इसके अर्थ मे और परिवर्तन हुआ और उस निशान से हटकर 'आयत' उन वाक्यो को कहने लगे जिनके अन्त मे 'आयत' कहलाने वाला निशान हो। आश्चर्य है इस शब्द की उन्नति पर ! कहाँ तो साधारण चिह्न या निशान का पर्याय और अब कहाँ धार्मिक-ग्रन्थो का वाक्य। पाक, पवित्र ! जिसके पढने-मात्र से सवाब मिले !

एकड—एकड हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। यह १-३/५ बीघे के बराबर की भूमि की एक नाप है। एकड शब्द की उम्र इतनी अधिक लम्बी है कि वर्षो मे उसे व्यक्त नही किया जा सकता। यूरोपीय, ईरानी तथा भारतीय आर्य जब अपने मूल स्थान पर एक साथ रहते थे तो यह शब्द अपने किसी पुराने रूप मे उनमे प्रचलित था। बाद मे जब ये लोग यूरोप तथा भारत मे गये तो यह शब्द भी उनके साथ दोनो स्थानो मे गया। सस्कृत मे खुली भूमि या आगन के अर्थ मे प्रयुक्त 'अजिर' शब्द यही है। यूरोपीय भाषाओ मे ग्रीक शब्द 'आर्गस' तथा लैटिन शब्द 'एजर' भी इसी 'एकड' के पुराने रूप है। इन ग्रीक और लैटिन शब्दों का भी अर्थ सस्कृत 'अजिर' की भाँति खुली जगह ही है। इस प्रकार 'एकड़' शब्द का प्राचीनम् ज्ञात अर्थ भूमि की विशिष्ट नाप न होकर खुली भूमि या खुला स्थान है। और आगे चलकर ऐंग्लो-सैक्सन शब्द 'एकर' के रूप मे हमे 'एकड' शब्द मिलता है। यहाँ तक आते-आते इस शब्द का अर्थ खुली भूमि से हटकर भूमि-खड हो गया था। और आगे चलने पर इस शब्द के अर्थ मे परिवर्तन की तीन सीढियाँ दृष्टिगत होती हैं। पहले इसका अर्थ 'भूमि खण्ड' से बदल कर 'चरागाह' हुआ तथा आगे चलकर 'चरागाह' से परिवर्तित होकर 'घेरी हुई भूमि' हो गया। परिवर्तन की तीसरी सीढी मे 'घेरी हुई भूमि' अर्थ बदलकर 'घेरा हुआ खेत' हो गया। १३वीं सदी तक आते-आते इग्लैंड मे 'एकर' इतनी बड़ी भूमि या खेत को कहने लगे जो एक हल से एक दिन मे जोता जा सके। यही आकर सर्वप्रथम 'एकर' शब्द के साथ 'नाप' के भाव का गठ-बन्धन हुआ। पर, इस रूप मे इस शब्द के अर्थ मे निश्चितता नही थी। अच्छे बैलो के हल से बडा खेत जोता जा सकता था और खराब या कमजोर बैलो के हल से छोटा।

इस प्रकार एकर का अर्थ बड़ा खेत भी सम्भव था और छोटा भी। और आगे चलकर इसके अर्थ की इस अनेकरूपता को दूर कर एकरूपता लाने के लिए एडवर्ड प्रथम एडवर्ड तृतीय हेनरी अष्टम तथा जार्ज चतुर्थ ने कानून बनाए और १८७८ ई० तक आते आते ४८४० वर्ग गज़ का एक 'एकर' मान लिया गया। इसी अर्थ में एकर शब्द अंग्रेजी के साथ भारत में आकर 'एकड़' बन गया और आज तक प्रचलित है। यह भाग्य की बात है कि इतने महान लोगों के प्रयास के बाद भी इस शब्द के अर्थ में एकरूपता नहीं आ सकी है। भारत तथा इंगलैंड में तो यह ४८४० वर्गगज़ का है पर स्काटलैंड, आयरलैंड, वेल्स तथा कुछ अन्य देशों में अब भी इसके कई रूप प्रचलित हैं। स्काटलैंड का एकड़ ६१५०.४ वर्गगज का होता है तो आयरलैंड का ७८४० वर्ग गज और वेल्स का ४३२० या ३२४० वर्गगज का।

एकादमी (academy)—साहित्य या कला आदि की संस्था। मूलतः यह यूनानी शब्द है। एथेन्स के पास एक बगीचा था, जिसका मालिक Academus था। एकडेमस एक मत से किसान था और दूसरे मत से एक वीर योद्धा। इसी के नाम के आधार पर इस बगीचे को Academeia कहते थे। अपने समय में प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो ने इसी बगीचे को अपना स्कूल बनाया और यहाँ दार्शनिक वाद विवाद आदि होने लगे। इस प्रकार बगीचे का नाम प्लेटो के संसर्ग से शिक्षा एवं उच्चस्तर के ज्ञान विज्ञान की संस्था का पर्याय बन गया। लैटिन में यह शब्द academia तथा फ्रेंच में academie और अंग्रेजी में academy हो गया। अनपढ़ सामान्य किसान (या सिपाही) का नाम आज साइंस एकादमी साहित्यिक एकादमी आदि रूपों में ज्ञान विज्ञान का केन्द्र बन गया है।

एक्स रे (X Ray)—एक जर्मन चिकित्सक थे जिनका नाम था राजन (Wilhelm Konrad Von Roentgen)। १८९५ में वे एक दिन कोई प्रयोग कर रहे थे। इतने में उन्होंने देखा कि एक विशेष ढंग से एक प्रकार की किरण ऐसी ठोस वस्तुओं के भीतर भी प्रवेश कर जाती है जिनके भीतर प्रवेश की सामान्य किरणें नहीं जा पातीं। उस किरण के बारे में वह कुछ और न जान सके। अज्ञात संख्या आदि के लिए गणित आदि में एक्स (X) का प्रयोग चलता है। इसी आधार पर उस अज्ञात किरण को उन्होंने जर्मन में X Strahlen कहा। इसी का अंग्रेजी अनुवाद X Ray अर्थात् अज्ञात किरण है। विज्ञान में अब इस किरण को प्रायः राजन किरण कहते हैं, किन्तु इस किरण की सहायता से लिया गया फोटो इसी आधार पर एक्स रे कहलाता है यद्यपि यह किरण अब अज्ञात न होकर पूर्णतः ज्ञात हो चुकी है किन्तु नाम के लिए अब भी एक्स रे है।

एटलस (Atlas)—यह शब्द मूलत ग्रीक भाषा का है और इसका धात्वर्थ है lenai=उठाना) 'उठने वाला'। ग्रीक पुराणो मे एक देव है, जो उन स्तभो ा रक्षक है, जिनके ऊपर स्वर्ग खड़ा है। एक अन्य मत से स्वर्ग या पृथ्वी सकी पीठ पर हैं। इस प्रकार इसका अर्थ है 'भारी बोझ उठाने वाला'। ६वी सदी मे यूरोप का एक बहुत प्रसिद्ध भूगोल वेत्ता मर्केटर (Mercator) आ है। इसने नक्शो का एक सग्रह बनाया जिसमे फ्रन्टिसपीस के रूप मे टलस का चित्र था। इस चित्र मे एटलस पृथ्वी को अपनी पीठ पर लिए था। ाद के अनेक नक्शा बनानेवालो ने इसी की देखा-देखी अपने नक्शो के ंग्रहो मे भी प्रथम चित्र के रूप मे इसी प्रकार के चित्र का प्रयोग किया। ारिणाम यह हुआ इस चित्र के आधार पर ही पूरा सग्रह 'एटलस' कहलाने लगा और अब एटलस का अर्थ हो गया है 'नक्शो का सग्रह'।

एलार्म (alarm)—हिन्दी मे इसका प्रयोग 'एलार्म घडी' के रूप मे होता है, अर्थात् 'बजकर उठाने वाली घड़ी'। अंग्रेज़ी मे इसका अर्थ 'चेतावनी' आदि है। मूलत यह शब्द इतालवी भाषा का 'all' arme' है, जिसका अर्थ है 'हथियार ले लो' (to arms)। पुराने जमाने मे दुश्मन के चढाई करने पर सैनिको को यह हुक्म दिया जाता था। इतालवी मे ही दोनो शब्द मिलकर allarme हो गए, जिससे फ्रेंच alarme फिर प्राचीन अग्रेज़ी alarme तथा आधुनिक अग्रेज़ी alarm बना। 'हथियार ले लो' या 'उठा लो' मे चेतावनी थी, इसीलिए इसमे चेतावनी का भाव है। हिन्दी मे इसमे 'जगाने' का भाव है।

कंपनी (Company)—मूलत यह शब्द लैटिन है। लैटिन मे com का अर्थ है 'साथ मे' और panis का अर्थ है 'रोटी'। इस प्रकार कपेनियन (companion) वह है 'जो साथ मे रोटी खाय', और कंपनी का मूल अर्थ है 'साथ मे रोटी खाना'। बाद मे 'साथ मे रोटी खाने' से विकसित होते यह मित्रता साथ, साझा आदि अर्थो मे होते आधुनिक अर्थ मे आया है।

कम्बख्त—'कम्बख्त' शब्द अब 'बेहूदे' 'कमीने' या 'बदतमीज' आदि के अर्थ मे आता है, किंतु इसके मूल अर्थ मे इस प्रकार की कोई भावना नही है। 'बख्त' फारसी शब्द है जिसका मूल अर्थ 'भाग' या 'हिस्सा' है, पर बाद मे इसका प्रयोग 'भाग्य' (जो अपने हिस्से आवे) के अर्थ मे होने लगा। 'कम' भी फारसी शब्द है और इसका अर्थ 'थोडा' या 'बिना' है। इस प्रकार 'कम्बख्त' का अर्थ 'कम भाग्य वाला' या 'अभागा' है। इसी प्रकार 'कमबख्ती' का अर्थ 'बदनसीबी' है न कि 'कमीनापन' जैसा कि लोग प्रयोग करते हैं। किन्तु अब ये दोनो शब्द इसी नए अर्थ मे चल पड़े हैं।

कनल (Colonel)—सेना मे एक पदाधिकारी । मूलत यह शब्द लटिन का columna है जिसका अथ होता है सभा । इतालवी भाषा मे यह colonna हो गया, जिसका अथ था सनिक पक्ति (column of soldiers) । इतालवी मे ही यह आगे चलकर colonello हो गया जिसका अथ हुआ कालम या रेजिमेंट का सेनाध्यक्ष । इस प्रकार यह शब्द सभा से चलकर व्यक्ति बन गया । वहाँ से फ्रेंच म इसन colonel तथा coronel दो रूप धारण किए । फ्रेंच से अग्रजी मे भी यह दो रूपो—coronel colonel मे आया । पहले र (r) वाला रूप अधिक प्रचलित था अत अग्रजी म कर्नल उच्चारण चला । आज र (r) वाला शब्द अप्रचलित हो गया है और अग्रजी म colon । चल रहा है किन्तु उच्चारण कनल ही चल रहा है । यह है अग्रजी colonel के कनल उच्चारण का रहस्य । हिन्दी कनल भी इसी उच्चारण से सबद्ध है । इस प्रकार इसका मूल सबन्ध अग्रजी coronel स है, colonel स नही । अग्रजी के बहुत कम शब्द व्यक्तिनाम रूप मे भारत म सामान्य हो सके हैं । यह शब्द (कर्नलसिंह आदि) इस क्षेत्र म भी प्रचलित है ।

कफ्यू (Curfew)—वह स्थिति जब कोई व्यक्ति घर से बाहर नही निकल सकता । यूरोप म मध्य युग म ऐसा होना था कि रात म खास समय पर शासन की ओर स घंटी बजाई जाती थी उस समय सभी लोग अपने घर की आग या रोशनी या तो ढक देते थे या बुझा दते थे । यही रोशनी को ढकना मूलत कफ्यू था । फ्रेंच म शब्द दो थे Couvre few । प्रथम शब्द का अथ है ढक देना (अग्रजी cover) तथा दूसर का है आग । यह फ्रेंच युग्म ही विकसित होकर cuevrefu हुआ जो अग्रजी म आकर कफ्यू हो गया । इस शब्द के अथ म भी काफी विकास हो चुका है । बाहर न निकलने की आज्ञा भी कफ्यू है यद्यपि उससे रोशनी का कोई सबन्ध नही है ।

कलेंडर (Calander)—कलेंडर उस पत्रक या पत्रक समूह को कहते है जिसम हर महीने के दिनो तथा तारीखों का उल्लेख रहता है । इस शब्द का यथाथ अथ हिसाब या सूद की कापी है । रोमन लोगो म इस कापी का प्रचार था । वहाँ के कज देन वाले महाजन सूद की गणना के लिए अपनी कापी या बही म महीने तथा तारीख आदि लिखते थ । यह कापी या बही कलेंडरियम कहलाती थी । इस कापी के ही अनुकरण पर रोमुलस ने ७३८ ई०पू० वष, महीना सप्ताह तथा दिन का कलेंडर चलाया । अत स्वभावत इसका भी वही नाम पडा । रोमुलस के कलेंडर म १० ही महीने थ बाद म नामा पाम्पीलियस न दो और महीने जोड़कर पूरे वष का कलेंडर बनाया ।

कलेडर शब्द की और पहले की कहानी भी कम मनोरजक नही है। मूलत इस शब्द का सम्बन्ध लैटिन की 'कैलारे' से है। 'कैलारे' का अर्थ 'पुकारना' होता है। रोम मे महीने के पहले दिन की घोषणा जनता मे पुकार पुकार कर की जाती थी। अत. महीने के पहले दिन को रोमनो ने कैलेड्स कहा। आगे चलकर महाजनो ने जब अपने हिसाब और सूद की वही बनायी तो उसमे सूद पाने की तारीख होने के कारण पहली तारीख या महीने के पहले दिन का महत्व अधिक था, अत उसी आधार पर उस वही या कापी को उन्होने 'कैलेडरियम' कहा जो आगे चलकर आज का कलेडर हो गया।

कांजी—एक खट्टा रस, जो ईख के रस या गाजर या और कई चीजो को पानी मे सडाकर बनाया जाता है। छाछ, या दूध को फाडने वाले खट्टे रस को भी काँजी कहते है। मूलत यह शब्द द्रविड़ परिवार का 'काडर्शी' है जिसका मूल अर्थ था 'उबाली हुई चीज'। परवर्ती तमिल मे काँजी रूप मे यह मिलता है। चावल के माड मे कुछ और भी चीजे मिलाकर इसे बनाते थे। इन भाषाओ से यह शब्द परवर्ती संस्कृत मे आया वहाँ यह काजी, काजिक काजिका आदि रूपो मे मिलता है। यह भी उल्लेख्य है कि सस्कृत के कोशो मे तो यह शब्द कई मे आया है किन्तु अन्य प्रकार के ग्रन्थो मे एकमात्र सुश्रुत ही अपवाद है जहाँ यह मिलता है। सस्कृत से यह हिन्दी, मराठी, पजाबी, सिंधी आदि आधुनिक भाषाओ मे आया है।

कांजीहौस—काँजीहाउस एक प्रकार से पशुओ की जेल है। इसमे लावारिस या खेती-बाड़ी आदि को हानि पहुचाने वाले पशु बन्द कर दिए जाते है। हिन्दी की विभिन्न बोलियो मे यह शब्द 'काँजी हौज', 'कानी हौज' 'कानी हाउस', काँजी हौस', 'कानी हौद' तथा 'काँजी हाउस' आदि रूपो मे मिलता है। अन्य भारतीय भाषाओ मे यह शब्द इस रूप मे नही है। हाँ पजाबी मे यह प्राय· इसी रूप मे है और उडिया मे 'काँजिया हत्ता' है, जिसमे 'काँजिया तो 'काँजी' है और 'हत्ता' अहाता का विकसित रूप है।

'काँजी हौस' मे स्पष्ट ही दो शब्द है। 'काँजी+हौस'। काँजी की व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी गई है। रामचन्द्र वर्मा (प्रामाणिक कोश, दूसरा संस्करण पृष्ठ २३८) तथा कुछ अन्य लोग इसे 'काइन' (=गायें) से जोडते हैं तो ग्रैहेम बेली (BOAS भाग ४, पृ० ७८३-६०) 'कैंचिग' से। किंतु मुझे इनमे कोई भी मत संभावित नही लगता। भारत मे 'काइन' शब्द कभी 'काउज' के स्थान पर प्रचलित नहीं हुआ कि उससे इसे जोडा जा सके। 'कैंचिग' कुछ निकट है पर यहाँ ऐसे घर को कभी अंग्रेजी मे 'कैंचिग हाउस' कहा जाता रहा

हो इसके प्रमाण नहीं मिलते । यों ध्वन्यात्मक दृष्टि से भी काइन या कचिंग से कांजी का निकलना बहुत संभावित नहीं है । मेरे विचार में 'कांजी' द्रविड़ परिवार का शब्द है । तमिल में कांची पुग्गु या अव्यवस्थित के अर्थ में आता है । तुलु में 'कांजी' चौपाए का पर्याय है । हौस तो स्पष्ट ही अंग्रेजी 'हाउस' है । हाउस>हौस>हौज (स>ज) >हौद रूप में इसका विकास अन्य शब्दों में हुआ है ।

कॉपी (Copy)—कॉपी का अर्थ है कागजों की बनी सादी किताब जिस पर लिखा जाता है । यह शब्द अंग्रेजी में फ्रेंच Copie से आया है जो लैटिन Copia से निकला है । लैटिन शब्द का अर्थ है आधिक्य या बाहुल्य । कॉपी में बहुत से कागज होने के कारण ही उसे कापी कहा गया । अंग्रेजी शब्द copious अब भी मूल अर्थ अधिक को ही व्यक्त करता है ।

काफ़ी (Coffee)—इसे कहवा भी कहते हैं । मूलतः यह शब्द अरबी का है । अरबी कहव का मूल अर्थ है शराब या नशा करने वाली चीज़ । कहा जाता है कि १५वीं सदी में एक बार काल्दी नामक एक अरब गड़रिये की बकरियों ने इस पेड़ के फलों को खाया और उनको कुछ नशा हो गया । उसने उन फलों को अपने ऊपर आजमाया तो उसने देखा कि थकावट मिटाने तथा हल्का सा नशा करने की शक्ति इनमें है । उसी के द्वारा इसका प्रचार हुआ । अरबी में नशा करने वाली चीज़ों के लिए कहव शब्द था अतः वहाँ के लोगों ने इसका नाम यही रखा । यह 'कहव' शब्द धीरे धीरे आसपास के देशों में फैला और तुर्की में इसका उच्चारण कहवे हो गया । वहाँ से इतालवी में यह Caffe तथा फ्रेंच में Cafe बना । अंग्रेजी में यह इन्हीं से गया है । इस प्रकार काफी या कहवा' का मूल अर्थ शराब या नशा करने वाली है । एक अन्य मत के अनुसार अबीसीनिया के caffa नामक स्थान में यह सबसे पहले मिली और इसी से यह नाम पड़ा । वनस्पतिशास्त्री इस मत के अवश्य हैं कि काफ़ी का मूल देश अबीसीनिया ही था ।

कॉलिज (College)—उच्चतर पाठशाला । इसका मूल अर्थ बिलकुल अलग है । लैटिन में Col का अर्थ है साथ और lego का अर्थ है चुनना । लैटिन में दोनों के योग से शब्द बनता है collegium जिसका अर्थ है 'सभा या समिति' । यही collegium फ्रेंच से होते अंग्रेजी में आकर college बन गया । इसका मूल अर्थ है चुने हुए एक प्रकार के लोगों का संघ । रोमन कानून में चुने हुए एक व्यवसाय आदि के लोगों के संघ को collegium कहते थे । इनमें कम से कम तीन व्यक्तियों का होना आवश्यक

था। इसमे सघ का भाव वहुत वाद तक रहा है और अव भी है। अमेरिका तथा इगलैंड आदि मे चिकित्सको आदि के कुछ सघो को कॉलिज कहा जाता है। आगे चलकर अग्रेजी मे इस शव्द का प्रयोग विद्याध्ययन आदि मे सलग्न व्यक्तियो (विद्यार्थी तथा शिक्षक) के संघ या समुदाय के लिए होने लगा और फिर यह धीरे-धीरे आज के अर्थ मे आ गया।

कॉमरेड (Comrade)—इस शव्द का अर्थ है मित्र, किन्तु इसका प्रयोग अधिकतर कम्यूनिस्ट या साम्यवादी मित्र के लिए या किसी कम्यूनिस्ट व्यक्ति नाम के साथ 'श्री' आदि के अर्थ मे भी होता है। इस रूप मे इसका अर्थ है कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य आदि। इस शव्द का मूल अर्थ है 'कमरे का दोस्त'। कमरे के अर्थ मे एक लैटिन शव्द है Camera। यही स्पेनी भापा मे camara हो गया। वहाँ रात मे सरायो के एक कमरे मे जो कई आदमी रहते थे वे काम-रेड (Camrade) अर्थात् 'कक्षमित्र' या 'कमरे के दोस्त' कहलाते थे। यह शव्द फासीसी भापा मे आकर Camarade तथा अग्रेजी मे Comrade हो गया।

कॉमा (Comma)—अल्पविराम के लिए यह शव्द चलता है। इसका मूल ग्रीक शव्द Komma है जिसका अर्थ है 'कटा हुआ टुकडा'। वाक्य के एक टुकडे को यह अलग करता है, इसीलिए इस चिह्न को कॉमा कहा गया।

कॉमेडी (Comedy)—नाटक का एक रूप। हिन्दी मे इसे 'कामदी' या 'सुखात' आदि भी कहा जाता है, किन्तु ये दोनो ही शव्द 'कॉमेडी' के पूरे भाव को व्यक्त नही कर पाते। कॉमेडी प्राय. गभीर नही होती तथा इसका मूल उद्देश्य मनोरजन या हँसना आदि होता है। इससे सवद्ध विशेपण 'कॉमिक' से इसकी आत्मा के एक पक्ष पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। 'कॉमेडी' शव्द का सवध यूनानी शव्द Komos से है। Komos डोरियन लोगो का एक पर्व था जिसकी प्रमुख विशेपता उच्छृखलता, नृत्य, सगीत, गन्दे मजाक आदि थे। इस अवसर पर गाए जाने वाले विशिष्ट गीत भी Komos कहलाते थे। गीतो के वीच मे भारतीय कवीर या जोगीडे की भाँति मजाक भी चलते थे। इस गीत और मजाक ने ही धीरे-धीरे कथानक युक्त हास्य-व्यग्यपूर्ण नाटक का रूप ले लिया। लगभग ५७८ ई० पू० मे सुसेरिअन ने कदाचित् पहली 'कामेडी' लिखी। इसमे व्यवस्थित कथानक का समावेश करने का श्रेय एपिकार्मस को है।

कैंडिडेट (candidate)—यह शव्द 'उम्मीदवार' का समानार्थी है। हिन्दी मे भी इस शव्द का कम प्रचार नही है। लोक भापाओ तक मे लोग इसका धड़ल्ले

से प्रयोग करते हैं। लटिन की एक धातु है 'कन्डेरे' जिसका अर्थ 'चमकना या 'सफेद दिखाई पड़ना' है। रोम साम्राज्य में जो लोग ऊँची नौकरियों के लिए 'उम्मीदवार' होकर आते थे वे प्राय सफेद चमकीले लबादे (या चोग़) पहने रहते थे। धीरे धीरे यह परम्परा-सी चल पड़ी और सभी उम्मीदवार सफेद चमकीली पोशाक में आने लगे। फलत कन्डेरे धातु से बना शब्द उनके लिए प्रयुक्त होने लगा, जिसका अंग्रेजी रूप कैंडिडेट का मूल अर्थ उम्मीदवार न होकर चमकीला सफेद या सफेद चमकता हुआ' आदि है। यो आजकल तो कैंडिडेट काले नीले, भूरे, बादामी और कत्थई आदि सभी रंग में दिखाई पड़ते हैं किंतु चमकीले होने का भाव उनकी पोशाक में अवश्य होता है यद्यपि यह मात्र संयोग की बात है।

कम्ब्रिक (Cambric)—एक कपड़ा। पहले इसे Camerike कहते थे। फ्रांस के Cambrai नगर में सर्वप्रथम यह कपड़ा बना, अतः यह नाम पड़ा।

कलिको (Calico)—एक कपड़ा। भारतवर्ष के कालिकट (Calicut) नगर से इंगलैंड में जाने के कारण एक विशेष प्रकार के सूती कपड़े कलिको कहलाने लगे। अब विशेष कपड़े के लिए यह नाम है।

गजट—सरकारी विज्ञप्तियों के अखबार का नाम गजट है। कुछ लोग गजट शब्द को 'गज्जा' से सम्बद्ध मानते हैं। गज्जा एक प्रकार के गाने वाले नीलकण्ठ पक्षी का नाम है। इस मत के पोषकों का कहना है कि सरकारी विज्ञप्तियाँ आरम्भ में पढ़कर सुनायी जाती थीं और यह पढ़कर सुनाना गज्जा पक्षी के गाने या बोलने की तरह था अतएव इस पन्ने को या उस कागज को जिस पर यह पढ़ने की सामग्री रहती गजट कहने लगे। इस मत को असंदिग्ध नहीं कहा जा सकता।

दूसरे मत के अनुसार गजट शब्द का मूल इतालियन शब्द 'गजटा' है। १६ वीं सदी में वेनिस की सरकार का सबसे छोटा सिक्का 'गजटा' था जिसका मूल्य अंग्रेज़ी फार्दिंग से भी कम था। उस समय सरकारी विज्ञप्तियाँ को एक कागज पर लिख लिया जाता था और उसे किसी ऐसे स्थान पर सुनाया जाता था जहाँ बहुत से लोग सुन सकें, किंतु साथ ही एक और भी शर्त थी। जो लोग उन सरकारी विज्ञप्तियों को सुनने के लिए वहाँ आते थे उन्हें एक 'गजेटा' सिक्का फीस के रूप में देना पड़ता था। इस प्रकार की विज्ञप्तियाँ महीने एक बार सुनाई जाती थीं। सुनने के लिए एक 'गजेटा' देने के कारण ही धीरे धीरे उस कागज (या अखबार) को गजट कहने लगे।

कहना न होगा कि 'गजट' की दूसरी व्युत्पत्ति ही अधिक युक्तिसंगत लगती है। यह शब्द इतावली से फ्राँसीसी तथा अग्रेजी मे और अग्रेजी से भारतीय भाषाओ मे आया है।

गुलाब—गुलाब एक प्रसिद्ध फूल का नाम है। यह शब्द फारसी का है, पर वहाँ मूल शब्द 'गुलाब' न होकर 'गुल' था। गुल का अर्थ यो तो फूल होता है, किंतु फारसी मे इसका पुराना अर्थ सब फूल न होकर सिर्फ 'गुलाब का फूल' था। 'गुलाब' शब्द का अर्थ उस समय 'गुल का आब' या गुलाब जल (रोज़ वाटर) था। बाद मे गुलाब के फूल को लोग केवल 'गुल' न कहकर 'गुलाब' अर्थात् वह फूल जिससे पानी निकाला जाय, कहने लगे और इस प्रकार 'गुल' के लिए 'गुलाब' शब्द प्रचलित हो गया। आजकल लोग 'अर्क गुलाब' या 'गुलाब जल' शब्दो का प्रयोग करते हैं जो मूल अर्थ की दृष्टि से बिल्कुल बेतुका हैं। 'गुलाबजल' का अर्थ हुआ 'गुल' के पानी का पानी। यह कुछ वैसा ही प्रयोग है जैसे 'सज्जन व्यक्ति'।

गोदाम—प्राय यह समझा जाता है कि हिन्दी का 'गोदाम' शब्द अग्रेजी 'गोडाउन' (godown)से निकला है, किन्तु वास्तविक यह है कि अग्रेजो के सपर्क के पहले (१६ वी सदी) से यह भारत तथा आस-पास की अनेक भाषाओ मे प्रयुक्त हो रहा हैं। बगाली, मराठी, सिहली मे इसका रूप 'गोदाम' है, तो तामिल मे 'कडगु' और तेलगू मे 'गिडगी' है। अधिक सभावना इस बात की है कि मलय भाषा का इसी अर्थ का 'गुदोग' शब्द ही इन भाषाओ मे विभिन्न रूपो मे मिलता है। मलय का भी यह अपना शब्द नही है। वहाँ अनामी भाषा से आया है, तथा अनाम मे चीनी से। चीनी तथा अनामी मे इसके रूप 'ह्वा-त्साग' मिलते हैं। इस तरह यह शब्द चीनी भाषा से अनामी तथा मलय मे होते हमारे यहाँ आया है।

चॉकलेट (chocolate)—एक मिठाई। हिन्दी मे यह शब्द अंग्रेजी से आया है। मूल शब्द अमेरिका के मूल निवासियो की भाषा नहुअत्ल (यूटो-अज़्टेकन भाषा-परिवार की) का chocolatl है, जिसका अर्थ है 'कड़वा पानी'। मूलत जो चाकलेट बनता था वह आज जैसा न होकर कोकोआ (cacao) को पीसकर सूखा या गीला बनता था, जो काफी कड़वा होता था। अमेरिका से इस शब्द को स्पेन के लोग यूरोप मे लाए। अब चीनी दूध आदि डालकर यह काफी सुस्वादु बनता है।

चाय—प्रसिद्ध पेय । इसका प्राचीनतम उल्लेख ३५० ई० के लगभग का मिलता है । चीन की मंदारिन भाषा का यह शब्द है । मूल शब्द चा(ch'a) है । इसके प्रचार में वहाँ के बौद्धों का हाथ है । वे शराब आदि अधिक नशीली चीज़ों से लोगों को बचाने के लिए इसके प्रचार में रुचि लेते थे । चा, चहा चाह, चाई, टी आदि अनेक रूपों में यही शब्द मिलता है ।

जनाब—यह हिंदी उर्दू में एक आदरसूचक शब्द है और इसका अर्थ है 'महाशय' या 'श्रीमान' । मूलतः इस शब्द में इस का प्रकार कोई भाव नहीं था । अरबी की एक धातु है जीम-नूं-बे जिसका अर्थ होता है 'दूर होना' 'दूर करना' या 'हटना' । इसी से अजनबी बनता है जिसका मूल अर्थ है 'दूर का' 'गैर' या 'अनजान' । इसी धातु से अरबी शब्द जानिब बनता है जिसका मूल अर्थ दूर की चीज़ और बाद का विकसित अर्थ 'दिशा' 'किनारा' या 'ओर' है । जनाब शब्द भी इसी धातु से बना है और इसका मूल अर्थ है 'दूर का' या 'अलग का' । 'दूर का' या 'अलग का' से विकसित होकर जानिब की तरह इसका अर्थ 'किनारा' 'छोर' या 'ओर' हुआ क्योंकि ये भी अलग या एक ओर ही होते हैं । इस अर्थ में यह शब्द फारसी में भी प्रयुक्त मिलता है । अरबी तथा फारसी में और आगे चलकर संभवतः 'एक ओर' या 'अलग होने के कारण ही इसका अर्थ घर के सामने या बगल का सहन या मैदान हो गया । फारसी में अर्थ में और विकास हुआ और घर का बाहरी सहन या मैदान से हटकर इसका अर्थ घर के भीतर का आँगन और फिर सामने का कमरा हो गया । फारसी में ही और आगे चलकर कमरे बदलकर इसका अर्थ 'शरण लेने की जगह' हो गया । अशरण शरण होते ही इसमें बड़प्पन की भावना आई और शरण लेने की जगह से बढ़कर यह ऐसे व्यक्ति का वाचक हो गया जो शरण दे । अपने ऊर्ध्वतम विकास में यह शब्द अब आदरसूचक शब्द हो गया और इस अर्थ में यह फारसी उर्दू, हिंदी, पंजाबी तथा मराठी आदि बहुत सी भाषाओं में प्रयुक्त होने लगा है । कहाँ तो इसी का भाईबंद अजनबी अजनबी ही बना रहा और जानिब बेचारे को दिशासंकेत से ही फुर्सत नहीं मिली और यह दौड़ता-दौड़ता इतना आगे बढ़ गया ।

जरसी (jersey)—इस शब्द का अंग्रेज़ी उच्चारण जर्ज़ि है । इंगलिश चैनेल में सबसे बड़ा द्वीप jersey है । वहाँ सर्वप्रथम एक विशेष प्रकार का कपड़ा बना जिससे जर्सियाँ बनती थीं । बाद में उस प्रकार के बुने कपड़े भी जरसी कहलाए । अब जरसी विशेष प्रकार का स्वेटर है ।

विस्तार हो गया है। पानी की सवारी' के सकुचित अर्थ से बाहर निकलकर यह उस विशिष्ट प्रयोग में सवारी का समानार्थी हो गया है पानी का जहाज हवाई जहाज। कितना आश्चर्य है कि आसमान की छाती चीरते हुए उड़ने वाला जहाज और वधू पक्ष से वर पक्ष को मिलने वाला दहेज दोनों एक हैं।

इधर लोक भाषाओं में जहाज के अर्थ में कुछ और विकास हो रहा है और जहाजी सुपारी (एक प्रकार की विशेष बड़ी सुपारी) 'वह बल क्या है जहाज है या वह मकान तो पूरा जहाज है आदि रूपों में यह शब्द 'बड़ा' या विशालकाय के समानार्थी बनने के रास्ते पर अग्रसर होता दीख रहा है। कौन जाने यह बड़प्पन भी इसके भाग्य में लिखा हो। पर दूसरी ओर इसकी अवनति का द्वार भी बंद नहीं है। हिंदी में एक अत्यंत निकृष्ट प्रकार के इत्र की संज्ञा जहाजी इत्र है।

जायदाद— जायदाद का हिंदी उर्दू में आज का अर्थ है संपत्ति। उनके पास बड़ी जायदाद है का अर्थ है उनके पास बड़ी संपत्ति है। इस संपत्ति में एक ओर तो जमीन या मकान आदि अचल संपत्ति हैं तो दूसरी ओर सामान' आदि चल संपत्ति। शब्द के मूल में इस प्रकार का कोई भाव नहीं है। जायदाद फारसी का शब्द है। जाय का अर्थ है जगह या जमीन और दाद (फारसी धातु दादन (=देना) से बना है) का अर्थ है दी हुई। फारसी में मूल रूप में इस शब्द का अर्थ था वह जमीन जो बादशाह की ओर से अपने अमीरों को सेना रखने में होने वाले व्यय के लिए दी जाय। वहाँ से विकसित होकर इसका अर्थ जमीन हुआ और अब 'संपत्ति हो गया है।

जार्जेट (georgett)—एक रेशमी कपड़ा। श्रीमती जार्जेट फ्रांसीसी दर्जिन थीं जो अच्छे ढंग के कपड़े बनाने के लिए प्रसिद्ध थीं। उन्हीं के नाम पर इस कपड़े का नाम जार्जेट पड़ गया। इसका कारण यह था कि औरतों के जो बहुत अच्छे कपड़े वे बनाया करती थीं वे प्रायः इसी कपड़े के होते थे।

जिमनास्टिक (Gymnastic)—एक प्रकार का व्यायाम। संस्कृत में नग्न' शब्द जिस मूल भारोपीय शब्द से आया है उसी से ग्रीक में gymnos बना है। gymnos का भी अर्थ नग्न या नंगा है। इसी से ग्रीक शब्द gymnazein बना है जिसका अर्थ होता है नंगा रहना या नंगा होकर व्यायाम करना'। यूनान

मे पहले लोग (प्रमुखत लडके और पुरुष) नगे होकर व्यायाम किया करते थे। सूर्य के प्रकाश से लाभ उठाने के लिए ऐसा किया जाता था। इसी शब्द से gym-nastic बना। इस प्रकार इसका मूल अर्थ हैं 'नगा'। बाद मे यह नंगा होकर किए जाने वाले व्यायाम का वाचक हो गया और फिर एक विशेष प्रकार के व्यायाम का।

जुलाव—यह शब्द मूलत' 'गुलाब' ही है। पुरानी फारसी मे 'गुल' शब्द सामान्य फूल का वाचक था, इसी लिए 'गुलाव' (गुल का आब) का अर्थ था 'गुलाबजल'। गुलाबजलार्थी 'गुलाव' का प्रयोग दस्तावर दवा के रूप मे भी होता था। इस लरह 'गुलाव' शब्द फारसी से अरबी मे गया तो 'ग' ध्वनि 'ज' मे परिवर्तित होगई और यही 'जुलाव' हो गया। हिन्दी गुजराती, मराठी, नेपाली (जुलाय, जुलाफ) आदि मे यह अरबी रूप ही फारसी होते आया। अरबी से यह शब्द यूरोपीय भाषाओ मे भी पहुँचा और वहाँ इसका रूप 'जुलेप' हो गया। दवा के अतिक्ति वहाँ एक विशेष प्रकार के सुगवित अच्छे पेय का भी 'जुलेप' कहते है।

जेब—हिंदी मे 'पाकेट' या 'खलीते' का समानार्थी शब्द 'जेब' है। यह शब्द मूलत. अरबी का हैं और वही से फारसी मे होता हुआ यह भारतीय भाषाओ मे आया है। अरबी मे इसका उच्चारण 'जैब' था, फारसी मे जेब तथा 'जीब' हुआ और भारतीय भाषाओ मे 'जेब' है।

अरबी शब्द 'जैब' का सवध अरबी धातु 'जीम-वाव-बे' (=काटना) से माना जाता है और इस प्रकार इसका मूल अर्थ है 'जो काटा जाय' या 'काट-कर बनाया जाय'। आरभ मे अरबी मे 'जैब' शब्द का प्रयोग पहने जाने वाले कपड़ो के 'गरेबान' या छाती पर काटकर बनाए गए गले के भाग के लिए (शायद काटकर बनाने के कारण) होता था। अब भी इस अर्थ (गरेबान) में यह शब्द अरबी तथा फारसी मे प्रयोग मे आता है। पुराने अरब लोग पहले जो कपडा पहनते थे उसके गरेबान का नाम 'जैब' ही था। उस समय तक उन लोगो के कपडो मे पाकेट नही लगता था। आगे चलकर जब 'पाकेट' की आव-श्यकता महसूस हुई तो सबसे सुरक्षित स्थान छाती समझी गई अत. गरेबान के पास ही वे लोग गले से लगाकर एक थैली लटकाने और बाद मे सभवत. उसी कपडे मे सिलवाने लगे। यह थैली जैब (=गरेबान या छाती के पास का कपडे का कटा भाग) के समीप लगती थी अत: लोग इसे भी 'जैब' कहने लगे। इस प्रकार 'गरेबान' या आगे के गले का समानार्थी शब्द 'थैली' का समानार्थी बन गया। बाद मे वह थैली गले के पास बीच मे न लगाई जाकर छाती पर

ही बगल म और फिर नीचे जघे के पास लगने लगी। आज जेब शब्द हिन्दी उर्दू म प्राय सभी पाकेटों के लिए आता है चाहे वे कमीज या कोट मे सामने लग हों चाहे कुर्ते और कोट की बगल म या पट बाँधने की पेटी के भीतर या पीछे।

हिंदी उर्दू म जब शब्द के कुछ और अथ भी विभिन्न प्रकार के प्रयोगो के कारण विकसित हो रहे हैं। जबखच म जेब शब्द निजी या भोजन और वस्त्रादि के अतिरिक्त का या ऊपरी का समानार्थी है तो जेबी गिलास' और 'जेबी तराज़ू आदि म छोटे का और जेबीघडी म घडी के एक विशेष प्रकार का।

टमाटर (Tomato)—एक सब्जी। मूलत यह मेक्सिको का है। अम रिका म आदिवासियो म एक भाषा नहुअत्ल (Nahuatl) बोली जाती है जो यूटो अजटेकन (Uto-Aztecan) भाषा परिवार की है। टमाटर शब्द मूलत उसी भाषा का है। मूल शब्द टोमाटल (tomatl) था। स्पेनिश म तह tomato हो गया जहाँ स अंग्रेजी tomato आया। यूरोप म इसका प्रचार १५५० के लगभग हुआ। १८२२ के पूव इस हानिकर माना जाता था। हिन्दी टमाटर मेरे विचार म अंग्रेजी टोमटो स नहा आया है। यह मूल टोमाटल (ल > र) के अधिक निकट है।

टोपी—हिंदी का टोपी शब्द बडा विवादास्पद है। सभा के हिन्दी शब्द सागर या रामचन्द्र वर्मा के प्रामाणिक कोश म उस हिन्दी के तोप या तोपना स जोडा गया है और स्वय तोपना प्राकृत तुप्प स सबद्ध कहा जाता है। प्लाटस ने अपने कोश म इस हिन्दी शब्द कहकर छुट्टी पाली है। कुलकर्णी अपन मराठी कोश म इस सस्कृत स्तुप स्तुभ स जोडते हैं। टनर नेपाली कोश म कल्पित रूप टोप्प म इसका सबध मानते हैं। दालेस न अपने पोर्तुगीज वोकेबुलरी इन एशियाटिक लग्विजिज (१९३६ पृ० ३४९) म पुर्त गाली तोप (tope) या तोपो (topo) स इस व्युत्पन्न माना है। पुर्तगाली म इसका अथ ऊपरी सिरा या चोटी होता है। उजबकिस्तान म अपन प्रवास म मुझे उजबक भाषा म टाकी अथ म दोप्प शब्द मिला और मेरा विचार बन रहा है कि भारतीय भाषाओं म यह तुर्की भाषा स आया है। किंतु इधर इस शब्द के बारे म बहुत कुछ जानने और पढ़ने को मिला। सबस बड़ी बात तो यह है कि यदि १२वीं सदी म या उसके बाद इसका प्रयोग भारतीय भाषाओं में मिलता तो इस तुर्की स आया माना जा सकता था क्योंकि तुर्की शब्द ध्वनि म 'टोपी' स बहुत दूर नहीं है और अथ दोनों का एक है ही। इसा

प्रकार यदि पुर्तगालियो के सपर्क के बाद ही इसका प्रयोग मिलता तो 'शीर्ष' अर्थ के पुर्तगाली शब्द 'तोपे' या 'तोपो' से भी इसे जोड़ना बहुत अन्यथा न था। किंतु इसका प्रयोग भारत मे पर्याप्त प्राचीन ज्ञात होता है। प्राकृत के प्रसिद्ध कोश पाइअ सद्द महण्णवो मे टोप्पर तथा टोप्पिआ शब्द 'टोपी' के अर्थ मे दिए गए है और इन्हे देशज कहा गया है। प्राकृत, अपभ्रंश और अवहट्ठ के सुपासनाहचरिअ, आदिपुराण, जसहरचरिउ तथा उक्तिव्यक्तिप्रकरण आदि कई ग्रंथो मे यह शब्द टोप्पर, टोपर, टोप्पी, टोपरउ, टोप आदि रूपो मे उपलब्ध है। इन सबके आधार पर ऐसा लगता है कि हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओ के जन्म के पूर्व से ही इस शब्द का प्रचार हमारे यहाँ था, और ऐसी स्थिति मे इसे तुर्की या पुर्तगाली नही माना जा सकता। इसे देशज मानने के भी पक्ष मे मैं नही हूँ। अब मेरे विचार मे मूलत यह शब्द सस्कृत का है, किंतु सस्कृत स्तुप, स्तुभ आदि से इसका सबध नही है, क्योकि टोपर, टोप्पर, टोपरउ आदि पुराने रूपो की 'र' ध्वनि इससे नही निकल सकती। संस्कृत ग्रंथ धूर्तसमागम (२ ११-१२) मे एक शब्द 'टोपर' आया है जिसका अर्थ 'छोटा थैला' है। मेरे विचार मे टोपी का मूल यही है, एक तो अर्थ और ध्वनि दोनो ही दृष्टियो से यह शब्द टोपी और उसके प्राप्त रूपो से काफी समानता रखता है, और दूसरे इससे 'र' ध्वनि का भी समाधान हो जाता है जबकि अन्य किसी से भी नही होता।

निष्कर्ष 'टोपी' शब्द सस्कृत 'टोपर' से संबद्ध है। 'र' के लोप से 'टोपर' का टोप हो गया और फिर स्त्रीलिंग ई के योग से 'टोपी'।

टोस्ट (Toast)—पावरोटी का सेका हुआ टुकडा। मूल शब्द लैटिन torreve है, जिसका अर्थ है 'जलाना या सेकना'। जलाने या सेकने के कारण ही यह नाम पडा है। ग्रामीण लैटिन मे यह tostare हुआ और वहाँ से फ्रेंच मे toster। अंग्रेजी टोस्ट इसी से है। इस प्रकार टोस्ट वह है जो सेंका या जलाया जाय।

ट्रेजेडी (Tragedy)—इसे हिन्दी मे 'त्रासदी' तथा 'दुखान्त' कहते हैं। यद्यपि दोनो ही शब्द इसके ठीक भाव को व्यक्त करने मे असमर्थ हैं। ट्रेजेडी का अर्थ है 'बकरा-गीत'। ग्रीक भाषा में tragos का अर्थ है 'बकरा' और oide का अर्थ है 'गीत'। इस प्रकार पहले यह एक प्रकार का गीत था। गाने वाला संभवतः बकरे की खाल पहनकर गाते थे, अत गीत 'बकरा-गीत' कहलाया। अन्य मतो के अनुसार यह त्रास और करुणा का गीत बकरे के बलिदान के अवसर पर पहले गाया जाता था, अत. 'बकरा-गीत' हुआ। तीसरे मत के अनुसार

ही रहा किन्तु इसका अर्थ बदल गया। पाइप के स्थान पर इसका अर्थ प्राय: मे प्रमुख रूप से भरी जाने वाली पत्ती हो गया। आधार आधेय हो गया। इसके लिए दो कारण दिए जाते हैं। एक मत मे अमरीकी आदिवासी कभी-कभी बिना पाइप के पत्ती का ही लपेटकर (आज के चुरट की भाँति) प्रयोग करते थे और उसे भी इसी नाम से अभिहित करते थे। यह चुरट विशेषत आज तबाकू कहलाने वाली पत्ती का ही होता था अत उस पत्ते तथा उसके पौधे को स्पेनी लोग इसी नाम से पुकारने लगे। एक अन्य मत के अनुसार स्पेनियों ने गलती से पाइप के शब्द का प्रयोग मादक पत्तों मे अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित पत्ते (तबाकू) के लिए किया। (आदिवासी केवल तबाकू ही नहीं वरन् कई अन्य पौधों की पत्तियों का भी तबाकू के रूप मे प्रयोग करते थे, यद्यपि अधिक प्रचलन तबाकू के पत्ते का ही था।) अंग्रेजी शब्द स्पेनी से ही निकला है। भारत में इस पौधे तथा इस नाम को पुर्तगाली १६०० ई० के लगभग ले आए। इसी चिलम पर रखकर अकबर को पिलाने की कोशिश की गई किन्तु हकीमों के मना करने पर उसने ऐसा नहीं किया। पुर्तगाली भाषा मे इसके लिए शब्द tabaco है।

दुकान—यह शब्द फारसी मे 'दुकान' के रूप मे आता है और इसका अर्थ वही है जो हिन्दी मे है। अरबी मे यह 'दुक्कान' या 'दूकान' है और वहाँ भी इसका यही अर्थ है। प्रस्तुत शब्द मूलत अरबी है या फारसी इस संबंध में विद्वानों मे मतभेद है। स्टाइनगास ने इसे अरबी शब्द माना है। अरबी मानने पर भी इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में दो मत हैं। एक के अनुसार यह 'दाल काफ नून' धातु से बना है जिसका अर्थ एक पर एक रखना होता है। दुकान मे चूँकि चीजें एक पर एक रखी रहती हैं अत उसे दुकान कहा गया। दूसरे मत से इस शब्द का संबंध दाल काफ काफ धातु से है जिसका अर्थ जमीन के बराबर करना है। इस मत के पोषकों का कहना है कि पहले बैठने के लिए लोग जमीन के समानान्तर चबूतरे बनाते थे, जिसे दुक्कान कहते थे। बाद मे इसी प्रकार के चबूतरों पर बैठकर सामान बेचने लगे अत शब्द का अर्थ चबूतरे से बदलकर दुकान हो गया। अर्थात जो लोग (सईदुल पुरी) इस शब्द को अरबी नहीं मानते उनके अनुसार फारसी शब्द दुकान का दुक्कान मुअर्रब अर्थात अरबी रूप है।

नारंगी—आक्सफोर्ड तथा वेब्स्टर के प्रसिद्ध अंग्रेजी कोशों मे इस शब्द का मूल शब्द अरबी नारंज माना गया है। टर्नर ने अपने प्रसिद्ध नेपाली

डिक्शनरी' मे मूल शब्द फारसी 'नारगी' माना है। मेरे विचार मे यह शब्द मूलत न तो अरबी है और न फारसी। नारगी फल के मूल स्थान तथा विकास के सम्बन्ध मे गैलेशियो की खोजो से यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि इस फल का मूल स्थान भारत ही है। सिलहट, कुमायूँ, सिक्किम तथा नीलगिरि की पहाडियो पर आज भी इसकी जगली जातियाँ पायी जाती है। ऐसी स्थिति मे नारगी के मूल शब्द को फारसी या अरबी का न होकर किसी भारतीय भाषा का ही होना चाहिए।

संस्कृत मे नारगी के लिए 'नागरग' शब्द है। मेरे विचार मे मूल शब्द यही है। सस्कृत मे 'नाग' का अर्थ सिन्दूर होता है। नारगी सिन्दूर के रग की होती है, इसीसे उसे 'नागरग' या 'नाग रगक' आदि कहा गया है। सस्कृत का 'नागरग' शब्द ही भारत की अनेकानेक भाषाओं और बोलियो मे नारगी, नारगि तथा नवरगी आदि रूपो मे मिलता है। भारत से ही यह शब्द फारसी तथा अरबी मे 'ग' के 'ज' हो जाने से यह 'नारज' हो गया। अरबी भाषा से यह शब्द यूरोप मे पहुँचा और कुछ ध्वनि-परिवर्तन के साथ विभिन्न भाषाओं मे प्रचलित हो गया। लैटिन मे इसका रूप 'ओरेजिया' मिलता हैं तो पुर्तगाली मे 'लारज', स्पेनिश मे 'नारज' फ्रान्सीसी मे 'औरेज', पुरानी अग्रेजी मे 'ओरेंज' और जर्मन तथा अग्रेजी मे 'ऑरज'। द्रविड भाषाओ मे सुगध के अर्थ मे एक शब्द 'नार' मिलता है। कुछ लोग इससे भी 'नारगी' का सबध मानते है।

निकर (Knickers)—हिन्दी मे 'निकर' जाँघिया को कहते है। अग्रेजी मे मूल शब्द निकर न होकर Knickerbockers है। निकर या निकर्ज इसका सक्षिप्त रूप है। 'निकरबॉकर्ज' मूलत किसी पोशाक का नाम न होकर विशेष लोगो का नाम है जो डच थे और बाद मे न्यूयार्क मे बस गए थे। उन्ही के नाम के आधार पर इनके छोटे पाजामे या जाँघिये को भी अग्रेजी मे 'निकर बॉकर्ज' कहने लगे। पहले यह पहनावा शिष्ट नही समझा जाता था और लोग इसका मज़ाक उडाते थे। बाद मे खेल आदि मे सुविधाजनक होने के कारण इसका प्रचार बढा और यह शिष्ट लोगो द्वारा भी गृहीत हो गया। मूलत यह शब्द डच भाषा का है।

पंचमार्गी (अग्रेजी fifth columnist का अनुवाद)—अग्रेजी का यह प्रयोग मूलत स्पेनी प्रयोग पर आधारित है। १९३९ मे ई० मोला ने स्पेनी गृहयुद्ध के समय मैडरिड पर चारो ओर से चढ़ाई की। चार ओर से चार

सनायें (an army force of four columns) तो थी ही उसने रेडियो से कहा कि इन चार के अतिरिक्त एक पाँचवीं (fifth column) भी है जो शहर में भीतर है। उसका आशय उन स्वपक्षीय गुप्त काम करने वालों से था जो नगर में थे। तबसे किसी देश या नगर में बाहरी शत्रु की ओर से गुप्तचर का काम करने वाले या तोड़ फोड़ करने वाले के लिए इस fifth columnist या पंचमार्गी का प्रयोग होता है।

पाण्डुलिपि— हस्तलिखित ग्रन्थ के लिए हिन्दी में पाण्डुलिपि शब्द पर्याप्त प्रचलित है। सामान्यतः शब्द को देखने से स्पष्ट नहीं होता कि इसका यह अर्थ कैसे हो गया।

पाण्डुलिपि में स्पष्ट ही दो शब्द हैं पाण्डु और लिपि। पाण्डु का अर्थ इस संदर्भ में सफेद है। विचारणीय यह है कि सफेद लिपि से हस्तलिखित ग्रन्थ का क्या सम्बन्ध है? हस्तलिखित ग्रन्थों में भी लिपि काली नीली लाल या हरी किसी भी रंग की हो पर सफेद तो नहीं ही होगी। फिर हस्तलिखित ग्रन्थ के लिए पाण्डुलिपि शब्द का प्रयोग बहुत ही रहस्यमय है।

वस्तुतः 'पाण्डुलिपि' अपने यहाँ का पुराना शब्द है। इसका मूल अर्थ लिखा हुआ मसविदा या ड्राफ्ट है। अपने यहाँ मसविदे पहले लकड़ी की पट्टी पर या सपाट धरती पर खरिया से लिखे जाते थे। अतएव उनकी लिपि सफेद (पाण्डु) होती थी। इसी कारण उन्हें पाण्डुलिपि कहा जाता था। आधुनिक युग में गलती से इस शब्द का प्रयोग हस्तलिखित पोथी के लिए होने लगा, वही प्रयोग अब तक चला आ रहा है। अब कुछ लोगों को यह अशुद्धि खटकने लगी है और इसके स्थान पर हस्तलेख शब्द का प्रयोग मैन्यूस्क्रिप्ट के अनुवाद रूप में करने लगे हैं किंतु पांडुलिपि का प्रयोग कम नहीं हुआ है और न होने की संभावना है।

पॉपलिन (Poplin)—एक कपड़ा। लैटिन में एक शब्द है Papa जिसका अर्थ होता है बिशप अर्थात प्रमुख पादरी। इससे विशेषण है Papal जिसका अर्थ है पोप या बिशप का। Papal के आधार पर लैटिन भाषा में पोप या बिशप के अधीन कस्बे को papalina कहते थे। फ्रांस का एक कस्बा Avignon इस प्रकार का papalina था इसीलिए उसे papalina भी कहते थे। पापलिन कपड़ा सर्वप्रथम वहीं बना अतः उस papalina नाम के आधार पर पापलिन कहा गया।

पिआनो (Piano)—मूल शब्द इतालवी भाषा का pianoforte है। इतालवी भाषा में Piano e forte का अर्थ होता है कोमल (soft) और ऊंचा

(loud)'। पिआनो के अविष्कर्ता क्रिस्तोफरि (Christofori) ने जब १७१०-११ मे पिआनो बनाया तो उन्हें इस बाजे मे यह विशेपता दिखाई पडी, अर्थात् इसकी आवाज ऊँची या तेज होने पर भी अमधुर या अकोमल नही होती। पिआनो शब्द उसी pianoforte का सक्षिप्त रूप या इस युग्म शब्द का प्रथम अश है। इतालवी Piano का अर्थ कोमल या बराबर है जो लैटिन शब्द planus से सबद्ध है।

पेन्सिल (Pencil)—हिंदी मे यह शब्द अग्रेजी से आया है। इसका मूल शब्द लैटिन का penicilum है, जिसका अर्थ 'छोटी पूँछ' होता है। असल मे योरोप मे प्राचीन काल मे पख की कलम से लिखने के साथ-साथ रँगने के बुरुश की तरह के छोटे बुरुश से भी लिखा जाता था।। यह बुरुश 'पूँछ' का बनता था जो 'छोटी पूँछ' सा दिखाई पडता था। इसीलिए उसे penicillum या 'छोटी पूँछ' कहते थे। यह 'पख का ब्रश' पेन से तेज चलता था। बाद मे जब इसके स्थान पर 'पेन्सिल' का प्रयोग हुआ तो, तो 'पेन्सिल' को यही नाम दे दिया गया। यद्यपि 'पेन्सिल' का 'छोटी पूँछ' से कोई सबध नही है। इस तरह, पेन्सिल का मूल अर्थ है 'छोटी पूँछ'।

पेन (Pen)—'पेन' का सबध लैटिन penna से है, जिसका अर्थ पख होता है। इसका अर्थ यह है कि पहले पख की कलम से लिखा जाता था। पुरानी तस्वीरो मे पख की कलम प्राय मिलती है। बाद मे लकडी और लोहे की कलम बनने लगी, तब भी यही नाम चलता रहा।

पैंट (Pants)—मूलत यह शब्द ग्रीक भाषा का Patnaleon है जिसका अर्थ 'सब शेर' (all lion) होता है। इतालवी भाषा मे एक समय मे यह व्यक्ति का नाम होता था। वेनिस के सत पैंतालियन (Saint Pantaleone) का नाम भी इसी पर आधारित था। उनके कारण यह नाम और भी प्रचलित हुआ। प्रचलन का परिणाम यह हुआ कि इतने बडे संत का पवित्र नाम धीरे-धीरे पतित होने लगा और इतालवी भाषा की कामदियो (comedies) मे पैंतालोन (Pantolone) नाम का एक विदूषक या जोकर की तरह का पात्र होने लगा। इस पात्र की वेषभूषा भी प्राय निश्चित सी हो गई। एक ऐसा पायजामा जो घुटने के नीचे चुस्त होता था, तथा जाँघ के ऊपर उभरा हुआ' पैर मे स्लीपर और आँखो पर चश्मा आदि। इस पात्र का जोकर के रूप मे इतना प्रचार हुआ कि धीरे-धीरे इसके नाम का Pantaloon रूप मे प्रयोग इतालवी मे जोकर या विदूषक के अर्थ मे होने लगा। वहाँ के

सनायें (an army force of four columns) ता था ही उसने रेडियो से कहा कि इन चार के अतिरिक्त एक पाँचवीं (fifth column) भी है जो शहर में भीतर है। उसका आशय उन स्वयंसेवक गुप्त काम करने वाला से था जो नगर में थे। तब से किसी देश या नगर में बाहरी शत्रु की ओर से गुप्तचर का काम करने वाले या तोड़फोड़ करने वाले के लिए इस fifth columnist या पचमार्गी का प्रयोग होता है।

पाण्डुलिपि— हस्तलिखित ग्रन्थ के लिए हिन्दी में पाण्डुलिपि शब्द पर्याप्त प्रचलित है। सामान्यतः शब्द को देखने से स्पष्ट नहीं होता कि इसका यह अर्थ कैसे हो गया।

'पाण्डुलिपि' में स्पष्ट ही दो शब्द हैं पाण्डु और लिपि। पाण्डु का अर्थ इस संदर्भ में सफेद है। विचारणीय यह है कि सफेद लिपि से हस्तलिखित ग्रन्थ का क्या सम्बन्ध? हस्तलिखित ग्रन्थों में भी लिपि काली, नीली, लाल या हरी किसी भी रंग की हो पर सफेद तो नहीं ही होगी। फिर हस्तलिखित ग्रन्थ के लिए पाण्डुलिपि शब्द का प्रयोग बहुत ही रहस्यमय है।

वस्तुतः पाण्डुलिपि अपने यहाँ का पुराना शब्द है। इसका मूल अर्थ लिखा हुआ मसविदा या ड्राफ्ट है। अपने यहाँ मसविदे पहले लकड़ी की पट्टी पर या सपाट धरती पर खरिया से लिखे जाते थे। अतएव उनकी लिपि सफेद (पाण्डु) होती थी। इसी कारण उन्हें पाण्डुलिपि कहा जाता था। आधुनिक युग में गलती से इस शब्द का प्रयोग हस्तलिखित पोथी के लिए होने लगा, वही प्रयोग अब तक चला आ रहा है। अब कुछ लोगों को यह अशुद्धि खटकने लगी है और इसके स्थान पर हस्तलेख शब्द का प्रयोग में पूर्वकृष्ट के अनुवाद रूप में करने लगे हैं किन्तु पाण्डुलिपि का प्रयोग कम नहीं हुआ है और न होने की संभावना है।

पॉपलिन (Poplin)—एक कपड़ा। लटिन में एक शब्द है Papa जिसका अर्थ होता है बिशप अर्थात प्रमुख पादरी। इससे विशेषण है Papal जिसका अर्थ है पोप या बिशप का। Papal के आधार पर लटिन भाषा में पोप या बिशप के अधीन कस्बे को papalina कहते थे। फ्रांस का एक कस्बा Avignon इस प्रकार का papalina था इसीलिए उसे papalina भी कहते थे। पापलिन कपड़ा सर्वप्रथम वहीं बना अतः उसे papalina नाम के आधार पर पापलिन कहा गया।

पिआनो (Piano)—मूल शब्द इतालवी भाषा का pianoforte है। इतालवी भाषा में Piano e forte का अर्थ होता है कोमल (soft) और ऊंचा

(loud)' । पिआनो के अविष्कर्ता क्रिस्तोफरि (Christofori) ने जब १७१०-११ मे पिआनो बनाया तो उन्हे इस बाजे मे यह विशेषता दिखाई पडी, अर्थात् इसकी आवाज ऊँची या तेज होने पर भी अमधुर या अकोमल नही होती । पिआनो शब्द उसी pianoforte का सक्षिप्त रूप या इस युग्म शब्द का प्रथम अश है । इतालवी Piano का अर्थ कोमल या बराबर है जो लैटिन शब्द planus से सबद्ध है ।

पेन्सिल (Pencil)—हिंदी मे यह शब्द अग्रेजी से आया है । इसका मूल शब्द लैटिन का penicilum है, जिसका अर्थ 'छोटी पूँछ' होता है । असल मे योरोप मे प्राचीन काल मे पख की कलम से लिखने के साथ-साथ रँगने के बुरुश की तरह के छोटे बुरुश से भी लिखा जाता था । । यह बुरुश 'पूँछ' का बनता था जो 'छोटी पूँछ' सा दिखाई पडता था । इसीलिए उसे penicillum या 'छोटी पूँछ' कहते थे । यह 'पख का ब्रश' पेन से तेज चलता था । बाद मे जब इसके स्थान पर 'पेन्सिल' का प्रयोग हुआ तो, तो 'पेन्सिल' को यही नाम दे दिया गया । यद्यपि 'पेन्सिल' का 'छोटी पूँछ' से कोई सबध नही है । इस तरह, पेन्सिल का मूल अर्थ है 'छोटी पूँछ' ।

पेन (Pen)—'पेन' का सबध लैटिन penna से है, जिसका अर्थ पख होता है । इसका अर्थ यह है कि पहले पख की कलम से लिखा जाता था । पुरानी तस्वीरो मे पख की कलम प्राय. मिलती है । बाद मे लकड़ी और लोहे की कलम बनने लगी, तब भी यही नाम चलता रहा ।

पैंट (Pants)—मूलत यह शब्द ग्रीक भाषा का Patnaleon है जिसका अर्थ 'सब शेर' (all lion) होता है । इतालवी भाषा मे एक समय मे यह व्यक्ति का नाम होता था । वेनिस के सत पैंतालियन (Saint Pantaleone) का नाम भी इसी पर आधारित था । उनके कारण यह नाम और भी प्रचलित हुआ । प्रचलन का परिणाम यह हुआ कि इतने बडे सत का पवित्र नाम धीरे-धीरे पतित होने लगा और इतालवी भाषा की कामदियो (comedies) मे पैंतालोन (Pantolone) नाम का एक विदूषक या जोकर की तरह का पात्र होने लगा । इस पात्र की वेषभूषा भी प्राय. निश्चित सी हो गई । एक ऐसा पायजामा जो घुटने के नीचे चुस्त होता था, तथा जाँघ के ऊपर उभरा हुआ' पैर मे स्लीपर और आँखो पर चश्मा आदि । इस पात्र का जोकर के रूप मे इतना प्रचार हुआ कि धीरे-धीरे इसके नाम का Pantaloon रूप मे प्रयोग इतालवी मे जोकर या विदूषक के अर्थ मे होने लगा । वहाँ के

तत्कालीन जोकरों की सर्वप्रमुख विशेषता यह पायजामा थी अतः Pantaloon का बहुवचन रूप Pantaloons इस प्रकार के पायजामे के लिए प्रचलित हो गया। इंगलैंड में इटली से यह शब्द १६वीं सदी के आसपास उस पायजामे के अर्थ में आया और यह इस शब्द का सौभाग्य है कि जोकरों की पोशाक होते हुए भी शिष्ट लोगों द्वारा प्रयुक्त होने लगा। आज का अंग्रेजी Pants शब्द pantaloons का ही संक्षिप्त रूप है। हिन्दी 'पतलून' का संबंध भी इसी pantaloon से है।

पम्फलेट (Pamphlet)—इसका मूल है ग्रीक शब्द pamphilus जिसका अर्थ है 'वह जिसे सभी प्यार या पसन्द करें'। यह बात दूसरी है कि आज बहुत से पम्फलेटों को कोई भी पसंद नहीं करता। १२वीं सदी में एक लैटिन कविता को लोगों ने बहुत पसन्द किया और इसी पसंद के आधार पर उसे pamphilet कहा। यह छोटी पुस्तक के रूप में थी। बाद में इस प्रकार की हर पतली पुस्तक pamphilet कहलाई। इसी का विकसित रूप pamphl[et] बन गया जो विशेष प्रकार की पतली पुस्तकों (इश्तहार या सूचना आदि रूप में प्रकाशित) के लिए प्रयुक्त होने लगा। इस तरह पम्फलेट मूलतः एक सर्वप्रिय कविता का लोगों द्वारा दिया गया नाम है।

पराग्राफ (paragraph)—पराग्राफ का मूल अर्थ है 'एक छोटा चिह्न'। भारत की तरह ही यूरोप में भी प्राचीन काल में पुस्तकों में वाक्य के सभी शब्द एक में मिलाकर लिखे जाते थे। पूर्णविराम, अर्धविराम या पराग्राफ जैसा कोई विभाजक चिह्न या रूप कहीं नहीं होता था। पाठकों को जब इस त्रुटि के कारण कठिनाई का अनुभव होने लगा तो लेखकों ने—सर्वप्रथम ग्रीक लेखकों ने—उस पंक्ति के बगल में या नीचे एक छोटा तिरछा निशान लगाना शुरू किया, जहाँ से नए विषय या विषय के नए अंग या प्वाइंट का प्रारंभ होता था। इस छोटे तिरछे निशान को ग्रीक में paragraphos कहा गया। ग्रीक में para का अर्थ है 'के किनारे या बगल में' और graphos का अर्थ है 'लिखा हुआ'। पहले यह निशान किनारे या बगल में बनाया जाता था इसीलिए इसे यह नाम दिया गया। बाद में जहाँ यह निशान होता था वहाँ से आगे की सामग्री अलग पंक्ति से लिखी जाने लगी और यह नाम इस प्रकार अलग लिखी जाने वाली सामग्री के लिए प्रयुक्त होने लगा। अंग्रेजी शब्द para[graph]
[p]aragraphos लैटिन paragraphous, फ्रेंच paragraphe का ही विकसित
[रू]प है।

पोलो (polo)—घोड़े पर सवार होकर खेला जाने वाला हॉकी की तरह का एक खेल। पोलो खेल का प्रारंभ कहाँ हुआ, इस संवन्ध मे विवाद है। कुछ विद्वान् इसका जन्म उत्तरी भारत मे मानते है। किन्तु कुछ लोग फारस, चीन या तिब्बत आदि का भी नाम इस दृष्टि से लेते है। सभावना यही है कि इसका मूल स्थान उत्तरी भारत है। 'पोलो' शब्द मूलत कहाँ का है इस सवध मे भी मतैक्य नही है। कुछ लोग इसे मूलतः तिब्वती शब्द मानते है। तिब्वती पुलु (pulu) का अर्थ गेंद होता है। कुछ अन्य लोग इसे सिंव-सभ्यता की भाषा का मानते है। इस रूप मे इसे द्रविड शब्द माना जा सकता है। अधिकांश लोग इसे 'वाल्टी' भाषा का मानते है। हूणो की भाषा से भी इसका सवव जोड़ा गया है। सभावना यही है कि यह शब्द वाल्टी भाषा का था तथा उत्तर भारत एव तिब्वत आदि मे इसका प्रचार था और इसका मूल अर्थ मात्र गेद था। भारत से यह खेल १८७१ मे इग्लैंड पहुँचा। चीन जापान आदि मे भी इसका प्रचार है।

प्लेग (plague)—ताउन। मूलतः इस शब्द का अर्थ है 'मुक्का' या 'धक्का'। आरभ मे यह महामारी चिकित्सको के लिए एक 'ज़बर्दस्त धक्का' थी क्योकि इसका सामना करना अत्यन्त कठिन था, इसीलिए इसे 'प्लेग' कहा गया। मूल शब्द ग्रीक का plaga है जो लैटिन मे भी यही है। अग्रेज़ी मे फ्रेच से होते आया है। पहले प्लेग, प्लेग के अर्थ मे प्रयुक्त न होकर महामारी का पर्याय था। इसके अन्तर्गत हैज़ा आदि कई अन्य वीमारियाँ भी थी। इसका प्राचीनतम उल्लेख ४३० ई० पू० से भी पूर्व का है। प्लेग वीमारी का मूल स्थान पहले अफ्रीका माना जाता था किन्तु नई खोजोने यह सिद्ध कर दिया है कि यह अन्य देशो मे भी था।

फ़ार्म या फ़ारम (Farm)—वहुत वड़ा खेत या खेत। मूलत. यह लैटिन शब्द firmus है जिसका अर्थ है निश्चित या ठीक करना। इसी से लैटिन मे इसका प्रयोग 'किसी जमीन के लिए निश्चित की गई लगान या मालगुजारी' के लिए होता था। यह लैटिन firma ही फ्रासीसी मे होते अग्रेज़ी मे 'फार्म' हो गया। वाद मे १६ वी सदी मे इसका अर्थ हो गया ज़मीन का वह टुकड़ा जिसके लिए लगान निश्चित की गई हो। इस प्रकार जमीन के टुकड़े के लिए इसके प्रयोग ने धीरे-धीरे इसे खेत आदि वना दिया। इस तरह 'फार्म' मूलत 'फार्म की लगान है'। पैसा ज़मीन वन गया।

फिरंगी—इस शब्द का यो तो हिन्दी मे कई अर्थों मे प्रयोग होता है, किन्तु इसका अधिक प्रचलित अर्थ गोरा या यूरोपनिवासी है। पहले इसका प्रयोग

पुतगाली लोगों के लिए भी होता था। ह्वास्टन आदि कुछ विद्वानों ने इस शब्द को मलयालम शब्द परगी से निकला माना था किन्तु यह मत अमान्य सिद्ध हो चुका है। मूलत यह शब्द लटिन Francus तथा ओल्ड हाई जमन Franco है जिसका मूल अथ एक प्रकार का भाला होता था। प्राचीन अग्रेजी franca भी यही शब्द है। इस हथियार के चलाने म विशेष दक्षता के कारण बाद म एक जमन जाति का नाम Frank या Franc पड गया। इन लोगों के स्थान फ्रकोनिया (Franconia) का नाम भी इन्ही के नाम के आधार पर पडा। इन्ही फ्रक लोगो ने छठी सदी म गाल पर आक्रमण कर उसे जीत लिया तथा फ्रास की स्थापना की। फ्रास नाम इन्ही लोगो के आधार पर है। फ्रको जाति का बोधक यह शब्द फ्रासीसी तथा स्पेनिश होते १००० ई० स पूव ही अरबी तथा फारसी म पहुँचा। अरबी म इसके इफरजी फिरजी तथा फारसी म फरगी फिरगी आदि रूप मिलते हैं। यही स धीरे धीरे यह शब्द एशिया के अनेक देशों म प्रचलित हो गया। जसे चीनी फुलग तिब्बती पेलाग हिन्दी फिरगी तथा तमिल और सिहली 'परगी' आदि। ऐसा अनुमान लगता है कि एशिया म यह शब्द पश्चिमी जाति के अथ म आया। (अग्रेजी म Frank शब्द का एक अथ भी पश्चिमी जाति है) इसीलिए भारत आदि म पश्चिम से जब पुतगाली आए तो उन्हे इस नाम स पुकारा गया। फिरगी शब्द भारत म प्राय आरम्भ से ही हीनार्थी रहा है। इस प्रकार मूलत यह शब्द हथियार विशेष के चलाने म दक्ष एक यूरोपीय जाति है।

यह शब्द हमारे जन जीवन म घर कर गया था और हिन्दी प्रदेश के अनेक क्षेत्रों म इसका खुलकर प्रयोग हुआ है

देसवा के कइलस बरबाद ई फिरगिया

फूहड—इस शब्द का अथ भद्दा, बेढगा, अश्लील तथा बदगा आदि होता है। इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है। हिन्दी शब्दसागर म इसकी व्युत्पत्ति सस्कृत पव+घट स मानी गई है। पव का अथ पवित्र करने वाला होता है। इसका सबध सस्कृत धातु पू स है जिसका अथ पवित्र करना या शोधना है। शब्दसागर म इस व्युत्पत्ति म 'पव' का अथ गोबर लिया गया है। यह शायद इसलिए कि गोबर भी भूमि आदि को पवित्र करने वाला है। दूसरे शब्द घट का अथ गढना' है। इस प्रकार गोबर गढन स फूहड' का भाव निकला माना गया है। कहना न होगा कि यह कल्पना द्राविड प्राणायाम है। ध्वनि की दृष्टि स भी पव+घट स फूहड का भाव निकलता असामान्य-सा है। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति रामचन्द्र वर्मा के प्रामाणिक हिन्दी कोश म दी गई है। उनके अनुसार 'फूहड शब्द अनुकरणात्मक है।

मेरा अनुमान यह है कि 'फूहड' शब्द का सबंध उर्दू तथा फारसी मे प्रचलित शब्द 'फुहश' से है। हिन्दी मे यह शब्द फारसी से आया है पर मूलत. यह अरबी भाषा का शब्द है। अरबी की एक धातु है 'फे-हे-शीन' जिसका अर्थ है 'बहुत बुरा होना'। इसी आधार पर अरबी मे 'फुहश' शब्द का अर्थ 'बहुत बुरा' या 'बहुत बुरे शऊर वाला' होता है।

फ़ोटो (photo)—इस ग्रीक उपसर्ग का अर्थ है 'प्रकाश'। इसे 'ग्राफ' (लिखना) मे जोडकर शब्द बना 'फोटोग्राफ' जिसका अर्थ हुआ 'प्रकाश से लिखना'। कैमरा से बने चित्र प्रकाश से लिखे या बने रहते है अत वे फोटोग्राफ कहलाए। हिन्दी का 'फोटो' (चित्र, तस्वीर) शब्द अंग्रेजी 'फोटोग्राफ' का संक्षिप्त रूप है। अंग्रेज़ी मे अकेले 'फोटो' शब्द प्राय नही चलता।

बँगला—बँगला विशेष प्रकार के मकान को कहते है जो प्रायः एक मंजिला होता है तथा जिसके चारो ओर बाग होता है। इस प्रकार के मकान (प्राय मिट्टी की दीवाल और फूस की छत के) बंगाल मे बहुत पहले से बनते आ रहे है। वही की देखा-देखी मुगल काल मे उत्तर भारत मे भी ऐसे मकान बेगमो के लिए बनने लगे थे। अंग्रेज जब भारत मे आए तो ये भारतीय जलवायु के अनुकूल ये मकान उन्हे भी आकर्षित किए बिना न रह सके। परिणाम यह हुआ कि ऐसे मकानो का प्रचार बहुत बढा। अंग्रेज़ी भाषा मे १७वी सदी मे बँगलो (bungalow) शब्द का प्रयोग शुरू हुआ जो हिन्दी आदि अन्य भारतीय भाषाओ मे 'बँगला' या 'बांगला' आदि रूपो मे मिलता है। स्पष्ट ही इस शब्द का संबंध, इसके मूल स्थान 'बंगाल' या 'बाँगला' से है। 'बाँगला' मे 'बंग' तो इस देश का पुराना नाम है (अंग बंग आदि) और 'ला' संबंध-कारक की विभक्ति हे। अर्थात् 'बंगला' का मूल अर्थ है 'बंग का'।

बकरीद—'बकरीद' मुसलमानो का एक त्योहार (१०वी जिल हिज्जा को) है। कहा जाता है कि हजरत इब्राहिम ने खुदा के नाम पर अपने लडके हजरत इस्माइल (सुन्नियो के अनुसार) या इशाक (शियो के अनुसार) की कुर्बानी कर दी थी। उसी की यादगार मे अब तक मुसलमान लोग कुर्बानी करते हैं। कुर्बानी अपनी सबसे प्यारी चीज की करनी चाहिए पर उसके बदले पशुओ की की जाती है।

इस त्योहार का पुराना नाम 'ईदुल अज़हा' है। 'ईद' का अर्थ है बार-बार आने वाली खुशी या त्योहार और 'अज़हा' का अर्थ है कुर्बानी का जानवर या कुर्बानी। इस प्रकार 'ईदुल अज़हा' का अर्थ हे 'कुर्बानी का त्योहार'।

सईदन्नपुरी ने भी 'बे-लाग़ पे' से इसे बना माना है। उनके अनुसार इस धातु का अर्थ 'दुबला करना' है और इस आधार पर बला का मूल अर्थ में वह ग़म है जो जिस्म को दुबला कर दे। इन दोनों में दूसरा ही कदाचित ठीक है।

बहादुर— बहादुर का अर्थ वीर है। किंतु मूलत इसमें वीर का कोई भाव नहीं है। बहा फारसी शब्द है और इसका अर्थ मूल्य या कीमत होता है। दुर एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ मोती है। यह शब्द फारसी में दुर से दुर हो गया। बहादुर इन दो शब्दों (बहा+दुर) के योग से बना और इसका मूल अर्थ है मोती की सी कीमत वाला या बेश कीमत। लगता है कि मध्ययुग में लड़ाई में तेज लोगों की विशेष इज्जत होती थी अत उन्हें यह खिताब दिया जाता था और बाद में उनके गुण (वीरता) के लिए इसका प्रयोग होने लगा। खिताब के रूप में (खान बहादुर राय बहादुर) अभी हाल तक इसका प्रयोग भारत में भी होता रहा है।

बाइबिल—बाइबिल शब्द का मूल आधार बिबलास शब्द है। पेपीरस जिससे पहले पेपर बनता था की भीतरी छाल को ग्रीक भाषा में बिबलास कहते थे। बिबलास लिखने के काम आता था। इसी से पुस्तकें बनती थीं। अत इसके आधार पर ग्रीक शब्द बिबलिया बना। बिबलिया शब्द का अर्थ 'पुस्तक' है। अंग्रेज़ी के बिबलियोग्रफी शब्द में यह शब्द आज भी सुरक्षित है। आगे चलकर अच्छे प्रकार के कागज बने किंतु अंधविश्वास तथा प्राचीन वादिता के कारण धर्म ग्रंथों के लिए पपिरस की भीतरी छाल बिबलास का ही प्रयोग होता रहा जैसे भारत में मंत्र लिखने के लिए आज भी लोग भोजपत्र ही पसन्द करते हैं। इस प्रकार बिबलिया शब्द का अर्थ सामान्य पुस्तक से हटकर धर्म ग्रंथ हो गया। फिर धीरे धीरे सिमटकर एक विशिष्ट धर्म ग्रंथ के लिए यह रूढ़ हो गया और लैटिन से होता हुआ फ्रेंच तथा अंग्रेज़ी आदि 'बाइबिल' तथा जर्मन में 'बाइबेल' हो गया।

बाईकॉट (boycott)—स्वतन्त्रता आन्दोलन में विदेशी चीज़ों का बहिष्कार या बाईकाट का आन्दोलन चला था। उस युग के अनेक हिन्दी उपन्यासों में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। 'बाईकॉट' का अर्थ है बहिष्कार। इतिहास बतलाता है कि सर्वप्रथम प्रजा द्वारा सुसंगठित बहिष्कार कैप्टन चार्ल्स कनिंघम बायकाट नाम के एक सज्जन का हुआ था इसीलिए इन्हीं के नाम (बॉयकाट) के आधार पर बहिष्कार करने के अर्थ में बॉयकाट शब्द अंग्रेज़ी में चल पड़ा। बॉयकाट साहब अर्ल ऑव अर्न स्टेट के मेयो (आयरलैंड) प्रदेश में ...

(land agent) थे। १८८० मे इन्होने वहाँ लगान बहुत बढा दी। परिणामत. वहाँ के सभी लोग इनके विरुद्ध हो गए। दुकानदारो ने इन्हे सामान बेचना बन्द कर दिया, धोबी ने कपड़ा धोना, नाई ने हजामत बनाना आदि। अत मे जब ये परेशान हो गए तो चुपचाप इग्लैंड लौट आए। इसका समाचार वहाँ के समाचार पत्रो मे मुखपृष्ठ पर छपा और उसी दिन से इनका नाम सगठित बहिष्कार करने के अर्थ मे अग्रेजी भाषा की सम्पत्ति बन गया। सच है, कभी-कभी बुरा करने का परिणाम भी अच्छा निकल जाता है। अत्याचार करके बॉयकॉट महोदय अमर हो गए। बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा ?

बावर्ची—बावर्ची रसोइये को कहते है। यह शब्द फारसी का है और वहाँ इसका रूप 'बावर्ची' है। 'बावर' का फारसी मे 'विश्वास' या 'यकीन' अर्थ होता है और बावर्ची वह है जिसका विश्वास' किया जाय। इस प्रकार 'बावर्ची' शब्द का मूल अर्थ 'विश्वासपात्र' था और अब परिवर्तित होकर 'रसोइया' हो गया है। रहस्य यह है कि 'बावर्ची' आरभ मे उस 'अफसर' को कहते थे जो बादशाहो या बडे लोगो के रसोईघर का प्रबधक होता था। उसका काम था कि भोजन तैयार होने पर उसे चख ले अर्थात् यह देख ले कि भोजन मे जहर आदि तो नही है और तब अपने स्वामी को खिलावे। इस रूप मे वह अफसर मालिक का विश्वासपात्र होता था इसीलिए उसे 'बावर्ची' कहा गया। लगता है कि बाद मे कुछ सामान्य स्तर के लोगो में इस शब्द का प्रचार हुआ और वे लोग रसोइया अलग और विश्वासपात्र अफसर अलग नही रख सकते थे, अत उनके यहाँ एक ही व्यक्ति दोनो कार्य करने लगा, इस प्रकार बावर्ची मे खाना पकाने वाले का भाव आ गया। सच है महिमा घटी समुद्र की रावण बसा पडोस। बावर्ची शब्द को कुछ कम धनी या सामान्य लोगो के सपर्क मे आने पर 'अफसर' से 'खाना पकाने वाला महाराज' बनना पडा।

बिगुल (bugle)—मूलत. यह शब्द लैटिन का buculus है जिसका अर्थ था 'छोटा बैल'। फ्रेंच में यह शब्द परिवर्तित होकर bugle हो गया। और वहाँ से अग्रेजी मे आया। उस समय बैल आदि के सीग के बिगुल बनते थे (तुलनीय है सिंहनाद, सिंहा, शृंगी आदि शब्द) अत बिगुल के लिए bugle-horn (=बैल-सीग) का प्रयोग होने लगा। बाद मे 'हार्न' शब्द छूट गया और बिगुल के अर्थ मे bugle ही रह गया। इस प्रकार बिगुल का अर्थ है बैल आदि। अंग्रेजी के बहुत कम शब्दो से हिन्दी मे मुहावरे बने है। बिगुल से 'बिगुल

सईदुनपुरी ने भी बे लाग पे से इसे बना माना है। उनके अनुसार इस धातु का अर्थ 'दुबला करना' है और इस आधार पर बला का मूल अर्थ में वह गम है जो जिस्म को दुबला कर दे। इन दोनों में दूसरा ही कदाचित ठीक है।

बहादुर—बहादुर का अर्थ वीर है। किंतु मूलतः इसमें वीर का कोई भाव नहीं है। बहा फारसी शब्द है और इसका अर्थ मूल्य या कीमत होता है। दुर्र एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ मोती है। यह शब्द फारसी में से दुर हो गया। बहादुर इन दो शब्दों (बहा+दुर) के योग से बना। इसका मूल अर्थ है मोती की सी कीमत वाला या बेश कीमत। लगता कि मध्ययुग में लड़ाई में तेज लोगों की विशेष इज्जत होती थी अतः उन्हें य खिताब दिया जाता था और बाद में उनके गुण (वीरता) के लिए इसका प्रयोग होने लगा। खिताब के रूप में (खान बहादुर राय बहादुर) अभी हाल तक इसका प्रयोग भारत में भी होता रहा है।

बाइबिल—बाइबिल शब्द का मूल आधार बिबलास शब्द है। पेपीरस जिससे पहले पेपर बनता था की भीतरी छाल को ग्रीक भाषा में बिबलास कहते थे। बिबलास लिखने के काम आता था। इसी से पुस्तकें बनती थीं। अतः इसके आधार पर ग्रीक शब्द बिबलिया बना। बिबलिया शब्द का अर्थ 'पुस्तक' है। अंग्रेजी के 'बिबलियाग्रफी' शब्द में यह शब्द आज भी सुरक्षित है। आगे चलकर अच्छे प्रकार के कागज बने किंतु अंधविश्वास तथा प्राचीन वादिता के कारण धर्म ग्रंथों के लिए पपिरस की भीतरी छाल बिबलास का ही प्रयोग होता रहा जैसे भारत में मंत्र लिखने के लिए आज भी लोग भोजपत्र ही पसन्द करते हैं। इस प्रकार बिबलिया शब्द का अर्थ सामान्य पुस्तक से हटकर धर्म ग्रंथ हो गया। फिर धीरे धीरे सिमटकर एक विशिष्ट धर्म ग्रंथ के लिए यह रूढ़ हो गया और लैटिन से होता हुआ फ्रेंच तथा अंग्रेजी आदि 'बाइबिल' तथा जर्मन में बाइबल हो गया।

बाईकाट (boycott)—स्वतंत्रता आन्दोलन में विदेशी चीजों का बहिष्कार या बाईकाट का आन्दोलन चला था। उस युग के अनेक हिन्दी उपन्यासों में इस शब्द का प्रयोग मिलता है। 'बाईकाट' का अर्थ है बहिष्कार। इतिहास बतलाता है कि सर्वप्रथम प्रजा द्वारा सुसंगठित बहिष्कार कैप्टेन चार्ल्स कनिंघम बायकॉट नाम के एक सज्जन का हुआ था इसीलिए इन्हीं के नाम (बायकॉट) के आधार पर बहिष्कार करने के अर्थ में बॉयकॉट शब्द अंग्रेजी में चल पड़ा। बायकाट साहब अर्ल ऑफ अर्न स्टेट के मेयो (आयरलैंड) प्रदेश में कारिन्दा

(land agent) थे। १८८० मे इन्होने वहाँ लगान बहुत बढा दी। परिणामत वहाँ के सभी लोग इनके विरुद्ध हो गए। दुकानदारो ने इन्हे सामान वेचना वन्द कर दिया, धोवी ने कपडा धोना, नाई ने हजामत बनाना आदि। अत मे जव ये परेशान हो गए तो चुपचाप इग्लैड लौट आए। इसका समाचार वहाँ के समाचार पत्रो मे मुखपृष्ठ पर छपा और उसी दिन से इनका नाम सगठित बहिष्कार करने के अर्थ मे अग्रेजी भाषा की सम्पत्ति वन गया। सच है, कभी-कभी बुरा करने का परिणाम भी अच्छा निकल जाता है। अत्याचार करके बॉयकॉट महोदय अमर हो गए। बदनाम अगर होगे तो क्या नाम न होगा ?

बावर्ची—बावर्ची रसोइये को कहते है। यह शब्द फारसी का है और वहाँ इसका रूप 'बावर्ची' है। 'बावर' का फारसी मे 'विश्वास' या 'यकीन' अर्थ होता है और बावर्ची वह है जिसका विश्वास' किया जाय। इस प्रकार 'बावर्ची' शब्द का मूल अर्थ 'विश्वासपात्र' था और अव परिवर्तित होकर 'रसोइया' हो गया है। रहस्य यह है कि 'बावर्ची' आरभ मे उस 'अफसर' को कहते थे जो बादशाहो या बडे लोगो के रसोईघर का प्रबधक होता था। उसका काम था कि भोजन तैयार होने पर उसे चख ले अर्थात् यह देख ले कि भोजन मे जहर आदि तो नही है और तब अपने स्वामी को खिलावे। इस रूप मे वह अफसर मालिक का विश्वासपात्र होता था इसीलिए उसे 'बावर्ची' कहा गया। लगता है कि बाद मे कुछ सामान्य स्तर के लोगो मे इस शब्द का प्रचार हुआ और वे लोग रसोइया अलग और विश्वासपात्र अफसर अलग नही रख सकते थे, अत उनके यहाँ एक ही व्यक्ति दोनो कार्य करने लगा, इस प्रकार बावर्ची मे खाना पकाने वाले का भाव आ गया। सच है महिमा घटी समुद्र की रावण बसा पडोस। बावर्ची शब्द को कुछ कम धनी या सामान्य लोगो के सपर्क मे आने पर 'अफसर' से 'खाना पकाने वाला महाराज' बनना पड़ा।

बिगुल (bugle)—मूलत यह शब्द लैटिन का buculus है जिसका अर्थ था 'छोटा बैल'। फ्रैंच मे यह शब्द परिवर्तित होकर bugle हो गया। और वहाँ से अग्रेजी मे आया। उस समय बैल आदि के सीग के बिगुल बनते थे (तुलनीय है सिंहनाद, सिंहा, शृंगी आदि शब्द) अत बिगुल के लिए bugle-horn (=बैल-सीग) का प्रयोग होने लगा। बाद मे 'हार्न' शब्द छूट गया और बिगुल के अर्थ मे bugle ही रह गया। इस प्रकार बिगुल का अर्थ है बैल आदि। अग्रेजी के बहुत कम शब्दो से हिन्दी मे मुहावरे बने है। बिगुल से 'बिगुल

बजना' या 'बिगुल बजाना' आदि स्वतंत्रता आंदोलन के सिलसिले में विकसित हुए।

बिल (bill)—मूल शब्द लैटिन का bulla है जिसका अर्थ है 'मुहर'। बाद में मुहर लगे सरकारी कागज को भी bulla या bull कहने लगे। पोप की मुहर लगे कागज भी 'बुल' कहलाते थे। bulla का ही billa हुआ जो अंग्रेजी में बिल हो गया। लगता है कि प्रारंभ में जो बिल आते थे उन पर मुहर होती थी। अब सभी बिल बिल हैं चाहे मुहरयुक्त हों या बिना मुहर के।

बुखार—बुखार शब्द का प्रयोग हिन्दी में 'ज्वर' के अर्थ में होता है, पर यह इसका मूल अर्थ नहीं है। अरबी भाषा में यह धातु है 'बे खे रे' जिसका अर्थ 'भाप निकलना' या 'धुआँ निकलना' आदि होता है। 'बुखार' शब्द इसी से बना है और अरबी में इसका मूल अर्थ है 'भाप'। भाप में गर्मी होती है अतः फारसी में इसका अर्थ 'गर्मी' हो गया और ज्वर में गर्मी होती है अतः आगे चलकर फारसी में ही 'बुखार' शब्द का ज्वर के लिए भी प्रयोग होने लगा। फारसी से ही यह शब्द हिन्दी-उर्दू में आया। यद्यपि इसके साथ अरबी-फारसी के 'भाप' या 'गर्मी' आदि के भाव नहीं आए। यह इस देश में केवल 'ज्वर' का ही समानार्थी है। हाँ 'दिल या जी का बुखार निकालना' जैसे मुहावरों में 'बुखार' में हृदय के क्षोभ, 'क्रोध', दुःख आदि उद्वेगों का भी भाव आ गया है।

बैंक (bank)—यह सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा कि बैठने का 'बेंच' और रुपया लेने देने का कारबार करने वाला 'बैंक'—ये दोनों ही मूलतः एक शब्द हैं। बैंकों की मूल परम्परा इटली से आरम्भ में होती है। वहाँ का वेनिस नगर किसी समय विश्व व्यापार का केन्द्र था। अतः व्यापारियों की सहूलियत के लिए बहुत से लोग हाट बाजार के चौराहे पर बेंचों पर सिक्के रखकर बैठते थे और सिक्कों की अदला-बदली करते थे। 'बेंच' के लिए इटालियन शब्द 'बैंको' है अतः इनके बेंच जिनपर पैसे रखे रहते थे 'बैंको' कहलाते थे। बाद में ये लोग बेंच के स्थान पर टेबुल या मेज का प्रयोग करने लगे तो वही 'बैंको' नाम उन मेजों के लिए भी प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार 'बैंको' शब्द का अर्थ 'बेंच' से परिवर्तित होकर रुपये पैसे रखने की बेंच तथा और आगे चलकर रुपए पैसे रखने की मेज हो गया। और आगे चलकर रुपए पैसे की ढेर को 'बैंको' कहने लगे। और उसी से विकसित होकर 'बैंक' शब्द में आज का अर्थ आया।

अग्रेज़ी शब्द 'वेच' तथा इटैलियन वेचवाची शब्द 'वैको' या 'वैंक' ये दोनो ही वेचवाची ट्यूटनिक शब्द 'बैंका' से निकले हैं। इस प्रकार 'वेच' और 'वैंक' शब्द एक ही हैं। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारवार का प्रमुख साधन वैंक और कहाँ वैठने की एक सामान्य सी चीज वेच। नामत मौलिक रूप से दोनो एक हैं किंतु अर्थत· आज इनमे कितना अन्तर है!

वैंडमिंटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विल्फ्रेड फंक तथा कुछ अन्य लोगो के अनुसार यह खेल मूलत· भारत का है। यहाँ से यह खेल अग्रेजो के साथ १८७३ ई० मे इग्लैंड पहुँचा। व्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'वैडमिंटन' था। इसी मे सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'वैडमिटन' पड गया।

मक्खीचूस—'मक्खीचूस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-वड़े सभी करते है, किन्तु बहुत कम लोगो ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कजूस का समानार्थी कैसे वना। इस सबंध मे लोक मे एक वड़ी मनोरजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक वार एक कजूस आदमी वाजार से दो पैसे का घी लेकर अपने घर को चला। रास्ते मे सयोगवश घी मे एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने घी मे पड़ी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी घी पीने आई थी और वहुत ज्यादा घी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे वडी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना घी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त मे उसे एक युक्ति सूझी। उसने उस मरी मक्खी को मुँह मे डालकर खूव चूसा और जव उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना घी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तव उसने मक्खी थूकी। कहते हैं तभी मे कजूसो की सज्ञा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज, मर्सराइज्ड (mercerised)—विशेप प्रकार का चमकदार और मजवूत कपड़ा। इग्लैंड मे एक रगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७९१-१८६६ है। १८४४ मे इसने कपड़े के सूत को एक विशेप प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) मे भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका वना कपडा अधिक चमकदार तथा मज़वूत हो जाता था, साथ ही उसमे विभिन्न रंगो को समान्य कपडो की तुलना मे अधिक अच्छी तरह पकडने की शक्ति आ जाती थी। उस रंगरेज़

बजना या 'बिगुल बजाना' आदि स्वतंत्रता आंदोलन के सिलसिले में विकसित हुए।

बिल (bill)—मूल शब्द लैटिन का bulla है जिसका अर्थ है 'मुहर'। बाद में मुहर लगे सरकारी कागज को भी bulla या bull कहने लगे। पोप की मुहर लगे कागज भी बुल कहलाते थे। bulla का ही billa हुआ जो अंग्रेजी में बिल हो गया। लगता है कि प्रारंभ में जो बिल आते थे उन पर मुहर होती थी। अब सभी बिल बिल हैं चाहे मुहरयुक्त हों या बिना मुहर के।

बुखार—बुखार शब्द का प्रयोग हिन्दी में ज्वर के अर्थ में होता है पर यह इसका मूल अर्थ नहीं है। अरबी भाषा में यह धातु है 'बख़र' जिसका अर्थ भाप निकलना या 'धुआँ निकलना' आदि होता है। बुखार शब्द इसी से बना है और अरबी में इसका मूल अर्थ है 'भाप'। भाप में गर्मी होती है अतः फारसी में इसका अर्थ 'गर्मी' हो गया और ज्वर में गर्मी होती है अतः आगे चलकर फारसी में ही बुखार शब्द का ज्वर के लिए भी प्रयोग होने लगा। फारसी से ही यह शब्द हिन्दी उर्दू में आया यद्यपि इसके साथ अरबी-फारसी के भाप या गर्मी आदि के भाव नहीं आए। यह इस देश में केवल 'ज्वर' का ही समानार्थी है। हाँ दिल या जी का बुखार निकालना जैसे मुहावरों में 'बुखार' में हृदय के क्रोध, शोक, दुःख आदि उद्वेगों का भी भाव आ गया है।

बैंक (bank)—यह सुनकर बिना आश्चर्य नहीं होगा कि बैठने की 'बेंच' और रुपया लेन-देन का कारोबार करने वाला 'बैंक'—ये दोनों ही मूलतः एक शब्द हैं। बैंक की मूल परम्परा इटली में आरम्भ से होता है। वहाँ का वेनिस नगर किसी समय विश्व व्यापार का केंद्र था। अतः व्यापारियों की सुविधा के लिए बहुत से लोग सेंट मार्क के चौराहे पर बेंचों पर बैठकर रुपया पैसा के सिक्कों की अदला-बदली करते थे। बेंच के लिए इटालियन शब्द 'बैंका' है अतः इनके बेंच जिन पर धन रख रहते थे 'बैंको' कहलाते थे। बाद में ये लोग बेंच के स्थान पर टेबुल या मेज का प्रयोग करने लगे तो यही बैंको नाम उन मेजों के लिए भी प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार 'बैंको' शब्द का अर्थ बेंच से परिवर्तित होकर रुपया रखने का बेंच तथा और आगे चलकर रुपया-पैसा रखने की मेज हो गया। और आगे चलकर रुपया-पैसा के ढेर को बैंको कहने लगे। और उसी से विकसित होकर 'बैंक' शब्द के आज का अर्थ आया।

अग्रेज़ी शब्द 'बेंच' तथा इटैलियन बेंचवाची शब्द 'बैंको' या 'बैंक' ये दोनो ही बेंचवाची ट्यूटनिक शब्द 'बैंका' से निकले हैं। इस प्रकार 'बेंच' और 'बैंक' शब्द एक ही हैं। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारवार का प्रमुख साधन बैंक और कहाँ बैठने की एक सामान्य सी चीज बेंच। नामत मौलिक रूप से दोनो एक हैं किंतु अर्थत आज इनमे कितना अन्तर है!

बैडमिंटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विल्फ्रेड फंक तथा कुछ अन्य लोगो के अनुसार यह खेल मूलत. भारत का है। यहाँ से यह खेल अग्रेजो के साथ १८७३ ई० मे इग्लैंड पहुँचा। व्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'बैडमिंटन' था। इसी मे सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'बैडमिंटन' पड़ गया।

मक्खीचूस—'मक्खीचूस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-बड़े सभी करते है, किन्तु बहुत कम लोगो ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कजूस का समानार्थी कैसे बना। इस सबंध मे लोक मे एक बडी मनोरजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक बार एक कजूस आदमी बाजार से दो पैसे का घी लेकर अपने घर को चला। रास्ते मे सयोगवश घी मे एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने घी मे पड़ी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी घी पीने आई थी और बहुत ज्यादा घी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे बडी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना घी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त मे उसे एक युक्ति सूझी। उसने उस मरी मक्खी को मुँह मे डालकर खूब चूसा और जब उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना घी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तब उसने मक्खी थूकी। कहते है तभी मे कजूसो की सज्ञा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज़, मर्सराइज्ड (mercerised)—विशेष प्रकार का चमकदार और मजबूत कपडा। इंग्लैंड मे एक रगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७६१-१८६६ है। १८४४ मे उसने कपड़े के सूत को एक विशेष प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) मे भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका बना कपडा अधिक चमकदार तथा मजबूत हो जाता था, साथ ही उसमे विभिन्न रंगो को सामान्य कपड़ो की तुलना मे अधिक अच्छी तरह पकड़ने की शक्ति आ जाती थी। इस रंगरेज

बजना या बिगुल बजाना' आदि स्वतंत्रता आंदोलन के सिलसिले में विकसित हुए।

बिल (bill)—मूल शब्द लैटिन का bulla है जिसका अर्थ है 'मुहर'। बाद में मुहर लगे सरकारी कागज को भी bulla या bull कहने लगे। पोप की मुहर लगे कागज भी 'बुल' कहलाते थे। bulla का ही billa हुआ जो अंग्रेजी में बिल हो गया। लगता है कि प्रारंभ में जो बिल आते थे उन पर मुहर होती थी। अब सभी बिल बिल हैं चाहे मुहरयुक्त हों या बिना मुहर के।

बुखार—बुखार शब्द का प्रयोग हिन्दी में ज्वर के अर्थ में होता है पर यह इसका मूल अर्थ नहीं है। अरबी भाषा में यह धातु है बे ख र जिसका अर्थ भाप निकलना या धुआँ निकलना आदि होता है। बुखार शब्द इसी से बना है और अरबी में इसका मूल अर्थ है भाप। भाप में गर्मी होती है अतः फारसी में इसका अर्थ गर्मी हो गया और ज्वर में गर्मी होती है अतः आगे चलकर फारसी में ही बुखार शब्द का ज्वर के लिए भी प्रयोग होने लगा। फारसी से ही यह शब्द हिन्दी उर्दू में आया यद्यपि इसके साथ अरबी फारसी के भाप या गर्मी आदि के भाव नहीं आए। यह इस देश में केवल 'ज्वर' का ही समानार्थी है। हाँ दिल या जी का बुखार निकालना जैसे मुहावरों में बुखार में हृदय के क्रोध शोक दुःख आदि उद्वेगों का भी भाव आ गया है।

बैंक (bank)—यह सुनकर किसे आश्चर्य नहीं होगा कि बैठने की बेंच और रुपया लेन-देन का कारोबार करने वाला बैंक—ये दोनों ही मूलतः एक शब्द हैं। बैंक की मूल परम्परा इटली से प्रारम्भ मानी जाती है। वहाँ का वेनिस नगर किसी समय विश्व व्यापार का केन्द्र था। अतः व्यापारियों की सहूलियत के लिए बहुत से लोग सेंट मार्क के चौराहे पर बेंचों पर सिक्के रखकर बैठते थे और सिक्के की अदला-बदली करते थे। बेंच के लिए इटालियन शब्द बैंको है अतः इनके बेंच जिनपर पैसे रखे रहते थे बैंको कहलाते थे। बाद में ये लोग बेंच के स्थान पर टेबुल या मेज का प्रयोग करने लगे तो वही बैंको नाम उन मेजों के लिए भी प्रयुक्त हुआ। इस प्रकार बैंको शब्द का अर्थ बेंच में परिवर्तित होकर रुपये पैसे रखने का बेंच तथा और आगे चलकर रुपया-पैसा रखने की मेज हो गया। और आगे चलकर रुपये पैसे की ढेर को भी बैंको कहने लगे। और उसी से विकसित होकर बैंक शब्द में आज का अर्थ आया।

अग्रेज़ी शब्द 'वेंच' तथा इटेलियन वेचवाची शब्द 'वैको' या 'वैक' ये दोनो ही वेचवाची ट्यूटनिक शब्द 'वैका' से निकले है। इस प्रकार 'वेच' और 'वैंक' शब्द एक ही है। इन्हें देखकर कहावत याद आ जाती है—कहाँ राजा भोज और कहाँ भोजवा तेली। कहाँ तो आज के कारवार का प्रमुख साधन वैंक और कहाँ वैठने की एक सामान्य सी चीज वेंच। नामत मौलिक रूप से दोनो एक हैं किंतु अर्थत आज इनमे कितना अन्तर है!

वैडमिंटन (Badminton)—एक खेल। डॉ० विल्फ्रेड फक तथा कुछ अन्य लोगो के अनुसार यह खेल मूलत भारत का है। यहाँ से यह खेल अंग्रेजो के साथ १८७३ ई० मे इग्लैड पहुंचा। व्यूफोर्ट के ड्यूक की एक छोटी स्टेट थी, जिसका नाम 'वैडमिटन' था। इसी मे सर्वप्रथम इस खेल का प्रचार हुआ, जिसके आधार पर इस खेल का नाम 'वैडमिटन' पड गया।

मक्खीचूस—'मक्खीचूस' हिन्दी का एक प्रचलित शब्द है। इसका अर्थ कजूस है। इसका प्रयोग तो छोटे-वड़े सभी करते हैं, किन्तु वहुत कम लोगो ने यह सोचा होगा कि यह शब्द कंजूस का समानार्थी कैसे वना। इस सवंध मे लोक मे एक वडी मनोरजक कहानी प्रचलित है। कहा जाता है कि एक वार एक कजूस आदमी वाजार से दो पैसे का घी लेकर अपने घर को चला। रास्ते मे सयोगवश घी मे एक मक्खी गिर कर मर गई। घर आने पर उसने घी मे पडी मक्खी देखी। वह सोचने लगा कि हो-न-हो यह मक्खी घी पीने आई थी और वहुत ज्यादा घी पीने के कारण ही मर गई। यह सोचकर उसे वडी चिंता हुई और वह किसी प्रकार अपना घी मक्खी से वापिस लेने की सोचने लगा। अन्त मे उसे एक युक्ति सूझी। उसने उस मरी मक्खी को मुँह मे डालकर खूव चूसा और जव उसे विश्वास हो गया कि उसका जितना घी मक्खी ने पीया रहा होगा, उसने चूस लिया, तव उसने मक्खी थूकी। कहते है तभी से कजूसो की सज्ञा मक्खीचूस हो गई।

मर्सराइज़, मर्सराइज्ड (mercerised)—विशेप प्रकार का चमकदार और मजवूत कपडा। इग्लैड मे एक रगरेज था, जिसका नाम था जॉन मर्सर (John mercer)। इसका जीवनकाल १७९१-१८६६ है। १८४४ मे इसने कपड़े के सूत को एक विशेप प्रकार के मिश्रण (Solution of caustic alkali) मे भिगोने का ऐसा तरीका निकाला जिससे उसका वना कपडा अधिक चमकदार तथा मजवूत हो जाता था, साथ ही उसमे विभिन्न रगो को समान्य कपडो की तुलना मे अधिक अच्छी तरह पकडने की शक्ति आ जाती थी। इस रगरेज

कि भारतीय भाषाओं के इन देशों की भाषाओं से तथा इन देशों की भाषा ने भारतीय भाषाओं से शब्द लिए हैं।

ग्रीक में

संस्कृत या उससे विकसित पाली या प्राकृत भाषाओं से जाकर ग्रीक भाषा में प्रयुक्त होने वाले शब्द मुख्यत तीन प्रकार के हैं पहले के अन्तगत पौराणिक और ऐतिहासिक (व्यक्तियों अथवा वर्गों के) नाम हैं। जसे पौरव मरुद पति बुद्ध स्वयम्भू, मौर्य वासुदेव केतु भार्गव सुभगसेन आदि। दूसरा वर्ग भौगोलिक शब्दों का है। यूनानियों की भूगोल म बडी रुचि थी। इस कारण इस प्रकार के शब्द भी—नगर प्रान्त पवत नदियों आदि के नाम—वहाँ की भाषा म पर्याप्त सख्या म गये। उदाहरण के लिए पाचाल गान्धार तक्षशिला कौशाम्बी अहिच्छत्र अनुराधग्राम, वाराणसी, काशी इन्द्रप्रस्थ कलिंग कश्मीर कश्यपपुर इक्षुमती इरावती कुभा गगा गण्डकवती नमदा यमुना वितस्ता आदि को लिया जा सकता है। इनम उपयुक्त दोनों वर्गों के शब्द प्रायः तत्सम रूप म ग्रीक म नहीं गये स्वभावत इनमें पर्याप्त ध्वनि-परिवतन हुए। जसे गगा जी का 'गग्गेस' गण्डकवती का कोन्दोखातेस और चन्द्रगुप्त का सन्द्रकोत्तस हो गया।

तीसरे प्रकार के शब्द सामान्य वस्तुओं आदि के नाम हैं। कहना न होगा कि भाषाओं म गृहीत शब्दों की दृष्टि से विशेष महत्त्व इस तीसरे वग का ही होता है। इसमें सर्वाधिक मसाले मूल्यवान पत्थर और पेड पौधे तथा सुख सुविधा एवं विलास की वस्तुओं के नाम आते हैं। प्रत्यक्ष ही इस वग के शब्दों से दोनों देशों के जीवन स्तर सांस्कृतिक विकास तथा पारस्परिक सम्बन्धों पर अच्छा प्रकाश पडता है। इस वग के कुछ शब्द उदाहरण के रूप म नीचे दिए जा रहे हैं।

संस्कृत सिन्धु का यूनानी म इसका रूप सिन्दोन है। प्राचीन भाषा शब्दकोशी म यह शब्द 'वनस्पति के वस्त्र' के अथ म प्रयुक्त हुआ है।[1] यूरोप म पहले केवल ऊन के वस्त्र बनते थे रूई से कपडा बनाने की कला भारत का अनुसंधान और आविष्कार है[2]। यूरोपीय देशों म प्राचीन यात्रियों ने सिन्ध म ही के अचल म पहल पहल रूई अर्थात वनस्पति के वस्त्र देखे और इसी के आधार

1 साइंस हिबट लेक्चस पृ० १३८ मक्समूलर डिक्शनरी रलिवन पृ० २५।

2 डॉ० मोतीचन्द्र प्राचीन भारतीय वेश भूषा पृ० १।

पर पश्चिम मे ऐसे वस्त्रो का नाम ही 'सिन्धु' पड गया। असुरबनीपाल (६६८-६२६ ई० पू०) ने भारत से अनेक प्रकार के पेड़-पौवे मँगवाये थे और उनमे यह ऊन उत्पन्न करने वाला पौधा, (अर्थात् 'कपास') भी था। यूनानियो को तो वडा आश्चर्य हुआ जब उन्होने भारतीयो को पेड़ो पर पैदा होने वाले ऊन का कपडा पहने देखा[1]। ध्वनि-परिवर्तन के साथ यही 'सिन्धु' शब्द यूनानी मे 'सिन्दॉन' हो गया, लैटिन मे 'सेता' या 'सेतिनस', अरबी मे 'सतीन', हिब्रू मे 'सदीन'। लैटिन का 'सेतिनस्' इतालियन मे आकर 'सेतिनो', फ्रासीसी मे 'सतिन', और अँगरेजी मे 'सैटिन' हुआ। हिन्दी-पजाबी आदि मे इस शब्द का प्रचलित रूप 'साटन' है।

'कपास' यूनानी मे 'कर्पासॉस' है: 'सिन्धु' की तरह ही भारतीय शब्द 'कर्पास' भी सूती कपड़े और रूई के साथ पश्चिमी देशो को गया। हिब्रू मे यह 'कर्पस' है, लैटिन मे यह 'कर्बसुस' तो अरबी मे 'केरपास'।

'अरिसि' और 'व्रीहि' यूनानी भाषा मे क्रमश. 'ओरुज' और 'ब्रिज' है। 'अरिसि' शब्द तमिल से गया है। जिसका अर्थ चावल होता है। अरबी मे यही 'अरुज' और 'रुज्ज' हो गया[2]। कुछ लोगो के मतानुसार तमिल शब्द 'अरिशि' था जो मूल द्रविड़ मे 'अरिकी' या 'वारिगी' था। इसीसे पश्तो 'व्रिजहे' और फारसी के 'विरज' अथवा 'विरिज' है, यही यूनानी मे 'ओरुज' और 'रुज' है। लैटिन 'ओरिज' फ्रेच 'रिज' या 'रिस', स्पेनिश 'अरोस', और अँग्रेजी 'राइस' भी इसी से निकले है। वेवर के मत से दोनो यूनानी शब्द 'ओरुज' और 'रुज्ज' सस्कृत शब्द 'व्रीहि' से विकसित हुए हैं।[3]

'पिप्पली' का यूनानी रूप 'पेपरी' है। लैटिन मे आकर यह 'पिपर' वना और अग्रेजी मे 'पेपर' हो गया।

सस्कृत का 'कुँकुम' शब्द यूनानी मे 'क्रोकेस' रूप मे है, मेरा अनुमान है यह पुरानी फारसी मे 'कुर्कुम' होते गया है। 'मरकत' ग्रीक मे पहुचकर 'स्मरगदॉस' वन गया। वेवर के विचारानुसार यह सामी भाषाओ से होता हुआ वहां पहुँचा। सस्कृत के 'कटुकफल' का रूप यूनानी मे 'करुओफुल्लान्' है, विकास की दृष्टि से इसका सम्बन्ध कदाचित् मूल सस्कृत के प्राकृत रूप 'कडुअफल' से है। भारतीय शब्द 'कलम' ही यूनानी मे पहुँचने पर 'कलमास' वना। लैटिन मे इसका रूप 'कैलमस' है। हिन्दी-उर्दू मे प्रचलित रूप 'कलम'

---

१. हेरोडोटस ३, १०६।
२. रॉलिन्सन · इण्टरकोर्स विट्विन इण्डिया एण्ड वेस्टर्न वर्ल्ड, पृ० १४।
३. इण्डियन ऐण्टीक्वेरी, मई १८७३, पृ० १४७।

अरबी से आया है किन्तु मूल में यह शब्द अरबी का है नहीं। वेबर का मत है कि अरबी में यह संस्कृत या यूनानी में गया है।[1]

संस्कृत का 'कपूर' शब्द यूनानी में 'कम्फोर' हो गया है। लैटिन और अंगरेजी में इसी का रूप 'कम्फर' है। 'चन्दन' यूनानी में 'सन्तन' है। इसका एक और रूप 'संतालोन्' भी यूनानी में है जो स्पष्ट ही फ़ारसी 'सन्दल' से से सम्बद्ध है जो स्वयं 'चन्दन' से निकला है। संस्कृत 'शृंगवेर' यूनानी में आकर 'जिंगिबरी' बन गया है।

मेरे विचार में संस्कृत शब्द 'इभदन्त' ही यूनानी में 'इलफान्त' हो गया क्योंकि भारत से हाथी दाँत पश्चिमी देशों को जाता था यह अनेक स्थानों में प्रमाणित है। यह 'हाथी' अर्थ का वाचक अर्थ परिवर्तन की प्रक्रिया से हुआ होगा। लैटिन में इसी से 'एलिफन्तस' प्राचीन फ्रेंच में 'ओलिफन्त' प्राचीन अँगरेजी में 'ओलिफान्ट' और अर्वाचीन अँगरेजी में 'एलिफण्ट' विकसित हुए हैं।

'वैडूर्य' शब्द यूनानी में 'बेलुरास' अथवा 'बेरूल्लास' इसका एक रूप 'बेरिल्लोस' भी मिलता है। 'बेरिल्लोस' से ही लैटिन 'बेरिलस', प्राचीन फ्रांसीसी 'बेरिल', तथा अंगरेजी 'बेरिल' आदि निकले हैं। हिन्दी में प्रचलित रूप 'बिल्लौर' फारसी के 'बिल्लूर' से है जो स्वयं संस्कृत के 'वैडूर्य' से ही विकसित है।

यूनानी शब्द 'सक्खरि' अथवा 'सेक्खॉन' 'शर्करा' से आये हैं। अँगरेजी का शब्द 'शुगर', फ्रांसीसी का 'शुक्र' स्पेनी का 'अजूकर' और अरबी का 'असोक्कर' भी इसी से हैं। फारसी का 'शकर' भी संस्कृत 'शर्करा' से ही है। संस्कृत में 'शर्करा' का मूलार्थ है 'बालुका कण', रूप सादृश्य के कारण बाद में वह 'चीनी' के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। मूलतः 'शर्करा' सफेद को नहीं बल्कि सम्भवतः दानेदार राब के ढोंकों को कहते थे।

संस्कृत 'अभ्र' यूनानी में 'ओफ्रास' है, लैटिन में यही 'ओम्ब्र' और अंगरेजी में 'आब' रूप में मिलता है। इसी प्रकार प्रामाणिक यूनानी भाषा में 'अमनाई' बना और 'कम्पन' 'कम्पान्'। मूलतः 'कम्पन' शब्द संस्कृत का नहीं अपितु द्रविड है और इसका अर्थ 'मण्डल' या 'क्षेत्र' है। यूनानी में यह सेनापति के अर्थ में प्रयुक्त होता है संस्कृत 'प्राच्य' यूनानी में 'प्रसाइ' हो गया। वहाँ यह 'मगध राज्य' के लिए आता है। कनिंघम इसे संस्कृत 'पलाश' या 'परास' (एक वृक्ष) से सम्बद्ध करते हैं।

---

१ इण्डियन एण्टीक्वेरी मई १८७३ पृ० १४७।

भारत का 'इण्डिया' नाम भी मूलत यूनानी है। यूनान मे भूगोलशास्त्र का पिता होने का गौरव हेकेतेअस को प्राप्त है। भारत का इन्होंने ही सर्वप्रथम उल्लेख किया है। सस्कृत 'सिन्धु' का ईरानी मे 'हिन्दु' हुआ। फिर आयोनियन लोगो की भाषा मे महाप्राण का अभाव होने से, यह 'इन्दो' या 'इन्दोस' हो गया। इसी से अग्रेजी आदि मे 'सिन्ध' नदी का नाम 'इण्डस' बना और भारत का नाम विभिन्न यूरोपीय भाषाओ मे इदो, इन्दिया, इण्डिया आदि।

इसी प्रकार सस्कृत 'उच्च' का ग्रीक भाषा मे 'ओरुजान', 'नलद' का 'नर्दास', 'मदार' का 'मदेलकान', 'अगरु' 'अगलोखान', 'उपल' का 'ओपल्लिऑस', 'कटुभूरि' का 'कत्तुओउरिने' तथा 'मुष्क' का 'मुस्खोन' हो गया।

लैटिन से

ऊपर सस्कृत 'सिंधु' से लैटिन मे आकर 'सेता' या 'सेतिनस्', 'कर्पास' से 'कर्बसुस', 'पिप्पली' से 'पिपर', 'कलम', से 'कैलमस', 'कर्पूर' से 'कैम्फ़ोर', 'इभिदन्त' से 'एलिफैन्तम्', 'वैदूर्य' से 'वेरिलस' तथा 'अर्भ' से 'ओर्वस' का उल्लेख किया जा चुका है। वस्तुतः लैटिन मे यूनानी आदि अन्य भाषाओ के माध्यम से संस्कृत के काफी शब्द आए है। कुछ शब्द प्रत्यक्ष सपर्क से सीधे भी गए है, यो आज इतने दिनो बाद अकाट्य प्रमाण देते हुए यह सनिश्चय कहना प्रायः बहुत कठिन है कि अमुक शब्द सीधे आए है तथा अमुक-अमुक शब्द अमुक-अमुक भाषाओ से होते आए है। लैटिन मे प्रयुक्त सस्कृत के कुछ अन्य शब्द ये है :

सस्कृत	लैटिन
यवद्वीप	इवादिअस
लक्षद्वीप	लक्कादिवेस
सौराष्ट्र	ओराथ्र
आन्ध्र	आन्द्रे
खिन्नवारि	किन्नावारि
शुल्वारि	सल्फर
कुष्ठ	कास्टस
सगुण	सकोन
सफेन	सपेनास
मुष्क	मस्कुलस

'कटहल' के लिए लैटिन मे 'पल' शब्द मिलता है जो मूलत इसी अर्थ में तमिल शब्द है। यह कदाचित् संस्कृत होते लैटिन मे गया होगा।

अरबी में

कुरान म प्रयुक्त मिस्क जजबील, काफूर कलम तथा नमारिक (प्रयमाश) मूलत सस्कृत के मुष्क, कपूर कलम नमरा हैं। इनके अतिरिक्त सस्कृत का पिप्पली अरबी म 'फिलफिल' शकरा का असोखर' स्वर्णद्वीप (लका) का 'सरनदीप' 'दक्षिण का 'दजनाव', सिंध (नदी) का सहूँ' 'विष का बेश (जहर विशेष), इला' से हेल' (इलायची) ताम्बूल' का 'तम्बोल' कनकफल का 'करनफल' (लौंग), 'कोवल का फोफल' (सुपारी) नीलोत्पल का 'नीलोफर' 'कर्पास का कर्फस त्रिफला का 'इत्रीफल' जायफल का 'जायफल', शिसर का 'नसीरा' (तूनिया) बहेडा का बलीलह हर का हलीलज', भिल्लातक का बलादर, मडल (कारोमडल) का मदल (अगर की लकडी जो कारोमडल से जाती थी), कुसुम्भ का कुरतुम छीट का शीत' (कपडा) 'पट का बोत नील का नीलज नारियल का नारजील निम्बुक का लेमूँ 'वणिक' या वनिया का वानिया क्रमज्या का कन्ज 'जीवा का जव उच्च' का 'भ्रोज, उज्जन' का उजन या 'उरन तथा वहुमास' का बरामास आदि सकडो शब्द हैं।

इस्पात को अरबी म मुहानिदा (हिन्द से आई हुई) कहते हैं और अक को हिन्दसा। हिन्दी तलवार और हिन्दी भाले भी वहाँ बड मशहूर रह है। अरबी 'बारजा (बेडा) को 'बेडा दोनीज' (नाव विशेष) को डोंगी तथा 'होरी को 'हाडी स जोडा गया है।

वस्तुत इस क्षेत्र म अभी तक व्यवस्थित काम नही हुआ है। यहाँ केवल बानगी स्वरूप कुछ शब्द दिए गए। यदि यूनानी, लटिन तथा अरबी से व्यवस्थित तुलना की जाय तो ऐसे शब्दो की सख्या बहुत बडी हो सकती है साथ ही इनके द्वारा इस बात का भी पता चल सकता है कि वस्तु एव विचारो के क्षत्र म भारत ने यूनान रोम और अरब को क्या कुछ दिया।

★★